शरीफ़ज़ादः

(आर्यपुत्र)

मिर्ज़ा रुस्वा का शिक्षाप्रद उपन्यास







शरीफ़ज़ादः (आर्यपुत्र)

(मिर्ज़ा रुस्वा का शिक्षाप्रद उपन्यास)

उर्दू - देवनागरी वर्णमाला

ट ٹ त ت प پ ब ب अ ا

ख़ خ ह ح च چ ज ج स ث

ड़ ڑ र ر ज़ ذ ड ڈ द د

स ص श ش स س झ़ ژ ज़ ز

ग़ غ अ़ ع ज़ ظ त ط ज़ ض

ल ل ग گ क ک क़ ق फ़ ف

य ی ह ہ व و न ن म م

य ے

झ جھ ठ ٹھ थ تھ फ پھ भ بھ

ख کھ ढ़ ڑھ ढ ڈھ ध دھ छ چھ

आ آ उ اُ इ اِ अ اَ घ گھ

भुवन वाणी ट्रस्ट

प्रभाकर निलयम्

४०५/१२८, चौपटियाँ रोड, लखनऊ-३

प्रकाशक—भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ–३

प्रथम संस्करण—अक्तूबर, १९७१ मूल्य रुपिया—४·००

मूललेखक—डॉ० मिर्ज़ा मुहम्मद हादी 'रुस्वा'

लिप्यन्तरण-सम्पादक—डॉ० सय्यद असदअली, एम० ए०, पीएच्० डी०

लिप्यन्तरणकार—विनयकुमार अवस्थी

मुद्रक—वाणी प्रेस,

'प्रभाकर निलयम्', ४०५/१२८, चौपटियाँ रोड, लखनऊ–३

विषय-प्रवेश

वाणी, भाषा और लिपि

मन के भावों और उद्‌गारों को मुख से प्रकट करना, यही वाणी है। पशु, पक्षी अथवा मनुष्यों में जब कोई वर्ग एक प्रकार की वाणी बोलता है, उस बोली से परस्पर भावों को कहता, सुनता और समझता है, तब वाणी के उस प्रकार को उस विशिष्ट-वर्ग की भाषा की संज्ञा दी जाती है। और उसी भाषा को जब चिह्नों-आकृतियों में लिख कर प्रकट किया जाता है, तब उन्हीं चिह्नों और आकृतियों को उस वर्ग-विशेष की लिपि कहा जाता है।

कुछ विद्वानों के मत से धरातल पर पृथक्-पृथक् भूखण्डों में विभिन्न समयों पर मानवों की सृष्टि और विकास होता रहा है। वे सब एक ही स्थान पर एक ही मानव से उत्पन्न नहीं हैं। फलतः उन सब की भाषाएँ भी एक दूसरे से बिलकुल पृथक् और स्वतंत्र हैं। इन पृथक् कुलों को ये विद्वान् आर्य, मंगोल, सेमेटिक, हेमेटिक, द्रविड़ आदि की संज्ञा देते हैं।

किन्तु भारतीय मत की घोषणा इसके विपरीत है, और इस्लामी तथा ख्रीष्ट मान्यता भी उसका अनुमोदन करती है। इस मत के अनुसार सारी मानव जाति एक ही मूल पुरुष मनु अथवा आदम की सन्तान हो कर मानव अथवा आदमी कहलायी। कालान्तर में विभिन्न भूखण्डों में फैलने, एक दूसरे से अलग-थलग होने और वहाँ की विशिष्ट जलवायु और संस्कारों से प्रभावित होने के फल-स्वरूप वह मानव जाति अनेक रूप, रंग, आकार और बोलियों में विभक्त होती गई। यह परिवर्त्तन लाखों वर्षों से चलते आ रहे हैं और इसलिए उन मानव-समूहों के रूप, रंग, आकार और बोलियों के अन्तर भी इतने सघन हो गये हैं कि ज्ञान की उपेक्षा करने वाले और केवल तर्क, अनुमान, प्रयोग, अनुसंधान आदि भौतिक साधनों को ही ज्ञान मान कर उन पर निर्भर रहने वाले पाश्चात्य विद्वानों तथा उनके अनुवर्ती भारतीयों का भ्रमित होजाना स्वाभाविक ही है। यह बात इनसे ओझल हो जाती है कि कितना भी बड़ा वैषम्य इन जातियों के लक्षणों में दिखाई देता हो, उनकी आकृतियों और भाषाओं में कुछ ऐसे तथ्य लाखों वर्ष बाद भी झलकते हैं जो सारी मानव जाति को किसी पुरातन काल में एक मूल मानव का पितृत्व प्रदान करते हैं।

भारतीय वाङ्मय के सृष्टिक्रम-सम्बन्धी विशाल ज्ञानकोश को विस्तार-भय से किनारे भी रख दें, तो भी जन-साधारण की समझ में आने वाली

कुछ बातें तो हमारे मत की पुष्टि करती ही हैं। उदाहरण के लिए— (१) द्रविड़कुल की भाषाएँ आर्यकुल की भाषाओं से पाश्चात्य मत में-मूलतः पृथक् मानी गई हैं। किन्तु संस्कृत की वर्णाक्षरी, उनका वर्गीकरण तथा लिपि का बायें से दाहिने लिखा जाना उनके समान ही है। इसके विपरीत आर्यकुल की अनेक भाषाओं का खरोष्टी लिपि में (दायें से बायें) लिखा जाना और वर्णों की संख्या, क्रम, वर्गीकरण आदि में बड़ा अन्तर है। (२) अरबी और संस्कृत की शब्दावली और लिपि में नाममात्र को भी मेल नहीं है, किन्तु उनकी व्याकरण में बड़ी समानता है, जबकि संस्कृत का अपने आर्यकुल ही की अन्य भाषाओं के व्याकरण से साम्य नगण्य सा है। (३) उत्तर-पश्चिम में सुदूरस्थ ईरान की अवेस्ता और गाथाओं की भाषा में असुर का अहुर उच्चारण है। बीच के पूरे आर्यावर्त्त में इसका अभाव होने के बाद उत्तर-पूर्व में असम प्रदेश में फिर दस को दह और गोसाईं को गोहाईं बोलते हैं। (४) नेपाल के आदिम निवासी आर्यकुल के रूप, आकृति से सर्वथा भिन्न हैं। किन्तु वहाँ कुछ ही समय से आबाद आर्यकुल के राज-परिवार तथा राना-परिवार की आकृतियों पर नेपाली प्रभाव प्रत्यक्ष है; आदि, आदि।

भारतीय भाषाएँ

अस्तु, जब मानव मात्र एक मनु (आदम) की सन्तान हैं और आज पृथ्वी पर उपलब्ध विविध भाषाओं और बोलियों का आदि-स्रोत एक है, तब भारत के निवासियों और भारतीय भाषाओं को मूलतः पृथक् मानना, उनका बुनियादी वर्गीकरण करना कहाँ तक समुचित है। जहाँ तक हिन्दी, गुरुमुखी, सिन्धी, राजस्थानी, ओड़िया, बंगला, असमिया, गुजराती, मराठी, कश्मीरी, मैथिली, नेपाली, सिंहली आदि भाषाओं, लिपियों अथवा बोलियों का सम्बन्ध है इन सब की वर्णमाला, शब्दावली, व्याकरण आदि में इतना अधिक साम्य है कि उनको एक परिवार से बाहर समझने की रत्ती भर गुंजाइश नहीं। ये सभी प्राचीन संस्कृत की पौत्री और भारतीय जनपदों में शौरसेनी, मागधी, महाराष्ट्री आदि प्राकृत अथवा उनके अपभ्रंशों की पुत्रियाँ हैं। अलबत्ता भारत की दक्षिणी भाषाओं—मलयाळम, तॅलुगु, कन्नड़ और तमिऴ—का शेष भारतीय भाषाओं और लिपिओं से भेद अधिक दूर का है।

किन्तु उर्दू को तो हिन्दी से पृथक् मानना ही भूल है। उसका तो हिन्दी से वही सम्बन्ध है जो एक रूह का दो क़ालिब से—एक प्राण का दो शरीर से। उर्दू-हिन्दी की व्याकरण, क्रियाओं के विभिन्न कारकों, कालों में प्रत्यय और रूप—ये एवं सब एक समान हैं। अ़रबी लिपि में लिखी जाने

अथवा अ़रबी-फ़ारसी भाषाओं के शब्दों के अधिक समाविष्ट होजाने से वह पृथक् भाषा नहीं हो सकती। कदाचित् लोगों को कम पता है कि नगरों में नहीं ग्रामों तक में नित्य बोली जाने वाली और हिन्दी कही जाने वाली भाषा में एक तिहाई से अधिक शब्द अ़रबी, फ़ारसी, तुर्की आदि के बार-बार बोले जाते हैं। उनमें ऐसे भी अ़रबी शब्दों की भरमार है जिनको लोग ठेठ हिन्दी की सम्पत्ति समझने लगे हैं, उनके अ़रबी-फ़ारसी होने की कल्पना भी नहीं करते। जैसे हलुवा, साइत (मुहूर्त्त), मेहरिया, हमेल, तरह, अन्दर, अगर, अचार, अजगर, अतलस, अबीर, अमीर, गरीब, अरक, मेवा, मल्लाह, मसखरा, मक्कर, लाला, लहास, स्याही, संदूक, रुमाल आदि।

उद्देश्य

उपर्युक्त भाषाई पहलुवों के अलावा, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक दृष्टि से भी सारा देश परस्पर ऐसा गुथ गया है कि उसमें एकात्म-भाव के सर्वत्र दर्शन होते हैं। उसके प्रभाव की छाप सभी भाषाओं के साहित्य पर मौजूद है। इसलिए अपने-अपने क्षेत्र में विभिन्न लिपियों के फलते-फूलते रहने के बावजूद, यह ज़रूरी है कि राष्ट्र में सबसे अधिक सुपरिचित और व्याप्त देवनागरी लिपि के माध्यम से प्रत्येक क्षेत्रीय भाषा और साहित्य को भारत के कोने कोने तक पहुँचाया जाय। भारत भूमि के हर कोने में प्रस्फुटित वाङ्मय को हर भारतवासी तक पहुँचाया जाय। लिपि और भाषा के सेतुकरण द्वारा सारे राष्ट्र का एकीकरण—यही इस 'भाषा-शिक्षण-सीरीज़' का उद्देश्य है।

उद्देश्य-पूर्ति का माध्यम देवनागरी लिपि

आसेतु हिमालय, सारे देश के साहित्य, संस्कृति, आचार-विचार और सन्तों की वाणी को, किसी एक क्षेत्र अथवा समुदाय तक सीमित न रहने देकर, सारे भारतीयों की सामूहिक सम्पत्ति बनाना ही राष्ट्रीय एकीकरण की उपलब्धि है। इस्लामी ह़दीसें, फ़ारसी और उर्दू का विशाल गद्य-पद्य साहित्य, तमाम शायरों के दीवान, कुल्यात़, मस्नवी और अदबी नावेल, नरसी मेहता के भजन, टैगोर की गीताञ्जलि, तिरुवल्लर का तिरुक्कुरळ् और सन्त नानक की अमर वाणी क्रमशः उत्तर प्रदेश, गुजरात, बंगाल, तमिळनाडु और पञ्जाब को ही नहीं, अपितु सारे देश को प्राण प्रदान करें, यह उनके अनुवाद मात्र के द्वारा संभव नहीं। जिस भाषारूपी सुधाभाण्ड से यह अमृत प्रवाहित हुए हैं उस भाषा के बोध के विना वह प्राण सुलभ नहीं।

प्रत्यक्ष प्रणाली (डाइरेक्ट मेथड)

अस्तु, एक ही मार्ग है। देवनागरी लिपि, जो सारे देश में अपेक्षाकृत सर्वाधिक व्याप्त है, भारतीय प्राचीन वाङ्मय की भाषा—देवभाषा संस्कृत की अपनी लिपि है, उसके माध्यम से हम क्षेत्रीय भाषा का आरंभिक ज्ञान प्राप्त करें। उसके किसी मान्य लोक-प्रिय ग्रंथ को चुन कर उसके अध्ययन द्वारा अपने अर्जित उपर्युक्त ज्ञान का अभ्यास किया जाय। धीरे-धीरे, अभ्यास के द्वारा उस भाषा में अभीष्ट ज्ञान सुलभ होगा।

अन्य लिपियों का विरोध नहीं

उपर्युक्त प्रयास से यह किसी प्रकार अभीष्ट नहीं कि भारत में प्रयुक्त अन्य लिपियों के शिक्षण अथवा प्रचार में ज़रा भी कमी हो। वह वैसे ही, वरन् अधिक फलती-फूलती रहें। किन्तु यह भी न भूलना चाहिए कि यदि हम इस देवनागरी लिप्यन्तरण की पद्धति से उस भाषा के अमूल्य साहित्य को देश में प्रसारित करने में उपेक्षा करते हैं, तो निश्चय ही गिने-चुने व्यक्तियों अथवा सीमित समुदाय को छोड़ कर सारे देश के जनसमुदाय से वह भाषा और साहित्य दूर होता जायगा।

उर्दू में फ़ारसी की इज़ाफ़त

उर्दू साहित्य को देवनागरी लिपि में लिप्यन्तरित करते समय एक 'इज़ाफ़त' के विवाद को बड़ा महत्त्व दिया जाता है। सामासिक पदों में फ़ारसी में इज़ाफ़त का प्रयोग होता है। दीवाने ग़ालिब—ग़ालिब का दीवान, तीरो कमान-तीर और कमान। इनमें क्रमशः तत्पुरुष और द्वन्द्व समास हैं। इनमें 'दीवाने' का 'ने' और 'तीरो' का 'रो' ह्रस्व बोले जाते हैं। उनको दीर्घ अर्थात् हिन्दी की मात्रा के अनुरूप बोलने पर 'दीवाने' का अर्थ 'पागल' अर्थात् 'पागल ग़ालिब' हो जायगा नकि 'ग़ालिब का दीवान'। इसकी विधि फ़ारसी में उनको 'ह्रस्व' बोलने की है।

इसको समझने के लिए अरबी भाषा का उदाहरण प्रस्तुत है। अरबी में 'क़ुर्आनुन् मजीदुन्' कर्मधारय समास है, अर्थात् 'पवित्र क़ुर्आन'। फ़ारसी वालों के सामने इसको बोलने के लिए दो विकल्प थे। या तो वह अरबी शैली पर 'क़ुर्आनुन् मजीदुन्' कहते, या अपनी निजी फ़ारसी-शैली पर 'क़ुर्आने मजीद' कहते जिसमें 'ने' का ह्रस्व उच्चारण होता है।

यही दो विकल्प हिन्दी और उर्दू वालों के लिए हैं। या तो अरबी की पद्धति पर 'क़ुर्आनुन् मजीदुन्' लिखें अथवा हिन्दोस्तानी सामासिक पद्धति पर 'क़ुर्आनमजीद' लिखें—इसमें दोनों शब्द परस्पर मिला कर

लिखे जायँगे। इसी प्रकार हिन्दोस्तानी आलिम बोलते भी हैं। अस्तु, बीच में तीसरी भाषा 'फ़ारसी' की पद्धति इख़्तिआर करने की ज़रूरत नहीं।

कहने का प्रयोजन यह कि या तो अ़रबी को अ़रबी और फ़ारसी को फ़ारसी शैली में लिखें-बोलें, या फिर अपने हिन्दोस्तानी तरीक़े पर बोलें, जैसे कि फ़ारसी वाले अपनी फ़ारसी शैली में अरबी को बोलते हैं। या तो अ़रबी के ढंग पर 'क़ुर्आनुन्‌ मजीदुन्‌' लिखिए, या हिन्दोस्तानी ढंग पर 'क़ुर्आनि-मजीद'; न कि फ़ारसी का तीसरा माध्यम 'क़ुर्आने मजीद' ग्रहण करें।

ह्रस्व 'े' और ह्रस्व 'ो' का देवनागरी स्वरूप

यह तो 'अ़रबी' के देवनागरी-लिप्यन्तरण की बात है। अब उसी सिद्धांत पर फ़ारसी शब्दों के सामासिक पदों को भी लिखिए। या तो हिन्दोस्तानी ढंग पर 'दीवान-ग़ालिब' लिखिए, और उसको ऊपर दी गई दलील के अनुसार सही न मानने का कोई कारण नहीं; और या फिर 'फ़ारसी प्रयोग' होने के नाते फ़ारसी ढंग पर 'दीवाने ग़ालिब' लिखिए।

अब 'दीवाने ग़ालिब' के 'ने' और 'तीरो कमान' के 'रो' को ह्रस्व कैसे लिखा जाय, यह समस्या कठिन नहीं अति सरल है। दक्षिणी भाषाओं में भी 'ह्रस्व ए' और 'ह्रस्व ओ' के उच्चारण वर्तमान हैं। देवनागरी लिप्यन्तरण में दीर्घ को े, ो और ह्रस्व को ॅ, ॉ लिखा जाता है। फ़ारसी शैली पर ही लिखने के इच्छुकों को 'दीवानॅ ग़ालिब' और 'तीरॉ कमान' लिखना चाहिए।

इस प्रकार सार यह है कि उर्दू साहित्य को सारे देश में अक्षुण्ण और व्यापक बनाने और राष्ट्रभाषा को भी अधिक परिपुष्टि देने के लिए यह ज़रूरी है कि उर्दू का समग्र मूल्यवान् साहित्य देवनागरी में लिप्यन्तरित कर दिया जाय। जय भारत!

शरीफ़ज़ादः (आर्यपुत्र)

'शरीफ़ज़ादः' चरित्र को समुन्नत, निष्क्रिय को सक्रिय, नैतिक, साहसी और कर्तव्यनिष्ठ बनानेवाला एक मनोरञ्जक उपन्यास है। इसके रचयिता डॉक्टर मिर्ज़ा मुहम्मद हादी उपनाम 'रुस्वा' स्वयं असाधारण प्रतिभाशाली, स्वावलम्बी, अहर्निश श्रमशील और अपने समय के अजीबॉ-ग़रीब व्यक्ति हुए हैं। 'उमराव जान अदा' उनकी सर्वप्रसिद्ध रचना है। विशेषता यह है कि उनके उपन्यासों में नायक क़ा चित्रण प्रायः उनका अपना जीवनचरित्र है। पुराने चलन पर बचपन से ही विवाह और परिवारदारी का बोझ, अपनी शिक्षा चलाना तो दूर नित्य की गुज़र-बसर के लाले—इस अवस्था में धैर्य के साथ जीविका के लिए छोटी-छोटी

ट्यूशनों पर निर्वाह करते हुए अध्ययन को जारी रख कर डाक्ट्रेट और इंजीनियरी के सम्मानित पद पर उनका पहुँचना ! अनेक कलों की ईजाद, मिस्त्रीगीरी, लुहारी, काश्तकारी आदि में सिद्धहस्त, गद्य-पद्य के रचनात्मक साहित्यकार, परिवार को सदैव सीधी राह पर ले जानेवाले, दबे-दबाये पर तरसखाने वाले—उसको उभार कर जीवन प्रदान करनेवाले, साथ ही समाज के अवाञ्छित तत्वों के कटु और निर्भय आलोचक—कहाँ तक कहा जाय रुस्वा साहब के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में ! शिल्प-कला-साहित्य, कोई क्षेत्र नहीं जहाँ मिर्ज़ा रुस्वा का प्रवेश न हो, अथवा उसकी सिद्धि को उन्होंने चरम सीमा तक न पहुँचा दिया हो ।

'शरीफ़जादः' के आदर्श नायक मिर्ज़ा आबिदहुसैन की सवानःउम्री (जीवनी) मिर्ज़ा रुस्वा की अपनी सवानःउम्री है । इस उपन्यास के द्वारा समाज की मौजूदा दुर्बलताओं पर कुठाराघात ही नहीं पथनिर्देश भी है । आजकल के नवयुवकों में व्याप्त शारीरिक श्रम में लज्जा, प्रतिष्ठा का मर्ज़ और चरित्र के दौर्बल्य की निन्दा न करके उनके आत्मबल को बढ़ाते हुए उन्हें नागरिक बनाने का सफल प्रयास है । रुस्वा साहब का कहना है कि यह धारणा ग़लत है कि ' प्रत्येक व्यक्ति की जन्मजात और सहज बुद्धि अलग-अलग होती है; प्रत्येक व्यक्ति के लिए प्रत्येक काम में सफलता सम्भव नहीं ' । उनका दृढ़ मत है कि सहज बुद्धि परिवेश (माहौल) से बन जाया करती है; अन्यथा संसार में ऐसा कोई कार्य नहीं जिसकी सफलता मनुष्य के लिए, कमर कस लेने पर, दुरूह अथवा असम्भव हो । और यह सब उपदेश मात्र नहीं, मिर्ज़ा रुस्वा ने अपनी पुस्तकों में अपने को ही नाम बदलकर नायक स्थापित कर नवयुवकों के लिए एक ऐतिहासिक आदर्श उपस्थित किया है ।

शरीफ़ज़ादः की भाषा

'शरीफ़ज़ादः' की भाषा उर्दू है । इसमें सरल तथा क्लिष्ट दोनों प्रकार के उर्दू के नमूने मौजूद हैं । पाठक रोज़मर्रः और साहित्यिक—दोनो प्रकार की सरस उर्दू भाषा का आनन्द लें । उपन्यास जैसे का तैसा देवनागरी लिपि में लिप्यतरित है । अलबत्ता इज़ाफ़त, और ह्रस्व तथा दीर्घ ॆ और ो की मात्राओं का, ऊपर दी हुई पद्धति पर, पुस्तक में सर्वत्र निर्वाह नहीं हो सका है । कारण कि क्या शैली अपनाई जाय, इसका निश्चित मत शुरू में निर्धारित न हो सका था । इस कमी को स्पष्ट स्वीकार करते हुए पाठकों से निवेदन है कि इस लिप्यन्तरण को प्रयोगमात्र मानकर शरीफ़ज़ादः के पुनर्संस्करण तथा आगे अपनाये जाने वाले अन्य उर्दू के लिप्यन्तरणों की प्रतीक्षा करें ।

—सम्पादक

शरीफ़ज़ादः (आर्यपुत्र)

हमारे इनायतफ़रमा मिर्ज़ा आबिदहुसैन साहब के वालिद माजिद मिर्ज़ा बाक़रहुसैन मरहूम हज़रत अब्बास की दरगाह के पास कहीं रहते थे, पुख़्ता मकान था। दस रुपया माहवार बिला शर्त खिदमत नवाब मुकर्रमुद्दौला बहादुर की सरकार से पाते थे। उसमें ख़ुदा ने यह बरकत दी थी कि बाफ़राग़त बसर करते थे। तीन सौ रुपये का बीबी के हाथ गले में गहना था। सौ पचास का घर में असासा था। दस बीस रुपये वक़्त बे वक़्त सन्दूक़चे से निकल भी आते थे। आबिदहुसैन की वाल्दः ने कभी आप चूल्हा नहीं फूंका। मामा हमेशा नौकर रही। आबिदहुसैन की कोई तक़रीब[1] ऐसी नहीं हुई जिसमें दस बीस ग़रीब जमा न हुए हों। डोमिनियाँ[2] न आई हों। आबिदहुसैन की शादी अपने मिक़दार और हौसले के मुआफ़िक़ अच्छी तरह की। अगरचे इस तक़रीब में मिर्ज़ा साहब मरहूम किसी क़द्र मक़रूज़ हो गए थे मगर जहेज़ बेचने की नौबत नहीं आई। शादी के बरसवें दिन एक लड़का पैदा हुआ और उसकी छठी भी बड़ी धूमधाम से हुई। जब तक माँ बाप ज़िन्दः रहे मिर्ज़ा आबिदहुसैन को खाने पीने की तरफ़ से फ़राग़त थी। महल्ले में एक मौलवी साहब रहते थे उनसे फ़ारसी पढ़ते थे। स्कूल में अंगरेज़ी पढ़ने जाते थे।

जब मिर्ज़ा बाक़रहुसैन ने इन्तक़ाल किया आबिदहुसैन मिडिल क्लास तक पहुँच गए थे। अगरचे वालिद के मरने का सदमा बहुत सख़्त हुआ मगर जों तों करके मिडिल पास हो गए।

वालिद के मरने के बाद घर के इन्तज़ाम का कुल बार उनके सर पर पड़ा मगर इख़राजात से किसी क़द्र इत्मीनान था इसलिए कि नवाब की सरकार से सात रुपया माहवार उनकी वाल्दा को मिलता रहा मगर उनकी बदक़िस्मती से पूरा साल न गुज़रने पाया था कि नवाब करबलाए मुअ़ल्ला चले गये और वहाँ जाके दो ही महीने के बाद इन्तक़ाल फ़र्माया।

---

१ उत्सव २ उत्सवों में मेहतरानियों के आकर गाने बजाने का रवाज़ था।

अब यह इन्ट्रेंस क्लास में थे। जब बाहर की आमदनी बिल्कुल मौक़ूफ़ हो गई तो इख़राजात रोज़मर्रः के लिए घर का असासा बिकने लगा। यहाँ तक कि सोने चाँदी का असबाब सब बिक गया। ताँबे के बर्तनों की नौबत आई वह भी एक एक करके बिक गए यहाँ तक कि सिवाए दो तीन पतीलियों और दो लोटों के कुछ बाक़ी न रहा।

यह अब तक स्कूल में पढ़ने जाते थे और तमाम उम्मीदें इम्तहान के पास होने पर मुनहसिर[१] थीं। यहाँ तक कि इम्तहान का ज़माना क़रीब आया। हेडमास्टर ने फ़ीस तलब की। बीवी की चूड़ियाँ गिरवी रख के दस रुपये फ़ीस के जमा किए। इम्तहान के दो दिन बाक़ी थे कि वाल्दा हैज़े में मुब्तिला हुईं और ठीक उसी दिन इन्तक़ाल किया कि जिस दिन उन्हें इम्तहान में शरीक़ होना चाहिये था। इस हादसः नागहानी की वजह से बेचारे इम्तहान से महरूम रहे। सारी मेहनत की-कराई खाक में मिल गई।

माँ का मरना था गोया उनके सर पर आसमान टूट पड़ा। खानादारी का पूरा पूरा बोझ दफ़्अतन[२] आन पड़ा। घर का असबाब और बीवी का जहेज़ माँ के जीते जी बिक कर सर्फ़ हो चुका था और जो कुछ रहा सहा था वह उनकी तजहीज़ व तकफ़ीन[३] और रस्म फ़ातिहः वग़ैरह में सर्फ़ हो गया। अब घर में एक हब्बा नहीं है जिसे गिरवी रखें या बेच लें। घर में एक खुद हैं, एक बीवी, एक लड़का कोई तीन बरस का। एक लड़की छः महीने की गोद में। अभी तक सूरते रोज़गार नहीं और न कहीं से उम्मीद है मगर इस्तिक़लाल[४] यह है कि अभी तक पढ़े जाते हैं। इम्तहान के छै महीने और बाक़ी हैं। किसी तरह हो अबकी ज़रूर पास होना चाहिए। आखिर कुछ न बन पड़ा। एक फ़त्तू कुंजड़ा रहता था। मकान उसके पास सौ रुपये पर गिरवी रखा; रेहन बाक़ब्ज़: था। खुद महमूदनगर के नाले पर एक कच्चा सा मकान एक रुपया माहवार किराये पर लेकर रहने लगे। खैर इम्तहान के ज़माने तक के लिए इत्मीनान हो गया। जी तोड़ के मेहनत की, खुदा खुदा करके पास भी हो गए। अब नौकरी की तलाश है।

आज बहुत ही परेशान घर से निकले हैं। मुंह उतरा हुआ है, आंखों में हल्क़े पड़ गए हैं। मारे ज़ोफ़[५] के क़दम नहीं उठता। (दिल में कहे जाते हैं) अफ़सोस! आज हमारे बीवी बच्चों का दूसरा फ़ाक़ः है। रास्ते में जो लोग मिलते हैं उनके चेहरे किस क़द्र बश्शाश[६] नज़र आते हैं। कुंजड़ों की दूकानें मेवों और तरकारियों से भरी हुई हैं। नानबाई गरम गरम शीरमालें और खमीरी रोटियाँ तन्दूर से निकाल रहे हैं। नहारी[७] के पतीले से गरम गरम भाप निकल रही है। फ़त्तू की दूकान पर हलवासोहन भी ताज़ा

---

१ निर्भर २ सहसा ३ दफ़न-कफ़न की व्यवस्था ४ दृढ़ता ५ कमज़ोरी
६ ख़ुश ७ सुबह को पकनेवाले गोश्त का बरतन।

ताज़ा बना हुआ है। तमाम रास्ता महका हुआ है। हलवाइयों की दूकानों पर पूरियाँ, कचौरियाँ, हलवे, मिठाइयाँ कैसी पटी पड़ी हैं। इसमें से कुछ भी हमारे और हमारे ग़रीब बीवी बच्चों का हिस्सा नहीं। सर्राफ़ की दूकानों पर पैसों का ढेर है, लोग कैसे छना-छन रुपये भुनाते हैं। हमको एक पैसा तक मयस्सर नहीं कि अपने बच्चों के लिए चने भुना के ले जायँ।

इंट्रेंस का सार्टिफ़िकेट जेब में है। अगर थोड़ा सा शीरा मुमकिन होता तो बला से उसी को चाटते या बीवी बच्चों को चटाते। अफ़सोस मैंने बड़ी ग़लती की। जैसे ही मिडिल पास हुआ था रुड़की कालेज में चला जाता। दो साल किसी न किसी तरह गुज़र ही जाते। देखो रामचरन मेरे ही साथ मिडिल में पास हुआ था। अब सुना है कि रायबरेली में उसे सबओवरसियरी मिल गई है। काश मेडिकल कालेज ही चला जाता। हेडमास्टर ने उस ज़माने में कैसा कैसा कहा। अफ़सोस मैंने अपने हाथ से अपने पावों में कुल्हाड़ी मारी। तीन बरस मुफ़्त ज़ायः हुए। अब क्या हो सकता है। इन्हीं खयालात में ग़लताँपेचाँ लड़खड़ाते ठोकरें खाते गोलदरवाज़े तक पहुँच गए। अब क़रीब दस बजे का वक़्त था। जो लोग दफ़्तरों में नौकर थे, इक्कों पर सवार हो हो के दफ़्तर जा रहे थे। दो एक इक्केवालों ने इन्हें भी टोका।

"मुन्शी साहब इधर आइये। हज़रतगंज चलियेगा।" यह बेचारे हज़रतगंज ही की तरफ़ जाने वाले थे मगर पैसा कहाँ था जो सवार होके जाते। चुपके हो रहे। सड़क के किनारे पा प्यादः रवाना हुए।

मियाँ तो नौकरी की तलाश में गए। अब बीवी का हाल सुनिए। यह बेचारी सुबह से उठ के टोपी काढ़ने में मसरूफ़ थीं। एक पल्ला तो कई दिन से तैयार था। दूसरे में कुछ काम बाक़ी था। बारे[1] उस वक़्त दोनों पल्ले तैयार हो गए। अब उसके फ़रोख्त करने की फ़िक्र हुई। मकान में एक खिड़की थी। वहाँ जाके पुकारीं—हमसाई! हमसाई[2] खिड़की के पास आई।

आबिदहुसैन की बीवी—हमसाई, तुम्हारे मियाँ घर में हैं?

हमसाई—हाँ, क्या टोपी तैयार हो गई?

आबिदहुसैन की बीवी—हाँ बहन। खुदा खुदा करके आज तैयार हुई। ज़रा अपने मियाँ को दिखा दो। हमसाई टोपी मियाँ के पास ले गईं।

मियाँ—हाँ, यह यह टोपी खूब तैयार हुई।

हमसाई—भला कितने की होगी?

---

१ अस्तु २ पड़ोसिन।

मियाँ—बाज़ार में दिखाने से हाल मालूम होगा। मेरे अन्दाज़े में तो कोई दस ग्यारः आने की होगी।

बीवी—अच्छा तो बेच लाओ। बेचारी के यहाँ आज तीसरा फ़ाक़ः है। बच्चे ग़श की हालत में पड़े हैं।

मियाँ—तीसरा फ़ाक़ः ! तुमने मुझसे न कहा। बनिये के यहाँ से कुछ ला देता।

बीवी—चुप रहो। खिड़की के पास खड़ी हैं। कहीं सुन न लें। बड़े ग़ैरतदार लोग हैं। चाहे दम निकल जाए मुंह से न कहेंगे। क़र्ज़ दाम भी नहीं लेते। बीवी-मियाँ दोनों की एक राह है। जब फ़ाक़ः होता है, बच्चों तक को घर से निकलने नहीं देते।

मियाँ—बड़े आला खान्दान हैं। ख़ुदा ने मुसीबत डाली है। इनके बाप के कारखाने ही और थे। अच्छा तो लाओ मैं जल्दी से टोपी बेच लाऊँ।

यह कहके मियाँ हुसैनअली ने अलगनी पर से अंगरखा उतार के पहना, टोपी पहनी, वह टोपी जेब में रखी। घर से निकले, जल्दी जल्दी पारचे वाली गली पहुंचे। दो एक दूकानदारों को वह दोनों पल्ले दिखाए। किसी ने ग्यारह आने लगाए किसी ने बारह आने लगाए। एक साहब शौक़ीन एक दूकान पर टोपियाँ देख रहे थे। उन्होंने यू ही सरसरी निगाह से दोनों पल्ले देख के आँख से इशारा किया। यह दूकानदार से टोपी ले के थोड़ी दूर आगे जा के खड़े हो रहे। थोड़ी देर में वह आ गए।

खरीदार—अच्छा तो कितने की दीजिएगा ?

हुसैनअली—हज़रत मेरा तो माल नहीं है। जिसका माल है उसने कह दिया है कि एक रुपये से कम न देना। अब आपको इख्तियार है लीजिए या न लीजिए।

खरीदार—दूकानदार बारह आने लगाता है, आप एक रुपया माँगते हैं, इतना फ़र्क़ ?

हुसैनअली—दूकानदार तो चाहते हैं कमली डाल के लूट लें। जब बेचनेवाला भी दे।

खरीदार—अच्छा चौदह आने ले लो।

हुसैनकेली—रुपये से हरगिज़ कम न होंगी।

खरीदार—(फिर एक मरतबा टोपी के दोनों पल्लों को उलट पलट के देखा) अच्छा, खैर एक ही रुपया ले लो। तुम्हारी ही जिद सही।

हुसैनअली—दुरुस्त है। ऐ हुजूर, माल नहीं है ?

खरीदा—इसमें शक नहीं, बनी अच्छी है और इसके पास की मिल सकती है ?

हुसैनअली—जी और कहाँ ! मेरे पास एक ही कारीगर है। इस काम की दस बारह दिन में एक टोपी तैयार होती है।

खरीदार—अच्छा तो अबकी टोपी जो बने तो हम ही को देना। तुम्हारा मकान कहाँ है ?

हुसैनअली—आप अपना दौलतखाना बता दीजिए, जिस दिन टोपी तैयार हो जायगी लेकर हाज़िर हो जाऊँगा।

खरीदार—यह क्या झवाई टोला है, हकीम साहब के मकान के क़रीब नवाब मुहम्मद अब्बास साहब कमरे में बैठे रहते हैं। उन्हीं से पूछ लेना। मीर साहब कहाँ रहते हैं, बल्कि मैं वहीं मिलूँगा। ऐ लो यह रुपया तो लो। बातों में देना ही भूल गया।

हुसैनअली—क्या हर्ज है फिर मिल जाता।

खरीदार तो रुपया देकर उधर रवाना हुआ। इधर मियाँ हुसैनअली खुश खुश क़दम बढ़ाते हुए घर की तरफ चले।

अहा! क्या ऐसे लोग भी ज़िन्दः हैं जो दूसरों का काम करके खुश होते हैं? हाँ हैं। और ऐसे लोगों में हैं जिनको मग़रूर बन्दएज़र[1] हिक़ारत की नज़र से देखते हैं जिनका चाल-चलन बहुत ही सीधा सादा है। इसलिए लोग उन्हें बेवक़ूफ़ समझते हैं। उन्होंने वह आला दरजे की तालीम नहीं पाई जो ख़ुदग़रज़ी के अुसूल सिखाती है, इस लिए उन्हें सादःलौह[2] का खिताब दिया जाता है। उन्होंने वह इल्म-मजलिस नहीं हासिल किया जिसमें ज़ाहिरदारी और बनावट इन्सानियत के असली जज़बात को छुपा देती है। इसलिए बेचारे बेतमीज़ ख़याल किए जाते हैं। उन्होंने वह लग़ो फ़लसफ़ा नहीं पढ़ा जो मज़हब के मुक़द्दस[3] उसूल में शक डाल देता है। इसलिए जाहिल के लक़ब से याद किये जाते हैं। यह लोग गवर्नमेन्ट की मसलहतों को नहीं समझते न उसमें नुक़्ताचीनी करते हैं इसलिए उन्हें आला दरजे की या तमद्दुनी[4] इज़्ज़त हासिल करने का ख़याल ही नहीं। क़ौमी इस्लाह की उन्हें फ़िक्र नहीं रहती। इसलिए कि शोहरत की हवस उन्हें होती ही नहीं।

जब हुसैनअली रुपया लेके आए तो उन्होंने अपनी बीवी को दिया। बीवी खुशी खुशी दौड़ी गईं। मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी को खिड़की के पास बुलाया, रुपया हवाले किया। उस वक़्त की ख़ुशी उस नेकबख्त और ग़रीब बीवी की, ज़बानेक़लम से अदा नहीं हो सकती। उस रुपये की क़द्र उसी को हो सकती है जिसके बच्चों ने दो दिन से कुछ न खाया हो। जिसका शौहर रोज सुबह से भूखा प्यासा नौकरी की तलाश में निकल जाता हो और शाम को मायूस घर में आकर चुपके सो रहे। बीवी ने फ़ौरन मियाँ हुसैनअली से रुपया भुनाया, बनिए की दूकान से खाने के लिए नाज मंगाया। बच्चों को जल्दी से दो टिकियाँ डाल के खिलाईं। पानी पिला के सुला रखा। खुद कुछ नहीं खाया। एक टोपी का कपड़ा और रखा था। उसे बुक़्ची से निकाला, छापे निकाले। गेरू की स्याही

१ घमण्डी धनी २ बुद्धू ३ पवित्र ४ सांस्कृतिक।

में थोड़ा सा पानी डाल के टोपी छापी, काढ़ना शुरू कर दी। मारे भूक के आँख से टाँका नहीं सूझता। फूल से गाल मुरझाये जाते हैं। हाथ काँप रहे हैं। मगर क्या मुमकिन कि वे मियाँ के कुछ खा लें। दिल क़वी[1] है, चार दिन के खाने को सामान घर में मौजूद है। शाम को मियाँ आयेंगे। ख़ुदा करे आज कहीं नौकरी हो जाए। क्या ही अच्छी बात है। इसी ख़याल के साथ ही एक आह सर्द दिल से निकली और उसके साथ दो आँसू ढुलक के गालों तक आ गए। हाथ रुक गया। दुपट्टे के आँचल से आँसू पोंछे। फिर छपाछप सुइयाँ निकलने लगीं।

अब चार बजे होंगे। खाना पकाने का वक़्त है। उन्हें यह ख़याल है कि यह फूल और तमाम कर लूँ तो उठूँ। फूल बन गया। टोपी को हाथ में ले के पल्ले को दोनों हाथों से फैला के शिकन मिटाई। जै फूल बन गए थे उनको ग़ौर से देखा। फिर सुई लगा के टोपी बुक़्ची में बाँध दी। उठीं, वज़ू किया, ज़हरीन की नमाज पढ़ी। फिर कोठरी से तौल के आटा दाल निकाल लाईं। नमक मसाला अलाहिदः अलाहिदः करके रखा। चूल्हे में आग सुलगाई, दाल धो के चढ़ाई, आटा गूंधने बैठ गईं। उधर आबिद-हुसैन सरेशाम घर की तरफ़ पलट रहे हैं। दिन भर में कई दफ़्तर छान मारे, दस बारह बंगलों पर गए मगर जहाँ गए और अर्ज़ी दी, यही सदा सुनाई दी—कोई जगह ख़ाली नहीं है। एक साहब ने यह राए दी, सदर बाज़ार में जाओ। शायद गोरों को उर्दू पढ़ाने के लिए नौकर हो जाओ। सदर गए। बारिकों में मारे मारे फिरे। दो एक गोरों ने बुलाया भी। मगर न उनकी यह समझे, न वह इनकी समझे। बात यह है कि उन्होंने अंगरेज़ी अव्वल तो पढ़ी ही क्या थी, दूसरे जो कुछ पढ़ी थी वह हिन्दुस्तानी मास्टरों से पढ़ी थी। इंट्रेंस क्लास में जो साहब अंगरेज़ी पढ़ाते थे उनका तलफ़्फ़ुज बहुत साफ़ था। वह भी मुश्किल से समझते थे। गोरों का लहज़ः भला उनकी समझ में क्या आता। ख़ुलासा यह कि जहाँ गए वहाँ से डैमफ़ूल बना के निकाले गए। इस आवारःगर्दी में शाम हो गई। अब ज़ोफ़[2] के मारे चला नहीं जाता। हर क़दम पर चक्कर आते हैं। मगर मजबूरी, घर तो किसी न किसी तरह पहुंचना ही है। घर में बीवी बच्चों को जिस हालत में छोड़ आए थे उसकी तसवीर तो दिन भर पेश-नज़र रही मगर उम्मीद बड़ी चीज़ होती है जिसने दिन भर बहाल रखा, ख़ूब दौड़ाया, जब अच्छी तरह थका चुकी तो छोड़ दिया। अब उसी पुराने रफ़ीक़[3] से काम पड़ा जिसे यास[4] कहते हैं। उससे और कुछ न हो सका। मौत के तसव्वुर को सामने लाकर खड़ा कर दिया। आख़िर होना ही क्या है ? अगर यही हाल है तो मर भी जायँगे। हाय, अपना मर जाना तो कुछ ऐसा दुश्वार न था, छोटे बच्चों को एड़ियाँ रगड़-रगड़ के जान देना किससे देखा जायग़ा। अुफ़ ? मुफ़्लिसी

१ मज़बूत २ बेहोशी ३ साथी ४ निराशा।

क्या बुरी बलाए है; उससे अब निजात हो, मुमकिन नहीं। काश बीवी बच्चे न होते, मेरे साथ इन कम्बखतों की भी मिट्टी खराब हुई। कुछ बन नहीं पड़ता। करूँ तो क्या करूँ। इसी खयाल में थे कि एक चक्कर आया। उसने सड़क के किनारे एक जगह घास पर बैठा दिया। अब उठते हैं तो उठा नहीं जाता। साथ ही यह खयाल आया, घर जा के क्या करेंगे। यहाँ से सीधे मोतीमहल के पुल की मुण्डेर से अपने को दरया में गिरा दो, डूब मरो। नाउम्मेदी की राय पसन्द आई थी कि इसके साथ ही बीवी बच्चों की बेकसी का खयाल आया। बेइख्तियार आँखों से आँसू निकल पड़े। खैर कुछ न सही। मेरे दम से बेचारों को किसी क़द्र सहारा तो है। किसी की आस तोड़ना अच्छा नहीं है। यह क्या बोदापन है। आलाखान्दानी और बेजा शरम को तर्क करना चाहिए। नौकरी इस ज़माने में मिले, मुमकिन नहीं। कल से टोकरी लेके चौक में जाना चाहिए। क्या कहीं मज़दूरी भी नहीं मिलेगी। मिहनत-मज़दूरी में कोई ऐब नहीं। शाम तक दो आने तो मिलेंगे, बच्चे फ़ाक़े से तो न पड़े रहेंगे। अच्छा अगर यह भी न हो सके, मकान जो गिरवी है उसे बेच डालना चाहिए। दस बीस जो बढ़ें उससे नखास में काट-कबाड़ की दूकान रख लें। शायद उसी से काम चले।

यह इन्हीं खयालात में थे। इतने में एक गवाँर सा आदमी, सर में फेंटा बँधा हुआ, मिरज़ई पहने, धोती बाँधे, इन्हीं के क़रीब आके बैठ गया। यह उठने ही को थे कि उस शखस ने पूछा—मियाँ साहब, आप कुछ फारसी (फ़ारसी) पढ़े हैं।

आबिदहुसैन—हाँ पढ़ा तो हूँ, क्यों ?

वह शखस—मुझे एक खत (खत) पढ़वाना है।

आबिदहुसैन—पढ़ तो देता मगर यहाँ रौशनी कहाँ है ?

वह शखस—सामने लाइट के पास चलके पढ़ दीजिए।

आबिद—चलो। यह कहके लालटेन के पास आए। उसने मिरज़ई की जेब से खत निकाल के दिया। खत काहे को एक तूमार का तूमार था।

खत का खुलासा यह था कि बल्देव मिस्तरी की माफ़ंत एक हज़ार रुपये का लोहा खरीदकर भेज दो। मुबलिग़ दो सौ रुपया नक़द इस खत के साथ रवाना किया जाता है, वह दे देना। बाक़ी रुपया बरवक़्त पहुँचने लोहे के भेज दिया जायगा। इसके बाद लोहे की फ़िहरिस्त थी जिसे अटक-अटक कर पढ़ते जाते थे और वह बताता जाता था। खुदा खुदा करके अब वह खत तमाम हुआ। अब वह शखस कहने लगा—अच्छा तो अब इसका जवाब मैं किससे लिखवाऊँगा। आप ही लिख दीजिए। बड़ा ज़रूरी खत है। मिन्नत समाजत करने लगा।

वह शखस—थोड़ी दूर चले चलिये। बल्देव मिस्तरी का कारखाना है।

आबिद—मेरा मकान यहाँ से बहुत दूर है, मुझे बहुत रात हो जायगी तुम किसी और से लिखवा लेना।

वह शख्स—देर नहीं होने पायेगी। और अगर देर हो जायगी तो घर का इक्का है, मैं आपको सवारी पर भेज दूँगा।

आबिद—(दिल में) हर्ज ही क्या है। चलो अच्छा हुआ चला भी नहीं जाता है। इक्के पर सवार होकर जल्दी से घर पहुंच जायँगे।

आबिद—अच्छा तो चलो।

उस शख्स के साथ बल्देव मिस्तरी के कारखाने में पहुंचे। देखा एक बड़ा सा अहाता है। उसमें चारों तरफ़ खपरैल पड़ी है। सेहन में जिधर देखो लोहे का ढेर है। एक तरफ़ पत्थर के कोयलों का अम्बार लगा है।

खपरैलों में जा बजा लोहे की भट्ठियाँ बनी हुई हैं धौंकनी चल रही है। लोहा सुर्ख कर कर के उनसे निकाला जाता है। हथौड़े चल रहे हैं। एक खपरैल में एक चारपाई बिछी है। उसके पास दो तीन चीड़ के सन्दूक़ पड़े हैं। उनमें से एक पर बूढ़ा सा आदमी लेकिन बहुत ही तवाना[१], ऐनक लगाए बैठा है। क़रीने से मालूम हुआ कि बल्देव मिस्तरी यही है। जो शख्स इनको ले गया था उसने एक सन्दूक़ पर इनको बिठा दिया। चिराग़दान ला के इनके आगे रख दिया। इनसे कहा कि ज़रा मिस्तरी जी को यह खत फिर सुना दीजिए। इन्होंने खत पढ़ के सुनाया। अब जवाब लिखने के लिये क़लम दावात की ज़रूरत हुई।

बल्देव ने कहा—भइया से माँग लो। उस शख्स ने माधो भइया कहके पुकारा। भइया माधो, बल्देव का लड़का, कोई चौदह पन्द्रह बरस का सिन, सामने खपरैल में एक कुर्सी पर बैठा हुआ था। सामने छोटी सी मेज़ लगी थी। उस पर किताबें रखी थीं। लैम्प रौशन था। उस शख्स की आवाज़ सुनके जवाब दिया—काका क्या है?

वह शख्स—अपनी कलम दवात तनी ले आओ। थोड़ा कागद भी लेते आइयो।

भइया माधो क़लम, दावात, काग़ज़ ले के आए। मिर्ज़ा आबिदहुसैन जवाब लिखने लगे। वह भी पास बैठ गया।

जवाब लिखने में बड़ी देर हुई। इसलिए कि हर क़िस्म के लोहे का वज़न और क़ीमत मय निर्ख के लिखवाया जाता था। मिर्ज़ा साहब के हवास बेजानः थे। भइया से हिसाब करने में इनको मदद मिली इस दरम्यान में इधर उधर की बातें भी होती जाती थीं। क्योंकि उन लोगों को तो यह मालूम न था कि यह बेचारे किस आफ़त में मुब्तिला

१ करारा।

हैं, नहीं तो शायद जल्दी करते। यह एक नए आदमी शहर के रहने वाले वहाँ जा के फँसे थे। मामूली बातें यह कि आप का मकान कहाँ है? इस तरफ़ क्यों आए थे? इनसे पूछना ज़रूर थीं। सबसे ज़्यादा माधो भइया को इनके हाल पर तवज्जुह थी क्योंकि माधो भइया अंगरेज़ी पढ़ते थे और इनके तर्ज़ तक़रीर से मालूम हो गया था कि यह भी अंगरेज़ी जानते हैं। शायद अस्नाए कलाम[1] में यह भी पूछा गया था कि आपने कहाँ तक अंगरेजी पढ़ी है और आपकी ज़बान से बेसाख़्ता निकल गया हो कि मैं इन्ट्रेंस पास हूं। माधो भइया अभी मिडिल क्लास के दो दर्जे नीचे थे। फिर इनका फ़ारसी ख़त भी बहुत ही साफ़ और माधो भइया आज भी बदख़ती के लिये क्लास में दो नम्बर उतार दिये गये थे। इन वजूह से माधो भइया के दिल में इनकी इज़्ज़त का ख़याल समा गया था।

इन्ट्रेंस पास का नाम सुनके बल्देव मिस्त्री भी चौंक पड़े थे इसलिए कि जब से माधो को स्कूल में पढ़ने भेजा था, मिडिल और इन्ट्रेंस यह दोनों लफ़्ज़ें इतनी मरतबा सुनी थीं कि अब उनका भूलना मुमकिन न था। बहुत दिन तक यह मिडिल स्कूल को आला दर्जः समझा किये। लेकिन जब से रेल के दफ़्तर में परशादी बाबू दस रुपया महीने पर नौकर हुये मिडिल पास की इज़्ज़त उनकी निगाह में कम हो गई। मगर कहीं सुन लिया था कि बड़े बाबू जो लोको आफ़िस में नौकर हैं, वह इन्ट्रेंस पास हैं। मास्टर जानकी परशाद जो माधो को घर पर अंगरेज़ी पढ़ाते थे वह वकील हो गये। अब लीजिये वह भी क्या बुरे रहे। गनपत बढ़ई का लड़का छोटेलाल इंट्रेंस पास करके रुड़की चला गया था। वह अब ओवरसियर है। ग़रज़ कि इन ख़यालात से इंट्रेंस की इज़्ज़त इनके दिल में बहुत कुछ थी। सारी उम्मीदें माधो के इंट्रेंस पास करने पर मौक़ूफ़ थीं। इंट्रेंस के दर्जे से उनको इस क़द्र हुस्नेज़न[2] था कि मिर्ज़ा आबिदहुसैन की परेशानहाली उनके चश्मे से नज़र ही न आ सकती थी। जब से उनको देखा था और यह सुना था कि यह इंट्रेंस पास हैं, दिल में कहते थे—परमेशर वह दिन करे कि माधो भइया भी इंट्रेंस पास करलें। मगर अभी वह दिन दूर है। चार पाँच बरस बाक़ी हैं। अब कोई घर पर पढ़ाने वाला भी नहीं। दिल में ऐसे ही कुछ ख़यालात थे कि एक ही मरतबा मिर्ज़ा आबिदहुसैन से पूछा।

बल्देव—आप का दौलतख़ाना कहाँ है?

आबिदहुसैन—चौक के पास।

बल्देव—ओहो। आप बहुत दूर रहते हैं।

आबिदहुसैन—(इस सवाल के रुख़ से कुछ अपने मतलब की फ़ाल[3] लिया चाहते थे) क्यों?

---

१ बातचीत के समय २ अच्छी धारणा ३ शकुन।

बल्देव—कुछ नहीं। अगर कहीं पास मकान होता तो माधो भइया घंटा दो घंटा आप से पढ़ लिया करते।

आबिदहुसैन—फिर दूर मकान है तो क्या है। मैं तो इस तरफ़ आया ही करता हूँ।

बल्देव—क्यों ?

आबिदहुसैन—यूं ही नौकरी की तलाश में।

बल्देव—अच्छा तो आप माधो को पढ़ा दिया करेंगे ?

आबिदहुसैन—बड़ी ख़ुशी से।

बल्देव—मैं जो मास्टर जानकीपरशाद को देता था, आपको भी दूंगा।

आबिदहुसैन—उनको क्या देते थे ?

बल्देव—पाँच रुपया महीना।

आबिदहुसैन—बेहतर है। मैं पढ़ा दिया करूँगा।

माधो—तो फिर कब से आइयेगा ?

आबिदहुसैन—जब से कहो।

माधो—आठ दिन हमारे इम्तहान को रह गये हैं। अगर कल ही से आइये तो और अच्छा है।

आबिदहुसैन—कल ही से आऊँगा। किस वक़्त आया करूँ ?

माधो—सुबह को आइये या शाम को। यही दो वक़्त हैं।

आबिदहुसैन—अच्छा तो मैं सुबह को सात बजे पहुंच जाया करूँगा।

ख़त तमाम हो चुका था। बातों में यह मतलब भी निकल आया। अब वहाँ ठहरने की कोई वजह् न थी। जो शख़्स इनको साथ लाया था, उसने बल्देव से इक्के के लिये कहा। मालूम हुआ है कि इक्केवाला कहीं सवारी ले गया है। इसलिये उसने एक चवन्नी निकाल के मिर्ज़ा आबिदहुसैन के हाथ पर धर दी। पहले तो उन्होंने इन्कार किया इस ख़याल से कि बल्देव की निगाह में ज़लील न हो जाऊँ। मगर बल्देव ने कहा—मियाँ साहब ले लीजिये, हुसैनगंज से इक्का कर लीजियेगा। रात ज़्यादः हो गई है और फिर आप सवेरे आने को भी कहते हैं। जल्दी से घर पहुंच जाइयेगा। मिर्ज़ा आबिदहुसैन ने चवन्नी ले के जेब में रखी और कारखाने से रवाना हुये।

आबिदहुसैन की हालत सख़्त मायूसी की थी। इतना सहारा जो मिला जान में जान आई। अब घर की तरफ़ जल्द से जल्द क़दम उठने लगे। रास्ते में इक्के बहुत से मिले मगर घर में बीवी बच्चों को उस हालत में छोड़ के आये थे ख़याल किया कि अब अगर इक्का करता हूँ तो कम से कम दो आने फ़ज़ूल ख़र्च हो जायँगे। चार आने में दो

वक़्त रोटी चल सकती है। थोड़ा जब्र और गवारा करो, पा-प्यादह पहुंच ही जाओगे। बारे[१] जिस तरह हो सका घर पहुंचे।

रात के दस बज गये थे। दरवाज़े पर आकर क़ुण्डी खड़खड़ाई। बीवी ने उठ के दरवाज़ा खोला। देखा घर में चिराग़ जल रहा है। हैरत हुइ कि तेल कहाँ से आया और यह हैरत और भी ज़्यादः हुई जब बीवी ने उनके बैठने के साथ ही दस्तरखान लाके बिछाया, खाना निकाल के आगे रखा। उन्हें हाथ धोने को पानी दिया, खुद हाथ धोया खाने को आगे बैठ गईं।

आबिद—हय, यह सब कहाँ से आया ?

बीवी—वही टोपी आज बिकी ना ?

आबिद—कमाल किया। टोपी तैयार कर ली और बिकवा भी ली।

बीवी—तो फिर क्या करती ?

आबिद—बड़ा काम किया। बच्चे खा चुके ?

बीवी—बच्चों को माशा अल्लाह दूसरा फेरा है। अभी तो खा पी के सोये हैं।

आबिद—और तुमने कुछ नहीं खाया ?

बीवी—अब तुम्हें मेरी क्या फ़िकर पड़ गई। लो खाओ।

आबिद—वाह क्या मैं जानता नहीं। तुम यूं ही बैठी होगी। क्या बुरी आदत है।

बीवी—और तुम्हें आज यह देर कहाँ लगी ? रोज़ तो सवेरे आ जाया करते थे।

आबिदहुसैन ने अपना तमाम वाक़िअः सिरे से आखिर तक मुफ़स्सिल सुनाया। बीवी सुनके बाग़ बाग़[२] हो गईं। मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी उन बीवियों में न थीं जो ख्वाहमख्वाह अपने शौहरों की शिकायत किया करती हैं। इस मौक़े पर उन्होंने मियाँ की जो दिलजोई[३] और तस्कीन[४] की वह क़ाबिल हज़ार आफ़रीं[५] है।

बीवी—खुदा ने मेरे बच्चों पर रहम किया।

आबिद—हाँ सहारा तो हो गया है। मगर पाँच रुपये में§ क्या होगा ?

बीवी—खुदा का शुक्र करो नमक का सहारा बहुत होता है। पाँच रुपये बहुत हैं। खुदा ने चाहा तो अब फ़ाक़ः न होगा। मेरी टोपी भी अब रुपये को जाने लगी है। महीने में चार टोपी अगर तैयार होंगी तो चार रुपये कहीं नहीं गये हैं। तुम अपना दिल मज़बूत रखो।

---

१ आख़िरकार २ अति आनन्दित ३ मनभराव ४ ढारस ५ शाबाशी की बात।

§ उस ज़माने में पाँच रुपये बड़ी चीज़ होते थे। आज के पचास रुपये भी कम हैं।

आबिद—मेरा दिल मज़बूत है ।

दोनों मियाँ बीवी ने खाना खाया । ख़ुदा का शुक्र किया । नमाज़ें पढ़ीं, सो रहे ।

दूसरे दिन सुबह को सात बजते बजते मिर्ज़ा आबिदहुसैन बल्देव मिस्त्री के कारख़ाने में पहुंच गये थे । माधो बहुत ही शौक़ीन लड़का था । वह सुबह छै बजे ही से किताबें खोलकर पढ़ने बैठ गया था । आबिदहुसैन ने पहले अंगरेज़ी किताब का सबक़ पढ़ाया । हर एक मुश्किल लफ़्ज़ के हिज्जे और मायने पूछे । फिर इमला लिखवाया । उसमें सिर्फ़ एक ग़लती निकली, उसे दुरुस्त कर दिया । उसके बाद ग्रामर (सर्फ़ व नहो) का सबक़ हुआ । अब उर्दू की बारी आई । माधो उर्दू में बहुत ही कमज़ोर था । हरफ़ों का तलफ़्फ़ुज़ सही नहीं बताया गया था । शीन क़ाफ़ तक दुरुस्त न था, उसमें आबिद-हुसैन को बड़ी मिहनत करना पड़ी । फिर हिसाब शुरू हुए । कल दर्जे में जो सवालात माधो को दिए गए थे वह उसने रात ही को लगा रखे थे । आबिदहुसैन ने क़ायदा बड़े ग़ौर से जाँचकर जहाँ जहाँ खामो थी उसे दुरुस्त कर दिया । माधो के अंगरेज़ी और फ़ारसी दोनों खत ठीक न थे । और न उसे इस तरफ़ ज़्याद: तवज्जु: थी मगर आबिद-हुसैन ने दो कापियाँ उसी दिन बनवाईं और अपने सामने लिखवाना शुरू किया । जो लोग इससे पहले माधो को पढ़ाते थे वह बहुत सा वक़्त बातें करने में सर्फ़ किया करते थे । माधो को इसकी आदत पड़ी हुई थी मगर आबिदहुसैन बातें करना जानते ही न थे । इब्तिदाए-उम्र[1] से उन्हें मिहनत की आदत थी । माँ बाप ने ऐसी सुहबतों में बैठने ही न दिया जिससे मज़ाक़ का मफ़्हूम उनके ज़ेहन में समा जाता जिससे इनको यह मालूम हो जाता कि फ़ज़ूल गप्पें उड़ाना भी हिफ़्ज़ाने सेहत[2] के उसूल में दाखिल है । लखनऊ के अक्सर साहबज़ादों को ग़ुफ़रान शबाब[3] से इश्क़बाज़ी का लपका पड़ जाता है और इसके साथ ही शेरो सुख़न[4] की तरफ़ तबियत माएल[5] होती है । इस बहाने से अक्सर नाजाएज़ तख़य्युलात[6] को उम्द: अल्फ़ाज़ के पैराए में अदा करने का अच्छा मौक़ा मिल जाता है । इन बलाओं से ख़ुदा ने इनको महफ़ूज़ रखा था । अभी पूरे जवान भी न होने पाए थे कि उनके वालिद मरहूम ने अज़राहे दूरअन्देशी इनकी शादी करदी । शादी के दूसरे ही साल इनके औलाद हुई । इसके चन्द ही रोज़ बाद ख़ानादारी का तमाम बार उनकी गरदन पर पड़ गया जिससे आज तक सर उठाने की मोहलत न मिली । न उन्हें यारों के साथ रातों को फिरने का इत्तफ़ाक़ हुआ था, न ऊँचे कोठों तक उनकी नीची नज़रें उठने पाई थीं । न रक़्सो सुरोद[7] की महफ़िलों में उन्हें बैठने का मौक़ा मिला था । ग़रज़ कि यह उस कूचे से बिल्कुल ही नाबलद[8] थे ।

---

१ आरंभिक अवस्था से ही २ स्वास्थ्य रक्षा ३ तरुणाई की कृपा से ४ शेरबाज़ी ५ अनुरक्त ६ ख़यालों की उड़ान ७ नाचगाना ८ अनजान ।

अलक़िस्सः माधो से उन्होंने पूरे दो घंटे मिहनत ली और ख़ुद भी दम न लिया। इस असना में बल्देव कई मरतबा किसी न किसी बहाने से उस खपरैल में आ आ के उनका पढ़ाना देख गया। यह अभी थोड़ी देर और पढ़ाते मगर अब नौ बज गए थे। माधो के स्कूल जाने का वक़्त था। यह अपनी जगह से उठे ही थे कि बल्देव मिस्त्री ने उन्हें इशारे से बुलाया और एक फ़र्द हिसाब की निकाल के पढ़वाई। उसमें कारीगरों के चिट्ठे की तफ़सील थी। शंकर लोहार और मातादीन बढ़ई के हिसाब में कुछ गुंजलक थी उसे साफ़ करा लिया। इनका नाम भी मय शरह तनख्वाह उसी फ़र्द में लिखवा दिया। अब यह घर रवाना हुए।

बल्देव के कारख़ाने में और तो कोई ऐसी खास बात न थी जो इनके दिल में कोई खास असर करती मगर भारी हथौड़ों की आवाज़ें और बड़ी धौंकनियों की झंकारें अभी तक उनके कानों में गूंज रही थीं। लोहे का सुर्ख़ होकर भट्ठी से निकलना, निहाई पर रखा जाना और उस पर तवाना हाथों की चोटों से शरारों[1] का उड़ना तख़य्युल[2] के परदों पर मुनक़्क़श[3] हो गया था। मिहनत और जफ़ाकशी की मुजस्सिम सूरतें आखों में फिर रही थीं। ज़रूरत और मुफ़लिसी, अहले हिरफ़ः[4] के ज़लील और कमरुतबा होने के बेहूदः ऐतक़ाद को जो दौलत, आरामतलबी और तन आसानी के मनहूस असर से दिलों में मुद्दत हाएदराज़ से रासिख[5] हो गया है, अब इनके दिल से हटा रही थीं। बल्देव मिस्त्री के कारख़ाने में किसी कारीगर का रोज़ानः छै आने से कम न था। उन्होंने अपने रोज़ीनः का हिसाब लगाया। सिर्फ़ ढाई आने रोज़ से कुछ कौड़ियाँ ऊपर हुई। इस हिसाब से भी सबसे कमतर ठहरे। यह ख़याल दिल में आया ही था कि हस्ब-नसब[6] के तवहु्हुमात[7] ने आ के घेरा और इसके साथ ही एक क़िस्म का ग़रूर दिल में चक्कर खाने ही को था कि उन्होंने उसे एक शैतानी वसवसा[8] तसव्वुर करके लाहौल[9] पढ़ी। दादा जान रिसालदार थे; लेकिन ख़ैरियत से वह रिसाला ग़दर से पहले ही शिकस्त हो गया था। नाना जान नवाबज़ादे थे मगर खान्दानी पेन्शन उन्हीं के हीने हयात[10] थी, अब उसका सुलस कैसा, एक हब्बा भी हमें नहीं मिलता। दादी अम्मा के पास चालीस लौंडी गुलाम थे मगर बीवी अपने हाथ से चूल्हा फूंकती हैं। बड़े मामू ख़ुदा बख़्शे फ़ीलनशीन थे मगर मैं जूतियाँ चटख़ाता फिरता हूँ। पाँच रुपये की नौकरी ऐसी चीज़ है कि उसके लिए सवेरे उठके महमूदनगर से शहर के उस पार कोई तीन मील के फ़ासले पा प्यादः जाता हूँ क़रीब दस बजे के घर जाता हूँ।

---

१ चिनगारियों २ कल्पना ३ अंकित ४ पेशावर लोगों ५ अटल ६ कुलीनता ७ भ्रान्त विचारों ८ प्रेरणा ९ लानत १० जीवनपर्यन्त।

फ़ाक़: में न आला नसबी[१] काम आई न वाला हसबी[२]। दो हरफ़ जो पढ़ लिए थे उससे बल्देव तक रसाई हुई और पाँच रुपये का सहारा हो गया। आइन्दा भी जो कुछ उम्मीद है उसी से है। इन मोहमल[३] ख़यालात से कुछ काम न चलेगा। बेहतर है कि उन्हें यहीं से रुख़्सत करो और गंगा पार की तरफ़ का रास्ता बतादो।

इसी असन: में यह ख़याल आया कि आख़िर घर तो जाते हो, हज़रतगंज की तरफ़ से होकर निकल चलो। आडिट आफ़िस में कल अर्ज़ी दी थी। बड़े बाबू ने तो साफ़ कह दिया था कि कोई जगह ख़ाली नहीं। मगर साहब के मुलाहिज़: के लिए अर्ज़ी रख ली थी। शायद साहब ने कोई हुक्म मुआफ़िक़ चढ़ाया हो। ज़ेहन ने अभी इस बात का फ़ैसला न किया था कि चलना चाहिए या नहीं और न अभी वह मुक़ाम आया था जहाँ से हज़रतगंज को रास्ता मुड़ता है। अब यह नहर के पुल पर थे। यहाँ से चन्द ही क़दम आगे बढ़े होंगे कि एक कबाड़िए की दूकान पर नज़र जा पड़ी। यहाँ बहुत सी पुरानी किताबें तले ऊपर रखी थीं। जी में आया इन किताबों में देखूँ, शायद कोई मतलब की हो। यह उमंग दिल में इसलिए पैदा हुई थी कि रात वाली चवन्नी अभी तक जेब में पड़ी हुई थी। फ़ौरन ही इफ़्लास[४] ने अपनी मुहीब[५] सूरत दिखाके चश्मा-नुमाई की[६]। उन्होंने उधर से मुँह फेर लिया। आगे बढ़े। अब वह मुक़ाम आ गया जहाँ से हज़रतगंज को सड़क जाती है। यहाँ उन्हें चन्द लम्हे ठहरना पड़ा। फिर यह सोंच के कि अभी सवेरा है, आडीटर साहब ग्यारह बजे दफ़्तर में आते हैं। इस वक़्त वहाँ जाके क्या करोगे। ऐसा है तो कभी चले जाना। घर की तरफ़ का रास्ता लो।

इसके बाद रास्ते में कोई ऐसा वाक़िय: नहीं हुआ जिसका बयान उनके ज़ेहनी तग़य्युरात[७] को समझाने के लिए ज़रूरी हो। सिर्फ़ उन्होंने एक बात देखी और ख़ूब समझे कि सदर बाज़ार से लेकर अमीनाबाद तक रास्ते में जो लोग मिले उनके चेहरों से एक खास क़िस्म की संजीदगी और अुज्र[८] के आसार पाए जाते थे। उनके लिबास में एक तौर की बेपरवाई और सादगी नुमायाँ थी। उनकी रफ़्तार में वह सिफ़त पाई जाती थी जिसे सुरअ़त[९] कहते हैं। इन सब अलामतों से ऐसा मालूम होता था कि वह कारोबारी आदमी हैं। इन मुक़ामों में इनको फ़क़ीर बहुत कम मिले और न कोई मुफ़लिस सफ़ेदपोश नज़र आया। बख़िलाफ़ इसके अमीनाबाद से होके जब मौलवीगंज में पहुँचे हैं तो उनको बहुत से आदमी ऐसे मिले जिनके हाथ में बटेरों की काबक है। कोई गन्ना छीलता चला जाता है, कोई साहब रास्ते में खड़े तानें उड़ा रहे हैं, कोई किसी पर फब्ती उड़ा रहा है। दो

---

१ कुलीनता २ प्रतिष्ठा ३ व्यर्थ ४ कंगाली ५ विकराल ६ आँखें तरेरीं ७ दमाग़ी चढ़ाव-उतार ८ विवशता ९ फ़ुर्ती।

चार किसी बाज़ारी औरत से सरे राह मज़ाक़ कर रहे हैं। दो एक बेफ़िकरे किसी नेकबख़्त औरत को नहीं मालूम कहाँ से घेरे चले आते हैं। वह बेचारी डर के मारे घूंघट से मुंह छुपाए लेती है। जल्द जल्द क़दम उठाए चली जाती है। यह हैं कि आवाज़े कस रहे हैं। कहीं दो बेतकल्लुफ़ दोस्तों में गाली गलौज हो रही है। कहीं दो आदमियों में मारपीट हो रही है। बहुत से आदमी जमा हो गए हैं। कहीं बन्दर का नाच हो रहा है। रास्ते में इस क़द्र भीड़ है कि रास्ता चलना मुश्किल है। ग़रज़ कि अक्सर आदमी ऐसे ही थे जिनके अत्वार[1] से ऐसा मालूम होता था कि उनको दुनिया व माफ़ीहा[2] में कोई काम नहीं। महज़ निकम्मे हैं। सिवाए तमस्ख़ुर[3] और तज़ईअ़ औक़ात[4] उन्हें कोई बात की फ़िक्र नहीं। बहुत से ऐसे मिले जिनकी सूरत ही से ऐसा मालूम होता था कि उन पर ग़म का आसमान टूट पड़ा है। खुदा जाने कै फ़ाक़े कड़ाके के गुज़र चुके हैं। इन गली कूचों में फ़क़ीर भी बहुत से मिले मगर रकाबगंज से यहियागंज के फाटक तक जहाँ दो तरफ़ा लोहियों, कसेरों और ठठेरों की दूकानों में भी एक क़िस्म की चहल पहल नज़र आई। इस बाज़ार में बेफ़िकरे कम नज़र पड़े। यहियागंज के फाटक से नख़ास तक और वहाँ से उनके मकान तक शहर के बाँके तिरछे बदवज़अ़[5] लोगों का तो गोया रमना[6] है। यह तमाशा देखते भालते अपने घर पहुंचे। खाना पक्का पकाया रखा था। बच्चे खेल रहे थे। बीवी टोपी काढ़ रही थीं। इनके जाने के साथ ही दस्तरख़ान बिछा। मियाँ-बीवी, लड़का, लड़की सबने एक साथ मिल के खाना खाया। अब वक़्त क़रीब ग्यारह बजे के था। इस वक़्त से दूसरे दिन सुबह को छै बजे तक कोई काम और न था। हिसाब से उन्नीस घंटे हुए। अगर उनमें से सात घंटे रात के सोने का हक़ निकाल डालें तो भी ग्यारह घंटे बचते हैं। निकम्मे और वक़्त फ़ज़ूल ज़ायः करने वाले इसमें बहुत सा वक़्त दिन को सो के काट देते हैं, मसलन ग्यारह बजे से तीन बजे तक। फिर तीन बजे से पाँच बजे तक नहाने धोने, बालों में कंघी करने, तेल डालने, माँग पट्टियाँ दुरुस्त करने, कपड़े बदलने में बख़ूबी सर्फ़ हो सकते थे। इसके बाद चौक की सैर को निकल जाते। इधर उधर राही तबाही में पड़े फिरते। इस तरह सात बज जाते। अब किसी दोस्त की मुलाक़ात का वक़्त आ जाता। वहाँ सिर्फ़ बातें करने में या किसी और शुग़ल मसलन गंजीफ़ः, चौसर, शतरंज वग़ैरह में तीन चार घन्टे बड़े लुत्फ़ के साथ बसर हो सकते थे। हमारे दोस्त मिर्ज़ा आबिदहुसैन ऐसे लोगों में न थे। इनको अपने अहलो अयाल[7] के आज़ूक़ः[8] की फ़िकर थी। तक़दीर की बेजा शिकायत न इन्होंने किसी किताब में पढ़ी थी और न उनका तख़य्युल[9] उसे इख़्तराअ़[10] कर सकता

१ ढंग २ जो कुछ उसमें है ३ मसख़रापन ४ समय की बरबादी ५ अशोभित ६ मैदान ७ परिवार ८ रोज़ी ९ विचार १० आविष्कार, गढ़ना।

था। इसलिए कि यह किसी फ़लकज़द:[१] शायर की सोहबत में कभी नहीं बैठे थे और न इन्होंने किसी नजूमी रम्माल से अपने दिन दिखवाए थे। वक़्त को किसी मुफ़ीद काम में सर्फ़ करने की धुन उनके दिल में समाई थी। उन्होंने किसी किताब में पढ़ लिया था कि वक़्त का एक लमहा सोने के रेज़ों की तरह क़ीमती है। इनको उन रेज़ों के जमा करने और उससे सोने की थकिया बनाने की फ़िकर थी। मगर उसकी तरकीब उन्हें नहीं आती थी। यह मुहन्दिस[२] की तरह इस नुस्खे की फ़िकर में थे। मगर अभी तक कोई उस्तादे कामिल न मिला था। अब मजबूरी ने सहारा दिया था कि हम यह नुस्खा बतादेंगे।

खाना खाने के चन्द मिनट बाद उन्होंने अपनी तमाम किताबें जो इंट्रेंस और नीचे दरजों में पढ़ी थीं, उन्हें निकाला। उनमें से सिवाए तीन किताबों के कोई ऐसी किताब न थी जो सिरे से आख़ीर तक उनकी कई कई मरतबा की पढ़ी हुई न हो। उन किताबों में से एक तो अलजबरा था जो सर्फ़ मुसावात[३] दरजा अव्वल तक पढ़ाया गया था। और निस्फ़ से ज़्यादा अभी पढ़ने को बाक़ी था। दूसरी यू-क्लिड (तहरीर अक़्लीदुस) जिसके सिर्फ़ औवल चार मक़ाले[४] पढ़े थे। पाँचवाँ, छठा और ग्यारहवाँ, बारहवाँ छूट गया था। तीसरे मेन्सुरेशन। इसमें सिर्फ़ सुतूह[५] का बयान देखा था। मुजस्सिमात[६] से बिल्कुल ही नावाक़िफ़ थे। यह किताब भी निस्फ़ से ज़्याद: पढ़ने को बाक़ी थी। इल्म रियाज़ी[७] से इनको खास शौक़ था। रियाज़ी के घन्टे में अक्सर इन्हीं के नम्बर बढ़ जाते थे। इनसे उतर के देवीपरशाद था। उसने इंट्रेंस पास करके रुड़की के दाखिले का इम्तहान दिया और उसमें कामयाब हुआ। अब ओवरसियर क्लास में पढ़ता है। डेढ़ बरस के बाद पचहत्तर रुपये का मुलाज़िम हो जायगा।

इन किताबों को पहले तो इन्होंने हसरत की निगाह से देखा, इस ख़याल से कि इनके पढ़ने का मौक़ा हाथ से निकल गया था। साथ के तालिबइल्म अक्सर एफ़-ए क्लास में पढ़ते हैं। अफ़सोस ! अगर मुमकिन होता तो हम भी पढ़ते। वक़्त तो है। माधो को पढ़ा के उधर ही कालेज चले जाया करते। मगर न फ़ीस अदा करने का मक़दूर है न किताबें ख़रीद सकते हैं। और अगर यह भी होता तो अब छै महीने से ज़्यादा ज़माना गुज़र गया। साथ वाले कहाँ से कहाँ पहुंचे होंगे। अब क्या हो सकता है। रुड़की कालेज में भी दाखिला नामुमकिन है। अगर इम्तहान के लिए तैयारी की और पास भी हो गए मगर वज़ीफ़ा न हुआ तो और सदमा होगा। दूसरे उसके इम्तहान के लिए किसी क़द्र

---

१ दुर्दशाग्रस्त २ गणितज्ञ ३ इक्वेशन ४ साध्य ५ समतल ६ शक्लों ७ गणितशास्त्र।

नक़शाकशी की ज़रूरत है, वह क्योंकर सीख सकते हैं। उसमें आलात[1] के बक्स की ज़रूरत है। ग़रज़ कि मुफ़लिसी ने हमारी तरक़्क़ी की राहें मस्दूद[2] कर दी हैं। कुछ बन नहीं पड़ता, क्या किया जाय। मगर कुछ न कुछ करना चाहिए। बेकार बैठना अच्छा नहीं। अब तो आडिट आफ़िस चलना चाहिए।

एक बजे के क़रीब आडिट आफ़िस पहुँचे। अर्ज़ी पर वही मामूली जवाब मिला, (नो वैकेन्सी) कोई जगह खाली नहीं। इस जवाब के मिलने से उन्हें कुछ ऐसा रंज नहीं हुआ। इसलिए कि उसकी तवक़्क़ो[3] पहले ही से थी। दफ़्तर से बाहर निकल कर यह चलने ही को थे कि रज़ाहुसैन इनके स्कूल का एक तालिबइल्म जिसने चौथे दरजे तक पढ़ के छोड़ दिया था, उससे मुलाक़ात हो गई।

आबिदहुसैन—तुम यहाँ कहाँ ?

रज़ाहुसैन—जी मैं तो यहाँ नौकर हूँ।

आबिदहुसैन—काहे में नौकर हो ?

रज़ाहुसैन—ट्रेसरों में

आबिदहुसैन—भई ट्रेसर किसे कहते हैं ?

रज़ाहुसैन—नक़्शों का अक्स उतारता हूँ।

आबिदहुसैन—क्योंकर ?

रज़ाहुसैन—ऐ लीजिए। आप को आज तक यही नहीं मालूम। चलिये दिखा दूँ।

रज़ाहुसैन इनको अपने दफ़्तर में ले गया। यहाँ इन्होंने देखा कई ऊँची ऊँची मेज़ें लगी हैं। उन पर नक़्शे बिछे हुए हैं। उन पर एक क़िस्म का बारीक मोमजामा (जिसे यह पहले काग़ज़ समझे थे) बिछाकर पीतल की कीलों से जड़ दिया है जिससे नीचे जो कुछ बना हुआ है ऊपर साफ़ नज़र आता है। औज़ारों के बक्स खुले हुए रखे हैं। कुछ लोग खड़े और कुछ ऊँची तिपाइयों पर बैठे खत पर खत खींच रहे हैं और हरफ़ पर हरफ़ लिख रहे हैं। कोई रंग की प्यालियाँ आगे रखे रंग दे रहा है। इन्होंने यहाँ की हर चीज़ को बड़े ग़ौर से देखा और जो बात समझ में न आई उसको उन लोगों ने बड़ी मेहरबानी से बताया। इतने में चपरासी ने कहा—साहब आते हैं। उन्होंने इरादा किया कि दफ़्तर से बाहर चला जाऊँ। उन लोगों ने कहा कि जी नहीं, साहब कुछ नहीं कहेंगे। आप ठहर जायँ। एक तिपाई पास रखी थी उस पर इन्हें बिठा दिया। साहब दफ़्तर में आया। सब लोगों का काम देखा। यह एक अजनबी आदमी थे। इनसे दरयाफ़्त किया—आप कौन ? यह घबरा से गए। रज़ाहुसैन ने जवाब दिया—मेरे पास

१ औज़ार २ बन्द ३ उम्मीद।

आते हैं। साहब ने पूछा—ट्रेसर का काम जानता है ? रज़ाहुसैन ने झूटमूट कह दिया अजी अभी सीखते हैं। साहब तो दफ़्तर से चले गए।

आबिदहुसैन—तुमने खूब कही कि सीखते हैं।

रज़ाहुसैन—फिर और क्या कहता ?

आबिदहुसैन—अच्छा तो अगर मैं सचमुच सीखूं तो सिखा दोगे ?

रज़ाहुसैन—मैं तो क्या, मगर उस्ताद नबीबख्श से कहो। उस्ताद नबीबख्श नक़्शानवीस रुड़की कालेज के सनदयाफ़्ता पास बैठे काम कर रहे थे। उन्होंने मज़ाक़ से कहा—मगर हज़रत मिठाई देना होगी।

आबिदहुसैन—मिठाई हाज़िर है मगर यह तो बताइये कितने दिनों में काम आ जायगा ?

नबीबख्श—यह भी उसी वक़्त बता दिया जायगा जब मिठाई दीजियेगा।

आबिदहुसैन—वाक़ई मज़ाक़ नहीं। मेरा इरादा इस काम के सीखने का है। अगर आप मेहरबानी करें तो मैं ममनून हूँगा।

नबीबख्श—मैं भी मज़ाक़ से नहीं कहता। अक्सकशी तो कोई चीज़ नहीं। अगर आप सीखने का क़स्द करें तो नक़्शाकशी सिखा दी जायगी। और आप तो अंगरेजी पढ़े हैं। आपको बहुत अच्छी जगह मिल जायगी।

आबिदहुसैन—अच्छा तो मैं कल से हाज़िर हूँगा। मिठाई लेता आऊँगा।

रज़ाहुसैन—यह कल क्यों ? क्या मिठाई के लिए दाम नहीं हैं ? आबिदहुसैन कुछ चुप से हो गए।

रज़ाहुसैन—(एक रुपया जेब से निकाल के एक चपरासी से) अमाँ नौरोज़अली एक रुपये की मिठाई तो ले आओ। उस्ताद भी क्या कहेंगे कि मुँह मीठा नहीं किया। नौरोज़अली रुपया ले के गया और चन्द ही मिनट के बाद मिठाई की टोकरी ले के आ गया। जितने अक्सकश चपरासी वग़ैरः वहाँ मौजूद थे, सब में दो चार डलियाँ तक़सीम हो गईं। आबिदहुसैन नबीबख्श नक़्शानवीस के शागिर्द हुए।

नबीबख्श—सुनिये मिर्ज़ा साहब! अक्सकशों की आजकल है ज़रूरत। साहब आप को देख ही चुके हैं। आज के आठवें दिन आप बीस रुपया महीने के नौकर हो जायँगे। अक्सकशी कोई चीज़ नहीं है। रही नक़्शानवीसी। उसके लिए एक उम्र चाहिये। जितनी मुझे मालूम है उसके बताने में दरेग न करूँगा। बाक़ी अगर आप को शौक़ होगा तो अपने आप सीखते रहियेगा।

आबिदहुसैन आठवें दिन नौकर हो जाने की खुशखबरी सुन के क़रीब था कि

शादीमर्ग[१] हो जाते। मगर वह रुपया जो रज़ाहुसैन ने उनकी तरफ़ से दे दिया था उसकी अदायगी की फ़िकर ने किसी क़द्र उनकी मसर्रत को बेलुत्फ़ कर रखा था। इतने में एक टुकड़ा ट्रेसिंग क्लाथ का उठा के नबीबख़्श ने इनके सामने रखा। और एक जदवल[२] क़लम में स्याही भर के बता दिया कि ऐ लीजिये इस तरह से खत खींचिये। इन्होंने ख़तकशी शुरू की। घंटे डेढ़ घंटे के अरसें में मोटे महीन खत उनके हाथ से निकलने लगे। इस असना में नबीबख़्श ने इनकी अंगरेज़ी तहरीर देखी। इनका अंगरेज़ी खत बहुत पाकीज़: था। मुन्शी नबीबख़्श ने छापे के हुरूफ़ लिखने का तरीक़ा बता दिया और एक बारीक क़लम और थोड़ा रद्दी ट्रेसिंग क्लाथ दिया कि इस पर इन हुरूफ़ों के लिखने की मश्क कीजिये। चार बजे तक इन्होंने बड़ी मिहनत से काम किया। जब दफ़्तर बरखास्त हुआ और लोग अपने अपने घरों को चले यह भी उनके साथ हो लिये।

आज इनको मालूम होता था कि गोया मैं नौकर हो गया। रज़ाहुसैन शाहगंज की तरफ़ के रहने वाले थे। उनका साथ बहुत दूर तक हुआ। रास्ते में बातें होती थीं। पाँच बजते बजते यह घर पहुँचे।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन को अपनी ज़िन्दगी में जिस क़द्र कामयाबियाँ हुईं (जिसका हाल इस किताब के मुलाहिज़े से मालूम होगा) उसमें उनकी नेकबख्त बीवी की सलाहीयत[३] का बड़ा दख़ल था। इन मियाँ बीवी के बाहमी मुहब्बत के उसूल में से एक यह बात थी कि एक दूसरे की नेकी पर पूरा भरोसा था। मियाँ के कामों पर बेहूदा नुक़्ता-चीनी करना जो एक उम्द: सिफ़त हमारे मुल्क की औरतों में है इनकी बीवी में न थी। बीवी मियाँ की इज़्ज़त करती थीं और समझती थीं कि उनको घर का ख़याल और बच्चों की मुहब्बत उसी तरह है जिस तरह मुझे है। आबिदहुसैन में रात देर तक घर से ग़ाएब रहने की आदत न थी। अगर हुस्न इत्तफ़ाक़ से कहीं देर होती थी तो बीवी को किसी क़िस्म की बदगुमानी न होती थी। न यह कि अगर कहीं मियाँ को देर हो गई, अब घर में आए तो बीवी ने मानामत डालीं। क़ियामत बरपा की। "नहीं तुम रण्डी के यहाँ गए थे।" मियाँ अगर वाक़ई ख़तावार हैं तो खैर। अगर नाकरद: गुनाह[४] उस सरज़निश[५] के मुस्तवजिद[६] ठहरते हैं तो अब जज़-बज़ हो रहे हैं, क़समें खाते हैं, क़ुरान उठाते हैं, वहाँ समाअत ही नहीं।

मियाँ—बीवी ! तुम्हारे सर की क़सम मस्जिद से नमाज़ पढ़ के मौलवी साहब क़िब्ला के पास गया था। शक्कियात नमाज़ में कुछ दरयाफ़्त करना था।

---

१ हर्षाधिक्य से मृत २ ख़त खींचने का ख़ास क़लम ३ गुणों ४ गुनाह नहीं किया है ५ सज़ा ६ हक़दार।

बीवी—वह कौन सा मौलवी उजड्डा है जो तुम्हें नौ नौ बजे तक बिठा रखता है। यह नहीं कहते अपनी चहेती के यहाँ गए थे। ख़ुदा ग़ारत करे मोटी को। हैज़ा खाए। ढाई घड़ी की मौत आए। ज़ोर से एक दो हत्तड़ ज़मीन पर मारा। देख लेना। हूँ असल नस्ल की सय्यदानी। मोटी को अठवारा न गुज़रेगा। कोस कोस के खा जाऊँगी।

मियाँ—यह किस को ?

बीवी—यह उसको जो तुम्हें आधी आधी रात तक बिठा रखे।

मुफ़लिसी के ज़माने में बीवी के ज़ेवर और असबाब को बेंच बेंच कर, वह जो अपने बाप के घर से लाई थीं, बहुत दिनों तक काम चलता रहा। यहाँ तक कि एक चाँदी का तार और ताँबे का कटोरा तक बाक़ी न रहा। अब तक बहुत दिनों से बीवी की मिहनत के ज़रिये से घर का काम चलता था जिसका हाल नाज़रीन[1] को मालूम हो चुका है मगर उसका ताना कभी मियाँ को नहीं दिया। आज जब सरेशाम आबिदहुसैन खुश खुश दफ़्तर से फिरे हैं तो उनको खयाल था कि बीवी से कुल हाल बयान कर दूँगा। फिर यह खयाल आया कि अब एक ही दफ़ा बा मुराद कहेंगे जिस दिन नौकर हो जायेंगे।

रात को उन्होंने नक़्शा बनाने की स्याही एक छोटी सी प्याली में घोली और दस ग्यारह बजे तक प्रिण्ट (नक़्शे के हुरूफ़) की मश्क़ करते रहे।

दूसरे दिन सुबह को उठे। बल्देव मिस्त्री के कारखाने गए। नौ बजे वहाँ से फ़रागत हो करके उधर ही उधर रेल के दफ़्तर पहुँचे। अभी कोई आया भी न था। यह दफ़्तर के बाहर टहला किए। जब सब आगए तो यह भी गए। अक्सकशी की मश्क़ करने लगे। आज साहब ने फिर इन्हें देखा मगर पूछा नहीं। खुलासा यह कि पाँच ही चार दिन के बाद यह अच्छी तरह ट्रेस करना सीख गए। दफ़्तर में ट्रेसरों की ज़रूरत पहले ही से थी। नबीबख्श ने साहब से कहके इनका नाम भी लिखवा दिया। बीस रुपये महीने के नौकर हो गए। माधो का पढ़ाना भी इन्होंने तर्क नहीं किया, अगरचे बहुत सख्त मिहनत पड़ती थी। अक्सर एक ही वक़्त खाना मिलता था मगर दुनिया बाउम्मीद क़ायम। पचीस रुपये का सहारा हो गया था। अब इन्हें किसी बात का ग़म न था। बीवी भी मुतमइन हो गई थीं मगर उन्होंने अपना काम नहीं छोड़ा। आठवें दसवें उनकी टोपी भी तैयार हो जाती थी। और मियाँ हुसैनअली बेच लाया करते थे। बहुत दिनों तक मियाँ हुसैनअली ने एक हब्बा हक़-अस्सअि[2] में नहीं लिया

१ पाठकों २ मिहनताना।

मगर अब एक आना रुपया उनका भी मुक़र्रर हो गया। इस तरह तीस उन्तीस रुपये मियाँ-बीवी मिल के पैदा कर लेते थे।

अगर कोई शख्स पस्त हिम्मत होता तो वह आइन्दा और कुछ तरक्क़ी न करता। लेकिन हमारे दोस्त मिर्ज़ा आबिदहुसैन में न वह वस्फ़ था जिसे तवक्कुल[1] कहते हैं। अगर ऐसा होता तो बीवी की चिकनदोज़ी के सहारे पर चारपाई के बान तोड़ा करते। और न वह सिफ़त थी कि जो क़नाअत[2] के नाम से मशहूर है। वरना बल्देव की पाँच रुपये की नौकरी काफ़ी थी। हयात चन्दरोज़ः खुश व नाखुश गुज़र ही जाती। मगर ज़्यादःतलबी ने इनको चैन न लेने दिया। दोपहर को घड़ी भर सो रहने की भी मुहलत न हुई। रेल के दफ़्तर में पहुँच गए। खैर यहाँ बीस रुपये की नौकरी मिल गई मगर इनकी तक़दीर में अब भी आराम न था। अक्सकशी से नक़्शाकशी सीखने का शौक़ हुआ। इनके उस्ताद नबीबख्श साहब रुड़की कालेज के पासशुदा तालिब-इल्म थे। उन्होंने यह सलाह दी कि अगर यह काम उसूल से सीखना है तो पहले तहरीर अक़लीदस का छटा मक़ाला[3] याद कर लीजिये। अब रात को यह छठा मक़ाला याद करने लगे। पहले तो उन्हें यह खयाल था कि कहीं जा के पढ़ना होगा। मगर ग़ौर से जो मुतालः किया आप ही आप समझ में आने लगा। ग़रज़ कि पूरा छठा मक़ाला मय पाँचवें मक़ाले उन ज़रूरी शक्लों के जिसकी छठे मक़ाले में ज़रूरत है, चन्द ही रोज में याद कर लिया। अब मुंशी नबीबख्श ने इनको नक़्शाकशी के उसूल हिन्दसे सिखाना शुरू किया। दफ़्तर में काम से फ़ुरसत न मिलती थी। शाम से यह मुंशी नबीबख्श के मकान पर पहुँचते थे। मुंशी नबीबख्श भी अपनी धुन के पक्के थे। उनको अंगरेज़ी पढ़ने का शौक़ था। खुलासा यह कि यह उन्हें अंगरेज़ी पढ़ाते थे और वह इन्हें नक़्शा सिखाते थे। नक़्शाकशी के साथ ही तख्मीना इमारत के सीखने का शौक़ हुआ। इसके लिए अक़लीदस का ग्यारहवाँ बारहवाँ मक़ाला और इल्म मसाहत मुजस्समात भी हासिल किया। छः सात महीने में यह पूरे नक़्शानवीस और एस्टीमेटर हो गए। उसी ज़माने में मुंशी नबीबख्श को एक महीने की रुख्सत की ज़रूरत हुई। साहब ने एवज़ी तलब की। मुंशी नबीबख्श ने उन्हें पेश कर दिया। साहब ने मन्ज़ूर कर लिया। इस ज़माने में उन्हें अपनी कारगुज़ारी दिखाने का बहुत उम्दः मौक़ा मिला। साहब इनके काम से बहुत खुश हुआ मगर अभी एक बात की इनमें कसर थी। पैमायश का काम यह बिलकुल न जानते थे। नहीं तो उसी ज़माने में इनको बहुत उम्दः नौकरी मिल गई होती। अब इन्होंने पैमायश के सीखने का तहय्या[4] कर लिया।

---

१ राम-आसरे याने निकम्मापन २ भाग्य पर सब्र ३ ज्यामिति का छठा साध्य ४ इरादा।

मुंशी नबीबख़्श के आने के बाद उन्हें फिर ट्रेसरी के काम पर जाना पड़ा। दो महीने के बाद अब इस काम की ज़रूरत दफ़्तर में न रही थी। सब ट्रेसर एकदम से तख़्फ़ीफ़[१] में आगए। यह भी मौक़ूफ़ हो गए। मगर महीने भर मुंशी नबीबख़्श की एवज़ी करने की वजह से साहब ने इनको बहुत उम्दः सार्टिफ़िकेट दिया। अब नौ बजे से इनको फ़ुरसत हो जाती थी। इस ज़माने में इन्होंने सर्वेइंग का काम सीखा। मुंशी नबीबख़्श के एक दोस्त मुंशी अल्लाबख़्श सदर में सब ओवरसियर होकर आए थे। उनको अक्सर पैमायश का काम रहता। यह उनके पास जाने लगे। उन्होंने प्रेज्मेटिक लेविल की पैमायश इन्हें अच्छी तरह सिखा दी।

एक दिन का वाक़िय: सुनिये। इनके मुहल्ले में एक साहब मीर काज़िमअली नामी रहते थे। वह पंजाब यूनीवर्सिटी में मौलवी-आलिम का इम्तहान देने वाले थे। इनके पास यूनीवर्सिटी का कलेन्डर ले के आए और ज़वाबित[२] इम्तहान के क़वाइद इनसे पढ़वा के तर्जुमे करवाए। जाते वक़्त भूले से कलेन्डर छोड़ के चले गए। यह उनके जाने के बाद उलट पलट के देखने लगे। ख़ुशनसीबी से इनकी नज़र उस जुज़्वो-किताब पर जा पड़ी जिसमें सीग़: इंजीनियरिंग के इम्तहानों का ज़िक्र था। यह उसे बडे शौक़ से पढ़ने लगे। थोड़ा सा ही पढ़ा था कि मारे ख़ुशी के उछल पड़े। उस ज़माने में इनके एक दिली दोस्त सय्यद जाफ़रहुसैन साहब रुड़की कालेज के एक पासशुदा लायक़ तालिबइल्म मुलाज़िम महकमा नहर रुख़सत पर आए हुए थे। मिर्ज़ा आबिदहुसैन ने फ़ौरन कपड़े पहने। कलन्डर लिए हुए शाहगंज उनके पास पहुँचे। सय्यद साहब को आवाज़ दी, वह घर से निकले।

सय्यद साहब—ख़ैरियत तो है?

मिर्ज़ा साहब—ख़ैरियत है। ज़रा इसे देखियेगा। मेरे तो हवास ठीक नहीं।

सय्यद साहब—(कलेन्डर को बड़े ग़ौर से पढ़ने लगे। अब उनके चेहरे से आसार मुसर्रत[३] के ज़ाहिर हुए) वाक़ई आप इम्तहान दे सकते हैं।

मिर्ज़ा साहब—ज़रा देखिए सिन की तो क़ैद नहीं है।

सय्यद साहब—नहीं सिन की तो क़ैद नहीं है।

मिर्ज़ा साहब—अच्छा तो अब देखिए मुझको किस-किस चीज़ में ज़्याद: मिहनत करना होगी।

सय्यद साहब—रियाज़ी तहरीर उक़्लेदस, मसाहत, यह सब आप जानते हैं। अंगरेजी की सिर्फ़ इंजीनियरिंग की इस्तिलाहात की दो किताबें जो रुड़की कालेज में छपी हैं उन्हें देख लीजिये। सर्वेइंग, ड्राइंग मेरे नज़दीक जितना आपने सीखा है काफ़ी है।

---

१ छटनी २ नियमावली ३ ख़ुशी।

सिर्फ़ एक चीज़ से आप बिलकुल नाबलद[1] हैं। इंजीनियरिंग; उसकी किताबें मेरे पास मौजूद हैं, उन्हें पढ़िये और जहाँ समझ में न आए मैं अच्छी तरह समझा दूँगा।

मिर्ज़ा साहब—इम्तहान कब होगा ?

सय्यद साहब—(कलेण्डर देखके) मई में। अभी दिन बहुत हैं। यह अगस्त का महीना है। नौ महीने आप के लिए काफ़ी हैं। बिस्मिल्लाह करके मिहनत शुरू कर दीजिये। मगर सुनिये तो, आपने इंट्रेंस कहाँ का पास किया था ?

मिर्ज़ा साहब—(एक ज़रा मुशव्विश[2] होकर) कलकत्ते का।

सय्यद साहब—(फिर कलेण्डर देख के) सिंडीकेट की खास इजाज़त और मिहरबानी से हर यूनिवर्सिटी का पास शुदा लिया जाता है।

मिर्ज़ा साहब (खुश होके) तो अब सिंडीकेट की इजाज़त क्योंकर हासिल हो ?

सय्यद साहब—मैं समझता हूं यह एक मामूली बात है। अच्छा बेहतर है। रजिस्ट्रार को एक दरखवास्त दे दीजिये।

उसी वक़्त दरखवास्त का मसविदा लिखा गया। सय्यद जाफ़रहुसैन ने इंजीनियरिंग की किताबें लाके हवाले कीं। मिर्ज़ा आबिदहुसैन साहब घर आए। फ़ौरन दरख्वास्त का मसविदा साफ़ किया। लिफ़ाफ़े में बन्द करके डाक में छोड़ आए। इसके बाद इहतियातन कलेण्डर की वह तमाम इबारत नक़ल करके रख ली जो सीग़ः इंजीनियरिंग से मुतअल्लिक़ थी। और उसी दिन से इंजीनियरिंग का मुतालअः[3] शुरू किया।

इंजीनियरिंग के पढ़ने में उनको एक तो सय्यद जाफ़रहुसैन से दूसरे बल्देव के कारखाने से बहुत मदद मिली। सामान इमारत और फ़न तामीर से तो सय्यद साहब ने इनको अक्सर इमारतों में ले जाके खूब वाक़िफ़ कराया। फ़न नज्जारी[4] और आहंगरी[5] के मुतअल्लिक़ जो बातें कीं वह कारखाने में आँख से देखीं।

हम इनकी सवानेउमरी[6] में सिर्फ़ इतना लिखना भूल गए हैं कि बल्देव के कारखाने से जो इनको खास दिलचस्पी थी उसकी वजह यह थी कि इन्होंने जाने के थोड़े ही दिनों बाद लोहे का काम सीखना शुरू कर दिया था। इसकी इब्तिदा[7] यों हुई कि एक दिन इनकी बीबी के पानदान के सरौते की कील टूट गई। दूसरे दिन जो यह माधो को पढ़ाने गए, हुलास लुहार को सरौना दिया कि इसमें ज़रा कील डाल देना। उसने लेके रख लिया। जब पढ़ाके चलने लगे तो उसके पास गए। वह किसी काम में लगा हुआ था, भूल गया। इनको घर जाने की जल्दी थी। एक कील वहाँ पड़ी हुई थी उसे उठाके अपने हाथ से कील डालना चाहा। कील डालके हतौड़े से सर को चपटा करने लगे। हतौड़ी उंगली पर पड़ गई। उंगली पिच्ची हो गई। हुलास ने जो यह देखा, हँसने

१ अनभिज्ञ २ चिन्तित ३ अध्ययन ४ बढ़ईगीरी ५ लुहारी ६ जीवनी ७ आरंभ।

लगा। इनके हाथ से सरौता लेके कील डाल दी। एक तो इनके चोट लगी, दूसरे काम न हो सका, तीसरे खिफ़्फ़त हुई[१]। खुद फ़रमाते थे कि हुलास का यह कहना "मियाँ साहब यह पढ़ना न हो, लोहे का काम है, आप लोगों से नहीं हो सकता।" उस वक़्त मेरे दिल पर असर कर गया। मैंने इरादा कर लिया था, खुदा चाहे तो इस काम को सीखके छोड़ूँगा। दो तीन दिन मैं चुपका हो रहा। फिर उसी हुलास के पास बैठना शुरू किया। पहले तो वह कुछ दिन हँसके टाल दिया करता था मगर जब उसने देखा कि यह पीछा नहीं छोड़ते तो आखिर बताने लगा। चन्द ही रोज़ बाद मैंने अपने घर पर भट्ठी बनाई। एक धौंकनी मोल ली। नखास से बहुत से औज़ार खरीदे। रेल के दफ़्तर से मैं चला आता था एक अंगरेज़ के बंगले पर नीलाम हो रहा था। बहुत से आदमी जमा थे। मैंने उसी दिन तनख्वाह पाई थी। मैं भी चला गया। यहाँ से एक बक्स काट-कबाड़ का खरीद लिया। उसमें बहुत सी ज़रूरी चीज़ें थीं, बढ़ई के औज़ार पूरे थे। कुछ लुहारी के औज़ार थे। एक फ़ीता ताम्बे का था। यह बक्स सवा दो रुपये का मेरे नाम पर छूट गया। फिर एक सीने की कल पर बोली हुई। यह तीन रुपये की मिल गई। एक बरफ़ बनाने की कल थी। उसका एक पुर्ज़ा टूटा हुआ था। डेढ़ रुपये की वह ले ली। घर पर लाके बरफ़ बनाने की कल मैंने खोल डाली। टूटे पहिये को निकाल के वैसा ही एक पुर्ज़ा ढालने का सामान किया। ढालने का मसाला तैयार किया। पकी ईंटों की सुर्खी चलनी के टुकड़े—यह सब चीज़ें मुनासिब मिक़दार से लेके कूट-पीट कर बारीक सफ़ूफ़ बना लिया। उसमें थोड़ा तारपीन का तेल मिला लिया। फिर एक साँचा लोहे का अपने हाथ से बना लिया। फिर उसी टूटे पुर्ज़े में जो दन्दाना टूट गया था, वैसा मिट्टी का बनाके सुखा लिया। मसाले को साँचे में डाल के दाग़ बना लिया और थोड़ा पीतल गला के वैसा ही पुर्ज़ा ढाल लिया। फिर सोहन से साफ़ करके कल में जड़ दिया। वह कल अच्छी खासी चलने लगी। फिर पुर्ज़ों को खोल के सियाहताब[२] किया। बाल्टी का वारनिश उड़ गया था। उसे दुरुस्त किया। ग़रज़ कि कल बिल्कुल नई होगई। मियाँ हुसैनअली के हवाले की। उन्होंने नखास में दिखाई। दस रुपये की फ़रोख्त हुई। फिर सीने की कल के जो पुर्ज़े टूटे हुए थे उन्हें भी अपने हाथ से दुरुस्त कर दिया। बीवी इस कल से बहुत खुश हुईं। मियाँ हुसैनअली की बीवी मुहल्ले भर से काम ले आती थीं। बीवी सिया करती थीं। इस काम में चिकन की टोपियों से ज़्यादः याफ़्त[३] थी।

---

१ लाज आई २ वह रंग जो साफ़ किये हुए लोहे पर नींबू लगाकर आग में तपाने से हो जाता है ३ आमदनी।

इसके बाद लकड़ी के काम पर मश्क़ करना शुरू की। चन्द ही रोज में घड़ौंचियाँ, तिपाइयाँ, इलमारियाँ, तख्त, बना-बना के बेंचना शुरू किए। रेल के दफ़्तर से जब नौकरी छूटी तो उससे रोटियाँ चलती रहीं। जो कुछ पसंदाज़[१] हुआ उसमें हाथ नहीं लगाया। खुदा ने इन कामों में ऐसी बरकत दी कि इंजीनियरी का इम्तहान पास करने से पहले ही दरगाह वाला मकान छुड़वा लिया। मगर वहाँ सकूनत नहीं इख्तियार की। जिस कुंजड़े के पास रेहन था उसी को किराए पर दे दिया। जिस मकान में अब सकूनत थी उसे मोल ले लिया। बरतन बासन खरीदे। बीवी के हाथ गले में कुछ ज़ेवर भी हो गया। बीवी के ज़ेवर में मिर्जा आबिदहुसैन की कमाई का एक हब्बा भी सर्फ़ नहीं हुआ। वह सब उन्होंने सिलाई करके बनवाया था।

आबिदहुसैन जिस क़द्र मिहनत करते जाते थे उसी क़द्र मिहनत की आदत बढ़ती जाती थी और उससे जो कामयाबी होती थी उससे शौक़ ज़्याद: होता जाता था। उसी मिहनत का यह नतीजा था कि पंजाब यूनिवर्सिटी के इम्तहान इंजीनियरिंग में औवल दरजे की सनद अता हुई। अब क्या था गोया सरकारी मुलाज़िमत की दस्तावेज़ हाथ आ गई। दो ही तीन महीने के बाद नौकर हो गए। साठ रुपये तनख्वाह। पन्द्रह रुपये भत्ता। पचहत्तर रुपये माहवार की आमदनी हुई। मुहकमे तामीरात में नाजाएज़ आमदनी[२] की बहुत गुंजाइश है। मगर हम अपने नाज़रीन[३] को यक़ीन दिलाते हैं कि हमारे दोस्त ने कभी एक हब्बा सिवाए तनख्वाह के नहीं लिया। शायद आपको यह खयाल होगा कि मिर्ज़ा साहब ने रेलवे के दफ़्तर में नौकर हो जाने के बाद बल्देव की नौकरी छोड़ दी होगी। नहीं छोड़ी, और फिर घर पर भी काम करते थे। बीवी अलाहिद: काम करती थी जिससे यह वहम हो सकता है कि उन मियाँ-बीवी को ज़रूरत से ज़्याद: रुपये पैदा करने की हवस थी। मगर इसके साथ ही नाजाएज़ तरीक़े से रुपये पैदा करना उनका शिआर[४] न था। उन्होंने जो कुछ पैदा किया वह अपने क़ूवत बाज़ू से पैदा किया। इससे उनको सरकारी मुलाज़िमत में रिश्वतखोर अहल-अमले[५] की वजह से बाज़ मौक़ों पर दुश्वारियाँ हुईं जिसका ज़िक्र आइन्द: किया जायगा। पहले हम उनके उन औसाफ़ का[६] शिम्म:[७] ज़िक्र करते हैं जिससे उनके अफ़सर इनकी क़द्रदानी करने लगे थे जो उनकी यौमन फ़यौमन[८] तरक़्क़ी का बाएस हुआ। एक मरतबा उनके अफ़सर आला एकज़ीक्यूटिव इंजीनियर साहब ने एक पुल की मिहराब के क़ालिब[९] का स्कीम बना के दिया और हुक्म दिया कि फ़ौरन बढ़ईखाने से एक ऐसा क़ालिब बनवा दो। परसों हम दौरे पर जाने वाले हैं। अपने साथ ले जायँगे। पूरे क़द का

---

१ बचत की पूंजी २ घूस, रिश्वत की आमदनी ३ पाठकगण ४ स्वभाव ५ कर्मचारियों ६ गुणों का ७ थोड़ा सा ८ दिन ब दिन ९ ढाँचा।

नक़्शा तैयार न था। इसलिए बढ़ई मिस्त्री की समझ में न आया। अब अगर नक़्शा तैयार किया जाता है तो देर होती है। आख़िर उन्होंने क़ालिब अपने हाथ से ख़ुद बनाना शुरू किया। आधा बना होगा कि साहब कारख़ाने में मुआयने को आए। देखा ओवरसियर साहब ख़ुद हाथ में बसूला लिए काम कर रहे हैं। बढ़ई मिस्तरी हाथ पर हाथ रखे बैठे हैं। साहब ने उसी हाल में उनको आके देखा, बहुत ही ख़ुश हुए। उस दिन से साहब को मालूम हुआ कि वह अपने हाथ से काम कर सकते हैं। इसी तरह लोहे का काम भी अपने हाथ से करते उनको देख लिया। जब साहब की तब्दीली हुई तो इनकी सर्विस बुक पर लिखा—"आबिदहुसैन अपना काम ख़ूब जानता है और लुहार के काम अपने हाथ से कर सकता है। हम इसकी तरक़्क़ी की सिफ़ारिश करते हैं।" उसकी सिफ़ारिश का यह नतीजा था कि अपनी मुलाज़िमत के दो ही साल के अन्दर सब-इंजीनियर हो गए।

एक मर्तबः इनको क़ौमी शुजाअत[1] दिखाने का भी मौक़ा मिला। बात यह हुई कि सरहद अफ़गानिस्तान में कुछ दिनों के लिए इनकी तब्दीली हो गई थी। एक दिन इंजीनियर साहब के साथ यह एक पहाड़ के दर्रे में पैमायश को गए थे। वहाँ दफ़अ़तन[2] छै सात पठानों ने आके घेर लिया। खलासी यह मामला देखकर रफ़ूचक्कर हो गए। यह और साहब अकेले रह गए। साहब ने कमर से रिवाल्वर निकाला। इत्तफ़ाक़ से गोली न चली, इसपर अफ़ग़ानी और दिलेर हो गए। इन्होंने सीन:सिपर होकर[3] साहब की जान बचाई और तलवार म्यान से खींच कर बड़ी मर्दानगी से मुक़ाबिला किया। इनके वालिद मरहूम अक्सर फ़नून सिपहगिरी[4] में मश्शाक़[5] थे। उन्होंने लड़कपन में कुछ इनको भी सिखा दिया था। वही उस दिन इनके काम आया और उस दिन इनको क़दीम फ़नून सिपहगिरी की क़द्र हुई।

इस वाक़िए से साहब के दिल में इनकी जगह हो गई। सब मातहतों से ज़्याद: इनको मानते थे। चुनांचे इनके सार्टिफ़िकेट में भी जो उन्होंने विलायत जाते वक़्त इनको बतौरेख़ुद[6] दिया था उसमें इस वाक़िए का इशारा है।

जिस ज़माने में मिर्ज़ा आबिदहुसैन नहर के मुहकमे में मुलाज़िम थे, एक रिश्वतख़ोर हेडक्लर्क से अदावत हो गई। वजह अदावत यह थी कि दुर्गा ठेकेदार, जिसके मार्फ़त राजबायों की पुलों की मरम्मत हो रही थी, दस रुपयें सैकड़ा ओवरसियर साहब को देता था, जिसकी जगह पर मिर्ज़ा साहब तशरीफ़ ले गए थे। उसमें ओवरसियर और हेडक्लर्क में निस्फ़न-निस्फ़ी[7] का हिसाब हो जाया करता था। मिर्ज़ा साहब भला कब

---

१ वीरता २ अकस्मात ३ डटकर ४ युद्धकला ५ अभ्यस्त ६ निजी तौर पर ७ आधम आध।

इसको जाएज़ रखते हैं। उन्होंने माहवारी हिसाब पैमायश में एक इंच की कसर न रखी। ठेकेदार की नानी मर गई। उस सूरत में भला वह कुछ क्यों देता, मगर हेडक्लर्क साहब को सख्त नुक़सान हुआ। पहले उन्होंने इशारतन व किनायतन[१] मिर्ज़ा साहब से कहा। यह ऐसी कब सुनते थे। फिर सराहतन[२] बज़रिये सेकेण्डक्लर्क से कहलवाया कि हमारे मुआमलात में दस्तन्दाज़ी न कीजिये। इसमें आप का भी भला है, हमारा भी। मिर्ज़ा साहब ने जवाब दिया कि किसी का नफ़ा क्यों न हो सरकार का तो नुक़सान है जो हमको बेशबहा दरमाहा देती है। मैं उसको गवारा नहीं कर सकता। मुझसे ऐसी उम्मीद न रखें और न दोबारः इस बारे में मुझसे गुफ़्तगू की जाय। यह साफ़ जवाब, हेडक्लर्क को बहुत ही शाक़ हुआ। वह साहब के कान इनकी तरफ़ से भरने लगा। कभी किसी काम के ताख़ीर होने[३] का इल्ज़ाम लगाया, कुछ हिसाब किताब में शकूक पैदा करके साहब के गोश गुज़ार किए। बाज़ ठेकेदारों से शिकायत करा दी कि मिर्ज़ा साहब काम नहीं देखते। साहब के बैरा और ख़ानसामाँ इनसे पहले ही नामुआफ़िक़[४] थे। उनसे वक़्तन फ़वक़्तन[५] कुछ कहलवाते रहे। पहले तो इन अमूर पर साहब को एतबार न आया, मगर कहाँ तक, कहने-सुनने से पहाड़ टल जाते हैं। आख़िर साहब को इनकी तरफ़ से सूए ज़न[६] पैदा हो गया और उसके आसार बाहमी ख़त व किताबत में ज़ाहिर होने लगे। मिर्ज़ा ऐसे बेवक़ूफ़ न थे, जो इस मामले को समझ न जाते। मगर बक़ौल शेख़—"आँ रा कि हिसाब पाक अस्त अज़ मुहासिबः चिः बाक"[७]

एक मरतबा पाँच मील का लेविल साहब ने किया था। उसकी ज़ाँच के वास्ते मिर्ज़ा साहब को भेजा। मिर्ज़ा साहब ने पैमायश की। काम की उजलत थी। इस लिए रिड्यूस्ड लेविल निकालने के लिए फ़ील्ड बुक दफ़्तर में दे दी। यहाँ हेडक्लर्क साहब ने फ़ील्ड बुक ग़लत कर दी। जब रिड्यूस्ड लेविल निकाल के साहब की फ़ील्ड बुक से मिलान हुआ, दस फ़ीट की ग़लती होगई। यह वह पैमायश है जिसमें फ़ी मील $\frac{1}{100}$ इंच की ग़लती माफ़ है। यहाँ दस फ़ीट की ग़लती पाँच मील में। साहब निहायत ही बरहम[८] हुए। उधर मिर्ज़ा साहब अपनी जगह पर नादिम[९] कि ग़लती और इस क़द्र ग़लती। या अल्लाह यह क्या माजरा है। हालाँकि मिर्ज़ा साहब ने बड़ी होशियारी से पैमायश की थी हर एक गज़ को दो-दो मरतबा पढ़ा था। बहुत ही मुतरद्दिद[१०] थे। बैठे फ़ील्ड बुक के हर एक ख़ाने को जाँच रहे थे। अक्सर मौक़ों के गज़ इनको याद थे। फ़ील्ड बुक में इसके ख़िलाफ़ लिखा हुआ था। अब उनको कुछ

---

१ बंद-बंद, संकेत से २ स्पष्ट ३ देर होने ४ विपरीत ५ समय समय पर ६ बुरा गुमान, कुधारणा ७ "जिसका हिसाब पाक है उसको जाँच का क्या डर!" ८ नाराज़ ९ लज्जित १० चिंतित।

शक पैदा हुआ। मैगनीफ़ायर (शीशा ख़ुर्दबीन) लगा के जो देखते हैं। मिटे हुये पेंसिली दाग़ साफ़ पढ़ लिए गए। वह उनकी याद के मुताबिक़ थे। मगर अक्सर जगह मेगनीफ़ायर से मिटे बड़े निशान न पढ़े गए। दूसरे दिन फिर मौक़े पर पैमायश करने गए। पहली मरतबा लेविल करते वक़्त एक काग़ज़ पर राइज़फ़ाल (नशेब व फ़राज़[1]) का हिसाब किया था। वह काग़ज़ इत्तफ़ाक़न एक जगह सड़क के किनारे पड़ा हुआ मिल गया। मिर्ज़ा साहब उसी वक़्त उस काग़ज़ को लिए घोड़ा दौड़ा के साहब के बंगले पर पहुँचे और हक़ीक़त हाल बयान की। साहब हेडक्लर्क पर बहुत मेहरबान थे। मिर्ज़ा के कहने से कुछ शक तो होगया मगर किसी क़िस्म का तदारुक[2] न किया। इससे बहुत ही बददिल हुए और उस दिन से दफ़्तर वालों से बहुत होशियार रहने लगे। दफ़्तर वालों का कोई क़ाबू न चला मगर इनकी वजह से उनका माली नुक़सान होता था। इसलिए यह फ़िक्र थी कि किसी तरह इनको निकलवाना चाहिये। आख़िर एक ठेकेदार से रिश्वतदही का इज़हार साहब के सामने दिलवा दिया। और इस सलीक़े से मुक़द्दमा बनाया कि साहब को यक़ीन आगया। साहब ने मिर्ज़ा को मुअत्तल किया और मुक़द्दमा फ़ौजदारी में भेज दिया। तहक़ीक़ात शुरू हो गई। इस्तग़ासे की तरफ़ के गवाह पूरे ठीक उतर गए। मिर्ज़ा के कौंसिल[3] ने बहुत ज़ोर दिया। जिरह के सवालात बहुत ही सख़्त किए मगर एक गवाह न टूटा। मिर्ज़ा पर चार्ज क़ाएम हो गया। अब डिफ़ेन्स[4] के गवाह गुज़रने लगे। मिर्ज़ा ने उज़्र किया कि जिस दिन और जिस वक़्त का यह वाक़िय: बयान किया गया है, मैं पचास मील के फ़ासले पर ख़ुद इंजीनियर साहब के साथ पैमायश कर रहा था। इंजीनियर साहब ख़ुद गवाही में तलब हुए थे मगर हेडक्लर्क साहब जालसाज़ी में कामिल थे। उन्होंने पहले ही इसका इन्तज़ाम कर लिया था। साहब के दौरे की किताब में तारीख़ बदल दीगई। अगरचे साहब को ख़ुद याद था मगर तहरीरी शहादत के मुक़ाबले में ज़बान क्या काम देती। मिर्ज़ा का उज़्र न चल सका। मिर्ज़ा पर जुर्म आएद होगया। जेलख़ाने जाने में कोई बात बाक़ी न थी। मिर्ज़ा के कौंसिल ने उज़्र मज़ीद[5] के लिए मुहलत माँगी। शेसन जज ने मंज़ूर की। अगरचे मिर्ज़ा के चाल चलन से एक ज़माना वाक़िफ़ था। ख़ुद अहले जूरी मिर्ज़ा की बेगुनाही के मुक़िर[6] थे। मगर शहादत तहरीरी और ज़बानी इस क़द्र इनके ख़िलाफ़ थी कि कुछ किसी के बनाए न बनती थी। कार्रवाई इस मुक़द्दमे की रोज़ाना अख़्बारों में छपती थी। अहले अख़्बार की राए भी मिर्ज़ा के मुवाफ़िक़ थी। 'अज़् कि तामे:'[7] सब को मिर्ज़ा

---

१ ऊँचाई-नीचाई २ रोक, उपाय ३ सलाहकार वकील ४ बचाव की तरफ़ ५ अतिरिक्त पेटिशन ६ मानने वाले ७ छोटे से बड़े तक।

की बेगुनाही पर अफ़सोस था। दर हक़ीक़त मिर्ज़ा पर यह बहुत ही सख़्त वक़्त था। ख़ास मिर्ज़ा के दिल पर जो कुछ गुज़र गया उसको सिवाए ख़ुदा के और कोई नहीं जानता। बीवी बच्चों में क़ियामत बरपा थी। मुक़द्दमें की आख़िरी पेशी में कोई चार दिन और बाक़ी थे। हेडक्लर्क और उनके मातहत अह्‌ले दफ़्तर जो रिश्वतख़ोरी में उनके कास:लेस[1] थे, बहुत ही ख़ुश थे। साहब को मिर्ज़ा के साथ कोई हमदर्दी न थी। एक तो यह इस सबब से कि हेडक्लर्क ने उनको मिर्ज़ा की तरफ़ से पहले ही बदज़न कर रखा था, दूसरे एक सबब यह भी था कि साहब बहादुर किसी क़द्र बदज़बान थे और मिर्ज़ा को उसकी बरदाश्त न थी। एक दिन दौरे पर मिर्ज़ा से और उनसे एक वाक़िये पर तकरार होचुकी थी। वाक़िय: यह था।

साहब बहादुर लेविल कर रहे थे। मिर्ज़ा पेसिंग (क़दमों से पैमायश करना) करके खूँटियों पर गज़ रखवाए जाते थे। खलासी जो गज़ लिए हुए था पैमायश के काम से वाकिफ़ न था। उसने एक गज़ को बजाए खूँटी के ज़मीन पर पढ़वा दिया। साहब इस गज़ को पढ़के आगे बढ़े। मिर्ज़ा को जब इस ग़लती की इत्तिला हुई तो बख़याल इसके कि पैमायश ग़लत न होजाय साहब से कह दिया। अब साहब को दोबार: लेविल करके गज़ पढ़ना पड़ा। इस बात पर साहब बहुत झुँझलाए और बजाए इसके कि मिर्ज़ा से ख़ुश होते, सख़्त कलिम: कह बैठे। मिर्ज़ा को बहुत ही नागवार हुआ। मगर चूँकि इस बाब में थोड़ी सी ग़फ़लत मिर्ज़ा की भी थी इसलिए ख़ामोश हो रहे। इस पैमायश में थोड़ी दूर और आगे जाके साहब ने हुक्म दिया कि गाँव के सेहद्दे[2] पर गज़ रखवाओ। मिर्ज़ा इस इलाक़े में चन्द ही रोज़ से आए हुए थे और कभी उस तरफ़ दौरे का इत्तफ़ाक़ न हुआ था। इसलिए लोगों से सेहद्द: दरयाफ़्त करने लगे। इसमें देर लगी। अब शाम का वक़्त था। साहब को डेरे पर पहुँचने की बहुत जल्दी थी। चाहते थे पैमायश जल्द ख़त्म करें। इसलिए बहुत ही झुँझलाए हुए थे। छूटते ही मिर्ज़ा को उल्लू कह बैठे। उस वक़्त मिर्ज़ा से भी यह गुस्ताख़ी हुई कि उन्होंने साफ़ जवाब तुरकी ब तुरकी दिया। साहब इसके आदी न थे इसलिए सख़्त नागवार हुआ। क़रीब था कि नौबत ब हुश्त मुश्त[3] पहुँचती। मगर चपरासियों ने बीच बचाव कर दिया। सेहद्द: मिल गया था। पैमायश ख़त्म हुई। गाड़ी साहब की पहुँच गई थी। सवार हुए। अब बिल्कुल रात होगई थी। डेरा इस मुक़ाम से आठ मील के फ़ासिले पर था। मिर्ज़ा को मालूम न था कि साहब कहाँ तक पैमायश करते जायँगे। घोड़े का हुक्म न दिया था। साहब बहादुर ख़ुद गाड़ी में बैठकर रवाना हुए। मिर्ज़ा पा प्याद: हमराह हुए। साहब का गुस्सा अब फ़िरो होगया था। बातें होने लगीं। बड़ी

---

१ प्याला चाटने वाले २ तिराहे, गाँवों के डाँड़ (मिलने की जगह) ३ हाथापाई।

दूर तक मिर्ज़ा पा-प्यादः गाड़ी के साथ चले गए। साहब का अर्दली और चपरासी दोनो गाड़ी पर थे। आखिर साहब गाड़ी तेज़ करके आगे बढ़ गए। मिर्ज़ा बेचारे कोई नौ बजे रात को सर्दी खाते हुए अपने डेरे पर पहुँचे। ग़रज़ कि साहब बहादुर से और मिर्ज़ा से नाचाक़ी होगई थी। अगरचे यह अम्र कुछ ऐसा न था लेकिन उसी जुर्म पर साहब ने भत्ता बन्द कर दिया था। मिर्ज़ा ने इसकी कोई शिकायत अफ़सर आला से न की। इस वाक़िए की खबर छिपी रहने वाली न थी। हेडक्लर्क साहब को हाशिया लगाने का खूब मौक़ा मिला। मिर्ज़ा ने बहुत चाहा कि अपनी कारगुज़ारियों से साहब को खुश करें, मगर साहब के दिल में इनकी तरफ़ से गुंजाइश ही न थी। जो काम यह क़ाबिल तहसीन[१] करते थे साहब उसको इनका फ़र्ज़ मन्सबी[२] तसव्वुर करते थे। और अगर बमुक़्तज़ाए बशरीअत[३] किसी क़िस्मत की फ़िरोगुज़ाश्त[४] हो जाती थी तो साहब को उसकी याददाश्त की फ़िक्र हो जाती थी। मुक़द्दमा फ़ौजदारी में साहब से अगरचे क़ानूनी कार्रवाई में कोई अम्र खिलाफ़ सिद्क़[५] नहीं हुआ। इसमें साहब का क्या गुनाह था कि उनकी नोट बुक गलत करदी गई। जो लोग इन मुआमलात से वाक़िफ़ थे उनकी यह राए थी कि साहब को मिर्ज़ा के साथ कुछ रिआयत करनी थी। अगरचे साहब को मिस्ल हेडक्लर्क के इसकी खुशी न थी कि मिर्ज़ा क़ैद हो जायँ, मगर मिर्ज़ा के क़ैद हो जाने पर साहब को कुछ अफ़सोस भी न था। अफ़सर और मातहत में ज़रूर है कि किसी क़द्र हमदर्दी हो। महज़ क़ानूनी तअल्लुक़ से काम नहीं चल सकता। यह हमदर्दी दो तरह से पैदा हो सकती है। एक तो जाएज़ तरीक़े से। वह यह कि मातहत कारगुज़ार[६] हो और अफ़सर क़द्र शिनास[७]। और दूसरे बतौर नाजायज़। वह यह कि मातहत खुशामदी हो और अफ़सर खुशामदपसन्द। न साहब खुशामदपसन्द थे न मिर्ज़ा खुशामदी। मिर्ज़ा कारगुज़ार मातहत थे और साहब क़द्रशिनास मशहूर थे। मगर हेडक्लर्क साहब ने वाक़िआत पर ऐसा पर्दा डाल दिया था कि मिर्ज़ा को अपनी कारगुज़ारी दिखाने और साहब को क़द्रशिनासी करने का मौक़ा न दिया। मिर्ज़ा को इसकी भी परवाह न थी। इसलिए कि यह अक्खड़ आदमी थे। यह सिर्फ़ अपना कारे-मन्सबी[८] करके खुश होते थे। कारे-मन्सबी का एवज़ अपनी तनख्वाह को समझते थे। इसके लिए किसी क़िस्म के सिले[९] या सिताइश[१०] को ज़ोफ़ तबिअत[११] खयाल करते थे। इनकी सशमाही[१२] कारगुज़ारी की रिपोर्टें इनके गुज़श्तः अफ़सरों ने सतरें के सतरें तारीफ़ में

---

१ तारीफ़ २ नियत कर्तव्य ३ मनुष्य होने के नाते ४ भूलचूक ५ सच से परे ६ कर्तव्यपरायण ७ गुणपारखी ८ सरकारी काम ९ बदला, प्रतिकार १० तारीफ़ ११ मन का दौर्बल्य १२ छमाही।

लिखी थीं; सिवाए इस सशमाही[1] के जिसमें बुरा भला कुछ न लिखा गया था और इसके बाद भत्ता बन्द कर दिया गया था।

मुआमलात की यह सूरत थी। जब मुक़दमा क़ायम हुआ। अब सिर्फ़ चार दिन और बाक़ी हैं, हर शख्स जिसको इनसे तअल्लुक़ खातिर था, इसी अफ़सोस में था कि मिर्ज़ा मुफ़्त फँसे।

मिर्ज़ा बेचारे खामोश हैं कि शिकवा न शिकायत, तक़दीर पर शाकिर हैं। नाकामी उम्मीद भी है रहम के क़ाबिल, मायूस हैं एसे की दुआ भी नहीं करते।

मिर्ज़ा का बयान है कि मैंने इस बाब में ख़ुदा से किसी क़िस्म की दुआ नहीं की। मेरा खयाल था कि मेरा अक़ीद: है कि ख़ुदा मुझ पर मेरे माँ बाप से ज्यादह मिहरबान है। वह दानाए राज़[2] और कारसाज़ है। इस हालत में जो मेरे हक़ में मुनासिब होगा वही किया जायगा। "मर्ज़ी मौला अज़ हम: औला"[3]। इस खयाल से दुआ कुछ ज़रूरी नहीं। रही यह बात कि दुआ से शान अबूदियत[4] जाहिर होती है। इसके वास्ते दुआए क़ुनूत[5] और दीगर अदअिय:[6] जो नमाज़ में दाखिल हैं काफ़ी हैं। हमारी राय इस अम्र में मिर्ज़ा के खिलाफ़ है। इसलिए कि सिवाए इज़हार अबूदियत[7] के एक क़िस्म का खुलूस[8] भी दुआ से पाया जाता है। खैर इस मौक़े पर इस मसले पर ज़्याद: बहस करना हमको मंज़ूर नहीं। मिर्ज़ा की सीरत[9] का बयान 'मिन् ओ अन्'[10] मतलूब[11] है।

मिर्ज़ा की क़िस्मत के फ़ैसले में तीन दिन बाक़ी हैं। शिवबिहारी ठेकेदार असल मुस्तग़ीस[12] और रामदीन एक और ठेकेदार दोनों शराबखाने में बैठे ठर्रा[13] उड़ा रहे हैं और यह बातें हो रही हैं—

रामदीन—कहो उस मुक़द्दमे में क्या हुआ ?

शिवबिहारी—कौन मुक़द्दमा ? मिर्ज़ा वाला।

रामदीन—वही मुक़द्दमा।

शिवबिहारी—मिर्ज़ा अब नहीं बचते। गए सात बरस को।

रामदीन—बड़े पुन[14] का काम किया तुमने।

शिवबिहारी—क्यों पुन का काम क्यों नहीं किया। ऐसे का जाना ही अच्छा है।

---

१ छमाही २ रहस्य का जानने वाला ३ ईश्वरेच्छा ही में हमारा भला है ४ भक्ति-महिमा ५ नमाज़ में संतोश के लिए एक विशेष दुआ पढ़ना ६ दुआएँ ७ भक्ति-अभिव्यक्ति ८ पवित्रता ९ स्वभाव १० अक्षरशः ११ अभीष्ठ १२ फ़ौज़दारी में दावा दाइर करने वाला १३ देशी शराब १४ पुण्य।

आप खाए न दूसरों को खाने दे। बाप क़सम ! भैया रामदीन, जब से यह मिर्ज़ा इस इलाक़े में आया, मेरा तो दस बारह हज़ार का नुक़सान होगया।

रामदीन—क्यों क्या तुम्हारा कोई बिल काट दिया ?

शिवबिहारी—बिल तो नहीं काट दिया। मगर बालू की सफ़ाई में हमको हज़ार डेढ़ हज़ार साल में मिल जाया करते थे। चार बरस से एक कौड़ी भी नहीं मिली।

रामदीन—क्यों क्या ठेका तोड़ दिया ?

शिवबिहारी—नहीं, ठेका तो नहीं तोड़ा। पैमायश में कोई गुंजाइश नहीं रखी। दो सौ पचीस सात आने वसूल हैं। कहो जब इस काम में दो सौ पचहत्तर साल में मिले तो हम क्या खायँगे ?

रामदीन—तो पैमायश में कम नापा होगा ?

शिवबिहारी—तुम तो समझते हो फिर नादान बनते हो। कौन कहता है कि (उन्होंने) कम नापा।

रामदीन—फिर उनकी क्या खता। जितना काम तुमने किया था उसके दाम दिलवा दिए। एक हम कहेंगे कि मिर्ज़ा साहब पैमायश के बड़े सच्चे हैं। हमने तो एक बिल बनवाया था उसमें देख लिया। हमारा जितना काम था उससे एक इंच न घटाया न बढ़ाया। न हमारा नुक़सान किया न सरकार का। पूरे दाम दिलवा दिए। हेडक्लर्क साहब पाँच रुपये माँगते थे। मैंने अपना पूरा बिल आने पाई से वसूल कर लिया। कौड़ी नहीं दी। देता क्यों ? काम मैंने किया, मिहनत की, रुपया लगाया। फिर हेडक्लर्क कौन होते हैं जो रुपये लेते।

शिवबिहारी—कितने का बिल था ?

रामदीन—पाँच हज़ार छः सौ इकानवे रुपये तेरह आने सात पाई का।

शिवबिहारी—और ओवरसियर साहब को क्या दिया ?

रामदीन—मिर्ज़ा को ?

शिवबिहारी—हाँ और किसे।

रामदीन—इतनी तो मैं क़सम खा सकता हूँ कि मिर्ज़ा ने कभी एक पैसा घूस का नहीं खाया। तुमने उस ग़रीब को बेकार फँसाया है। देखना क्या भुगतान भुगतते हो। और फिर झूठी गंगा अदालत में उठाई। मिर्ज़ा देवता आदमी है। उसको सता के फल न पाओगे। इतना कहके रामदीन नशे की धुन में ज़ारोक़ितार रोने लगा।

शिवबिहारी—मिर्ज़ा तो अब जाते हैं। तुम रोया करो। जो हमारा नुक़सान करे उसके बाप को हम फँसायेंगे।

रामदीन—अबे जा, तूने धरम नास कर दिया। ऐसे गऊ आदमी को फँसाया।

परमेशर चाहेगा तो इसका एवज़ इसी जनम में मिल जायगा। और दूसरे जनम में जो भुगतना पड़ेगा उसे कौन जाने।

शिवबिहारी—और जो दूसरे का पेट काटे उसका क्या हाल होगा?

रामदीन—कौन सा तेरा पेट काटा? जितना तूने काम किया था उसका रुपया दिलवा दिया।

शिवबिहारी—और आप जो रिश्वत खाई?

रामदीन—तू झूठा है। मिर्ज़ा ने एक दमड़ी रिश्वत नहीं खाई। ७ मई को जिस दिन तूने बयान किया है कि रिश्वत दी है उस दिन मिर्ज़ा दौरे पर साहब के साथ थे। तू बयान करता है कि बुरहामपुर के पड़ाव पर पाँच सौ रुपये सात बजे शाम को ले गए।

शिवबिहारी—तो क्या इसमें झूठ है?

रामदीन—सब झूठ है। उस दिन चार बजे साहब ने सीता नाले का पुल देखा। मिर्ज़ा, साहब के साथ थे। वहीं मैं भी था। मेरी मदत गई थी। मेरे चिट्ठे में साहब का मुलाहज़: लिखा हुआ है। वहाँ से चार मील के आगे साहब ने शिवदीन-खेड़ा में क़ियाम किया। दूसरे दिन सुबह से शाम तक साहब के साथ पैमायश में रहे। शिवदीनखेड़ा से बुरहामपुर चौंतीस मील के फ़ासले पर तुझसे रिश्वत लेने किस वक़्त गए थे।

शिवबिहारी—सात मई को साहब दौरे पर गएही नहीं। उनकी नोटबुक में सत्रह तारीख़ का दौरा लिखा है, तू सात मई का दौरा बक रहा है।

रामदीन—सात के सत्रह दफ़्तर में बने हैं। हमारा चिट्ठा तो कोई देखे।

शिवबिहारी—अबे तेरा चिट्ठा कौन पूँछता है। साहब की नोटबुक सही है कि तेरा चिट्ठा सही है?

रामदीन—साहब की नोटबुक में तो जाल बना है। हमारे चिट्ठे में कौन जाल बनाता?

शिवबिहारी—फिर तूने गवाही दी होती।

रामदीन—हम गए हुए थे कानपुर, नहीं तो गवाही ज़रूर देते। और अब जो मौक़ा होगा तो क्या गवाही न देंगे।

इस तक़रीर को सुनकर शिवबिहारी ज़रा धीरे हुए। नशा हिरन होने लगा। क्योंकि अभी मुक़द्दमे की तारीख़ के तीन दिन बाक़ी थे। मुद्दआअ़लैह[1] को मज़ीद उज़्र[2] की गुंजाइश बाक़ी थी।

इधर तो दोनों ठेकेदारों में यह बातें हो रही थीं, उधर लेखई चमार जो मिर्ज़ा के भाई

१ प्रतिवादी, जिस पर दावा दायर हो २ आपत्ति।

का साईस था, टके का ठर्रा उड़ाने भट्ठीख़ाने में आया करता था। उसने जो इस मुक़द्दमे की बातें सुनीं, ठर्रा पीके नीम के दरख़्त की आड़ में चिलम पीने लगा। मुक़द्दमें की रूदाद[1] से उसको भी एक गूनः[2] तअ़ल्लुक़ था। उस दिन ख़्वामख़्वाह टके का ठर्रा पिया और चुपका सुना किया।

घर पर पहुँचते ही अपने भाई मक्का से कुल वाक़ियः बयान किया। मक्का ने दूसरे दिन सुबह को मिर्ज़ा साहब से यह सब हाल कहा। चलिए रामदीन मय चिट्ठे के तलब होगए। यही शहादत मिर्ज़ा की बरीयत[3] के लिए काफ़ी थी लेकिन एक अम्र[4] ख़ुदासाज़[5] वाक़ै हुआ। शिवबिहारी और रामदीन की तक़रीर अगरचे चन्दाँ दिलचस्प न थी मगर मिर्ज़ा साहब के एक दोस्त ने उसको लेखई से दोबारः सुना और उसे क़लमबन्द करके रामदीन के आगे दुहरा दी और अंगरेज़ी में तर्जुमा करके अख़बार में भेजदी। यह अख़बार सुपरिंटेण्डेण्ट इंजीनियर साहब की नज़र से भी गुज़रता था। उन्होंने जो उसको पढ़ा उसी वक़्त अपनी फ़ाइल से एक डमी आफ़िशियल चिट्ठी साहब इक्ज़ीक्यूटिव इंजीनियर की निकाल के देखी। उसमें सीता नाले के मुलाहज़े का कुछ ज़िक्र था। उसमें फ़ी-अल्वाक़िअ़[6] सात मई अज़् मुक़ाम शिवदीनखेड़ा तहरीर था। साहब मौसूफ़[7] ने उसी वक़्त एक चिट्ठी इक्ज़ीक्यूटिव इंजीनियर को और एक सेशन जज को तहरीर की। अब मुक़द्दमें की सूरत बदल गई। मिर्ज़ा निहायत इज़्ज़त के साथ बरी हुए। शिवबिहारी पर उल्टा मुक़द्दमा चला। बच्चा सात बरस को गए। हेडक्लर्क फँस ही गए होते मगर जाल बनाना साबित न हो सका। इस इलाक़े से तब्दील कर दिए गए। मिर्ज़ा वहीं रहे। चन्द ही रोज़ बाद साहब की भी तब्दीली हुई। दूसरे साहब जो आए उनसे मिर्ज़ा से ख़ूब मुवाफ़िक़त[8] रही और सुपरवाइज़र के ओहदे तक तरक़्क़ी हुई।

  

अहबाब[9]

एक हकीम का क़ौल है कि इंसान के ज़ेह्न[10] की तरक़्क़ी के दो सबब हैं। एक दाख़िली[11] और दूसरा ख़ारिजी[12] और फिर इनमें से हर एक की दो क़िस्में हैं। दाख़िली में ख़ुद इंसान की ज़ाती इस्तादाद[13] और मौरूसी क़ाबिलियत[14] शामिल हैं और ख़ारिजी

१ लक्षण २ कुछ-कुछ ३ छुटकारा ४ घटना ५ दैवी ६ घटना-क्रम ७ उल्लिखित ८ अनुकूलता ९ साथीसंगी १० बुद्धि, प्रतिभा ११ आन्तरिक १२ बाह्य १३ वैयक्तिक क्षमता १४ पैतृक योग्यता।

में उन असबाबे तबीई[१] का ज़िक्र शामिल है जो वक़्त पैदाइश से नश्वोनमा[२] तक इंसान को घेरे हुए रहते हैं। इसीके साथ और निज़ामे मुआशरत[३] की तासीर[४] शामिल है। यह चार अम्र[५] इंसान की सीरत[६] के जुज़ो-अज़म[७] हैं। हमे देखना है कि मिर्ज़ा आबिदहुसैन की सीरत पर उनका किस हद तक असर पड़ा। ज़ाती इस्तादाद[८] से क़तानज़र[९] करके जब हम और अज्ज़ा की तरफ़ ग़ौर करते हैं तो हमें लखनऊ के और रहने वालों में और इनमें कुछ ज़्यादः फ़र्क़ नहीं मालूम होता। हाँ इतना ज़रूर है कि मिर्ज़ा बाक़र-हुसैन इनके वालिद मरहूम ने इनकी तालीम में हत्तलवुस्अ[१०] ग़फ़लत नहीं की। मौरूसी क़ाबिलियत का यह हाल है कि इनके खानदान में सिवाए इनके और कोई ऐसा लिखा पढ़ा न था जिसको पढ़ा-लिखा कह सकें। वालिद माजिद[११] इनके फ़ारसी में कामिल थे। दादाजान सिर्फ़ मामूली पढ़े-लिखे थे जैसे उस ज़माने के शुरफ़ा[१२] पढ़े होते थे। और उनसे पहले जो लोग उनके अज्दाद[१३] में थे वह सब के सब अनपढ़ नाख्वान्द:[१४] (उम्मीद है कि मिर्ज़ा साहब हमको माफ़ करेंगे) अक्खड़ सिपाही थे। उन लोगों में पढ़ना-लिखना ऐब समझा जाता था और उससे पेश्तर का हाल नागुफ़्तनेह[१५] है। दश्त क़ब्चाक़[१६] के क़ज़्ज़ाक़ों की हालत से कौन वाक़िफ़ नहीं है। निज़ामे मुआशरत[३] की तरफ़ नज़र करने से बिल्कुल मैदान खाली दिखाई देता है। मिर्ज़ा आबिदहुसैन के हममहल्ला हमउम्र लड़कों में से कोई भी इस लायक़ न था जिसका ज़िक्र इनके अफ़साने के साथ किया जाय। घर के पास कुछ कहारों के घर थे। उनके लड़कों में दुर्गा पढ़के सरफ़राज़ महल की ड्योढ़ी पर कहारों का महरा बन गया। देवी बनिया मुहल्ले में रहता था। उसका लड़का महकूलाल सआदतगंज में अढ़तिया होगया। मुसलमान शरीफ़ों में से एक साहब फ़िदाअली नामी जो बचपन में चन्द रोज़ तक इनके साथ लाल-चिरकुओं[१७] के शौक़ में शरीक रहे। फ़िदाअली ने पढ़के कबूतर पाले। यह स्कूल में पढ़ते थे। इन्होंने इंट्रेंस पास किया। उन्होंने सौ की टुकड़ी उसी दिन उड़ाके नवाज़गंज तक भेजी और क़ुरबानअली जो इस फ़न में उस्ताद थे, उनके पन्द्रह कबूतर मार लिए। यह इंजीनियर हुए। वह तो अब शहंशाह मिर्ज़ा की सरकार में कबूतरबाज़ मुक़र्रर होगए। जब यह पेन्शन लेके घर आए हैं तो मियाँ फ़िदाअली ने उस ज़माने में नौकरी छोड़ दी थी। आखिर में उन्होंने यह रोज़गार किया था कि कबूतर, बटेर, बत, क़ाज़ें मोल लेके मटियाबुर्ज रवाना करते थे। मुहल्ले में एक नवाब साहब रहते थे। बहू बेगम साहबा के खान्दान में इनके साजज़ादे

---

१ क़ुदरती कारण २ जन्म से जीवन पर्यन्त ३ रहन-सहन की व्यवस्था ४ प्रभाव ५ विषय ६ आचरण ७ रीढ़, आधार ८ वैयक्तिक क्षमता ९ दृष्टि हटाकर १० यथाशक्ति ११ पूज्य पिता १२ भद्रजन १३ पूर्वजों १४ अशिक्षित १५ न कहा जाय वही अच्छा १६ क़ब्चाक़ के जंगल १७ रंगबिरंगी नन्ही चिड़ियों के नाम हैं।

सुलतान मिर्ज़ा चन्डू बनाने में मश्शाक़ होगए। बालिश्त भर छींटा लटकता हुआ उन्हीं के क़िवाम में देखा। छुट्टन नामी एक लड़का इनके अज़ीज़ों में था। उसने बटेर की चोंच ऐसी बनाई कि शहर भर में शोहरः होगया। अलीहुसैन एक और इनका हमजोली था। उसको वरज़िश[1] से शौक़ था। बड़ा होके बेबदल बाँका हुआ। बड़े बड़े शोरेपुश्त उससे डरते थे। सआदतगंज से नखास तक और वहाँ से अमीनाबाद तक उसकी धाक थी। हज़रत अब्बास का अलम[2] ऐसा उठाया कि इतना ऊँचा अलम इससे पहले शहर में न उठा और फिर इस तरह की डोलची बाँधी न डोरियाँ लगाईं। उनके फूफी के दो वेटों में एक सोज़ख्वान[3] था, एक हदीसख्वान[4]।

मिर्ज़ा बाक़रहुसैन के अहबाब में से एक बुज़ुर्ग मिर्ज़ा हैदरहुसैन नामी उस मुहल्ले में रहते थे। उनको शायरी का खब्त[5] था। 'हस्रत' तखल्लुस[6] फ़रमाते थे। साहबज़ादे उनके तसद्दुक़हुसैन साहब इनके हममक्तब[7] थे। पढ़े-लिखे तो वाजबी थे मगर बक़ौल शख्स (अल्‌वलदु सिर्रुन्‌लिअबीहि)[8] तेरह-चौदह बरस के सिन में शेर मौज़ूँ करते थे। 'वहशत' तखल्लुस था। तरह-तरह की ग़ज़ल कहके मुशाअ़रे में पढ़ीं। इब्तिदाई ग़ज़ल का एक शेर ऐसा चुस्त था कि इस तरह का यह शेर उनका यादगार रह गया। मुशाअ़रे में बार-बार पढ़वाया गया और लोग पढ़ते हुए घर तक चले गए।

जुनूने क़ैस का अन्दाज़ जो था।
उसे ज़िन्दः किया 'वहशत' हमीं ने ॥

इस शेर में अगरचे कोई बात न थी। मगर एक तो तखल्लुस ने लुत्फ़ बढ़ा दिया दूसरे कमसिन लड़के की ज़बान से ऐसा भला मालूम हुआ कि लोग बहुत ही महज़ूज़[9] हुए।

हमारे मिर्ज़ा आबिदहुसैन साहब को शेर के मज़ाक़ से हिस व मस[10] न था, मगर यह बात न थी कि समझते न हों। इसलिए कि फ़ारसी अपने वालिद से बहुत तहक़ीक़ के साथ पढ़ी थी। जब मियाँ वहशत ने दूसरे दिन बड़े फ़ख्र से यह शेर मिर्ज़ा आबिदहुसैन के सामने पढ़ा तो उन्होंने अपनी यह राय ज़ाहिर की कि माहसल[11] इस शेर का यह हुआ कि क़ैस जैसा मजनूँ था वैसा जुनून उस ज़माने से आजतक किसी को नहीं हुआ, हमको वैसा ही जुनून हुआ। मेरे नज़दीक तो इस शेर में कोई लुत्फ़ नहीं है; न इसमें किसी हक़ीक़त का बयान है न कोई जज़्बा इंसानी इसमें ज़ाहिर किया गया है। मजनूँ का तसव्वुर हमारा

---

१ व्यायाम २ मुहर्रम में अलम (ध्वज) उठाये जाते हैं ३ मुहर्रम में सोज़ (व्यथागान) पढ़ने वाला ४ पैग़म्बर के कथनों का पाठ करने वाला ५ उन्माद ६ उपनाम ७ सहपाठी ८ पुत्र पिता का प्रतिबिम्ब होता है ९ प्रसन्न १० लगाव और रुचि ११ निष्कर्ष।

यह है कि वह एक शायर था और उसी के मुआसिर[1] लैला नामी एक शायरा। अरब के लोगों को ज़माने जिहालत में बेहूद: शायरी से इन्तिहा का ज़ौक़ था। अक्सर सुहबतें इस क़िस्म की हुआ करती थीं जिसे हमारे ज़माने में मुशाअ़रा कहते हैं। मजनूँ और लैला दोनों मुशाअ़रों में शरीक हुआ करते थे। गोया उनमे एक क़िस्म का मुक़ाबला रहता था। लैला ऐसी ख़ूबसूरत न थी मगर फिर भी औरत थी। औरतों की ज़बान में क़ुदरती लोच होता है। मजनूँ अज़् बसके अहले फ़न था[2]। उसको लैला के इशारे बहुत पसन्द आते थे। इश्क़ की असल बिना यह है। अगर क़ैस इसी हद तक रहता तो अच्छा रहता। अब उसको यह हवस हुई कि लैला से मुवासलत[3] हो। इसलिए उसने अपने बाप की ज़बानी शादी का पैग़ाम दिया। लैला के बाप ने किसी वजह से इन्कार कर दिया। वजह इन्कार की जो बयान की गई है वह यह है कि क़ैस और लैला की मुहब्बत मशहूर हो गई थी। अगर शादी हो जाती तो लोग कहते कि पहले से नाजायज़ तअ़ल्लुक़ था। इसी नंग[4] को लैला के बाप ने गवारा न किया। क़ैस को अज़हद रंज हुआ। अपने जज़्बात को ज़ब्त न कर सका इसलिए मजनूँ होगया। अगर क़ैस की सीरत में क़ूवत होती तो वह उस जज़्बे को रोकता और उसे रोकना चाहिये था। फिर ऐसे ज़ईफ़ुलसीरत[5] शख़्स की बराबरी करना कौन सी फ़ख़् की बात है।

राक़िमुल्हुरूफ़[6] के नज़दीक आबिदहुसैन साहब की यह गिरफ़्त सही नहीं है। इसलिए मिर्ज़ा आबिदहुसैन ने तारीख़ी क़ैस को शेर का मौज़ू क़रार दे लिया है। तारीख़ी क़ैस और शेरी क़ैस में[7] (जिसको फलसफ़ा की ज़बान में क़ैस मिसाली कहना चाहिये) बड़ा फ़र्क़ है। मिसालियः क़ैस को अहलेफ़न ने आशिक़ कामिल की जगह रखा है। और इश्क़ कामिल ज़रूरी नहीं है कि औरत ही के साथ हो बल्कि इश्क़ अरफ़ानी का असल मक़्सूद आला है और बेशक मायः फ़ख़्[8] है। इन्सान कामिल वही है जो साहब मारिफ़त[9] हो। अब रही यह बात कि मिर्ज़ा साहब के कलाम से यह भी एक पहलू एतराज़ का निकलता है कि उसमें ख़ुदसिताई[10] है जैसा कि अक्सर शुअ़रा का मामूल है। यह एक अम्र लग़ो है। यह एतराज़ भी दुरुस्त नहीं। इस वजह से कि शायर जहाँ अिद्दआ[11] अपनी ज़ात का करता है वहाँ उसका मक़्सूद[12] अपनी ज़ात नहीं होती बल्कि अपनी ज़ात का मसालियः (जिसे अंगरेज़ी में आइडियल[13] कहते हैं) मक़्सूद होता है। यानी अगर मैं ऐसा होता जिसको शायर ब-क़ायदः मजाज़ें मुर्सल[14] यह फ़र्ज़ कर लेता है कि मैं ऐसा होगया, तो यह फ़ख़् ज़ेबा है। मसलन यह शेर—

---

१ समकालीन २ काव्य-मर्मज्ञ ३ सहवास ४ बेशर्मी ५ चरित्रहीन ६ इन पंक्तियों का लेखक ७ एतिहासिक और कविचित्रित 'क़ैस' में ८ गौरव के योग्य ९ सूक्ष्मदर्शी १० आत्मप्रशंसा ११ अनधिकार दावा १२ उद्देश्य १३ नमूना, आदर्श १४ लाक्षणिककल्पना।

लड़ाती है फ़लक से मुझको मेरी हिम्मते आली।
तमाशा देख लें ज़ोर आज़माई देखने वाले॥

इस शेर में शायर ने अपनी हिम्मते आली पर फ़ख़्र किया है। मगर यहाँ भी उसने अपनी मौजूद: हालत को बयान नहीं किया बल्कि एक खल्क़ी मक़्सद[१] का इज़हार किया है। माने इस शेर के यह हुए कि मुझे ऐसा होना चाहिये कि अगर मुझ पर आसमानी बलाएँ नाज़िल हों तो मैं बड़ी मर्दानगी से उसका मुक़ाबला करूँ।

मगर बात यह है कि मिर्ज़ा साहब को इब्तिदाई उम्र से हक़ीक़त में ज़रूरत तबीई[२] से काम रहा है। आलमे ख़याल[३] की तरफ़ मुतवज्ज: होने को इनको बहुत ही कम मौक़ा मिला। फिर इसके साथ रियाज़ियात[४] के शौक़ ने तबीअत को मुलाहज़ा हक़ीक़त[५] का और भी आदी कर दिया। फ़लसफ़ा और शेर इन दोनों से इनको कोई बहस न थी। वह मुजस्सम तजुर्ब:[६] थे।

जिन लोगों को महज़ उलूम तिजारती का शौक़ होता है अगर उनकी तबीअत को फ़लसफ़े और शेर से मुग़ाइरत[७] हो तो कोई तअज्जुब नहीं है। मगर ऐसे लोग मज़हब की तरफ़ से भी बेपरवाह हो जाते हैं। लेकिन हमारे मिर्ज़ा साहब ऐसे न थे। वह अपने मज़हब में बहुत ही पुख़्त: थे। उनका बयान था कि मैं उसूल मज़हब में कोई अम्र उलूम तिजारती के खिलाफ़ नहीं पाता। इससे ज़ाहिर है कि इनका मज़हब भी तजुर्बी[८] था। अज़ बसके[९] इनकी नश्वोनमा[१०] ऐसे मज़हब में हुई थी जिसका उसूल बिल्कुल हुस्न और अक़्ल पर है। लिहाज़ा इनको उस बात में कोई दिक़्क़त नहीं हुई। इनको अपने मज़हब के उसूल में ऐसी किसी बात के मानने की ज़रूरत न थी जो समझ में न आती हो और उसे तक़लीदन[११] मान लेते हों, जैसा कि बाज़ मज़ाहब के उसूल-औलिया[१२] महज़ तक़लीद[१३] पर हैं। इनका मज़हब ऐसा न था।

ऐतक़ादात के बाब में इनका यह ख़याल था कि जब मुबादी-मज़हब[१४] दुरुस्त हों तो उमूर तअब्बदी[१५] में कोई कलाम न करना चाहिए।

ग़ज़लगोई, चायनोशी, हुक़्क़ाकशी, दास्तान या सबसे उम्द: शुग़ल मुक़द्दमेबाज़ी जो अक्सर अहले शहर[१६] का मज़ाक़ है, इससे मिर्ज़ा को सरोकार न था। इनके मज़ाक़ के दोस्त मसलन सय्यद जाफ़रहुसैन शहर में मौजूद न थे। फिर शहर में इनका दिल क्या लगता। अपने फ़ारम (कश्तज़ार) को इन्होंने इल्मी उसूल से दुरुस्त किया था। इस

---

१ सांसारिक लक्ष्य २ स्वाभाविक आवश्यकताएँ ३ कल्पना जगत ४ परिश्रमों ५ वास्तविकता पर दृष्टि ६ अनुभवमूर्ति ७ अरुचि ८ अनुभवजन्य ९ अगर्चे १० परवरिश ११ अंधभक्त होकर १२ पूर्वजों-अगुआकारों से प्राप्त १३ अन्धानुकरण १४ धर्म की मौलिक बातें १५ इबादत १६ नगरनिवासियों।

फ़ारम में रहने का मकान था। ज़नानः मकान से मिला हुआ एक और मुख़्तसर सा मकान था। यह इनकी लेबोरेटरी (तजर्बेगाह यानी वह मकान जिसमें हुकमाए[१] इल्मी तजुर्बः करते हैं) था। इसी में हद्दादी[२] और नज्जारी[३] के आलात, इल्म कमेस्ट्री[४] और तबीआ़त[५] का सामान और मुख़्तलिफ़ कलों के नमूने रहते थे। फ़ारम के क़रीब इल्म नबातात[६] के नमूने जमा करने के लिए एक क़िता कई बीघा का अलाहिदः कर दिया था। इसी के क़रीब समर हाउस था जिसमें हज़ारहा क़िस्म के फ़रन और बाज और मुख़्तलिफ़ अक़साम के खुशनुमा दरख़्त जमे थे। इसी समर हाउस में एक बैज़वी[७] हौज़ बना हुआ था। उसके दरमियान में और समर हाउस के चारों तरफ़ पहाड़ों के नमूने बनाए गए थे। लेबोरेटरी के पास आब्ज़रवेटरी (रसदख़ानः) बना था और उसी से मिले हुए एक छप्पर के नीचे मौसम के मुलाहज़ः करने के आलात[८] नस्ब[९] थे। माडल हाउस यानी वह कमरा जिसमें तरह तरह के नमूने कलों के जमा किए गए थे उसी के क़रीब था। वहाँ से किसी क़द्र फ़ासले पर अस्तबल और मवेशीख़ानः था और उससे कुछ फ़ासले पर शागिर्द-पेशः[१०] के मकान थे। यहाँ फ़ारम अगर्चे फ़लाहत[११] के तजुर्बों के लिए मख़सूस न था मगर मिर्ज़ा आबिदहुसैन जिस कश्तज़ार के काश्तकार हों उसको ऐसा ही समझना चाहिये।

खेती का कुल काम मिर्ज़ा आबिदहुसैन खुद अपने हाथ से करते थे—जोताई, सरावन, सिंचाई, निकाई। ग़र्ज़ कि कोई काम सख़्त से सख़्त और मुश्किल से मुश्किल ऐसा न था जिसमें मिर्ज़ा नौकरों और मज़दूरों से ज़्यादः काम न करते हों। नौकर भी मिर्ज़ा ने ऐसे रखे थे जो काहिली, हुक्मउदूली, वेहूदा हुज्जत, बड़बड़ाना जानते ही न थे।

ज़राअ़त[१२] के काम के लिए जो लोग नौकर थे बल्कि कुल मुलाज़िमों को ख़्वाह मर्द हों या औरतें, एक तरह मिर्ज़ा ने उनको अपना दायमी[१३] शरीक बना लिया था। पैदावार की ज़्यादती और कमी के तनासुब[१४] से अनाज हिस्सारसदी तक़सीम होता था इसलिए हर शख़्स जी तोड़ के काम करता था। मिहनत और बरकत में कुछ ऐसा लुज़ूम[१५] था कि अगर इनको मुतरादिफ़[१६] लफ़्ज़ें कहें तो बेजा नहीं है। औक़ात फ़ुर्सत में मिर्ज़ा अपनी लेबोरेटरी में रहते थे। हर तजुर्बः और मुशाहदा[१७] क़लमबन्द किया जाता था। रसदख़ाने में जो मुशाहदात होते थे वह अलाहिदः किताब में तहरीर[१८] होते थे। उमूर ख़ानःदारी[१९] से मिर्ज़ा को कोई तअ़ल्लुक़ नहीं था और न मिर्ज़ा इसे पसन्द करते थे।

---

१ वैज्ञानिक २ लोहारी ३ बढ़ईगीरी ४ रसायन ५ गुणद्रव्य ६ वनस्पति विज्ञान ७ अण्डाकार ८ यंत्र ९ स्थापित १० नौकरचाकर ११ खेती १२ खेती १३ हमेशा के लिए १४ अनुपात १५ अटूट सम्बन्ध १६ पर्यायवाची १७ प्रयोग १८ लिपिबद्ध १९ गृह-प्रबन्ध।

जैसा कि इससे क़ब्ल हम कह चुके हैं इसको वह बीवी का फ़र्ज़ी काम[1] समझते थे। घर का हिसाब व किताब सब वह लिखती थीं। बेटे-बहू का कारखाना मिर्ज़ा ने खुद अलाहिदः कर दिया था।

तमाम मुलाज़मत के ज़माने में मिर्ज़ा पर भी एक सख़्त मुसीबत पड़ी थी। मिर्ज़ा हमेशा नेकनाम रहे। पहले पहल सबओवरसियर हुए थे। तीसरे दर्जे के सबओवरसियर की तनख़्वाह मामूली पचीस रुपये और सात रुपया महीना भत्ता होता है। भत्ता के रुपये से ज़्याद: घोड़े पर सर्फ़ होता है। बल्कि कुछ तनख़्वाह से खिलाना पड़ता है। यह तनख़्वाह बमुश्किल एक मुतवस्सित दर्जे[2] के शरीफ़ आदमी और उसके अहलोइयाल[3] के लिए किफ़ायत कर सकती है[4]। मगर मिर्ज़ा ऐसे मुहतात[5] आदमी थे कि उन्होंने और उनकी बीवी ने हमेशा उसूल किफ़ायतशारी की सख़्त पाबन्दी की। इस वजह से कभी कोई दिक़्क़त खर्च की तरफ़ से नहीं हुई।

मिर्ज़ा ने तीसरे दर्जे की सबओवरसियरी से लेकर असिस्टेंट इंजीनियर के दर्जे तक की तरक़्क़ी की। इनका ज़ाती खयाल यह था कि वाक़िआत पर नज़र करके इससे ज़्याद: तरक़्क़ी मुमकिन न थी। यह तरक़्क़ी मिर्ज़ा की लियाक़त देखते हुए कुछ भी न थी। मिर्ज़ा से कम-लियाक़त लोगों की तरक़्क़ी इससे कहीं ज़्याद: हुई। अफ़सोस है कि तरक़्क़ी के बाब में बसा औक़ात एहतियात और लियाक़त कारगुज़ारी मुफ़ीद नहीं होती। उसका कोई माक़ूल मेयार[6] मौजूद नहीं है। तरक़्क़ी और तनज़्ज़ुली अफ़सर आला की खुशी पर मौक़ूफ़ है। मुहकमाजात सरकारी में अफ़सरों और मातहतों की तब्दीलियाँ बहुत जल्द हुआ करती हैं। इन तब्दीलियों के फ़वाएद[7] से हम इस वक़्त बहस नहीं करते। लेकिन एक ज़रर[8] खास इससे मुतसव्वर[9] है—वह यह कि अफ़सर और मातहत में किसी क़िस्म की हमदर्दी पैदा होने नहीं पाती। एक औसत दरजे के क़द्रशिनास[10] अफ़सर को इसका मौक़ा बमुश्किल मिल सकता है कि अपने मातहतों की दियानत[11], लियाक़त और कारगुज़ारी का अन्दाज़: कर सके। इससे अक्सर हक़तल्फ़ी[12] होती है। बहुत से मुस्तहक़ महरूम रहते हैं और बहुत से ग़ैरमुस्तहक़ फ़ायदा उठा लेते हैं। एक तो अक्सर हालात में अफ़सर और मातहत मुख़्तलिफ़ क़ौम और मुल्क के लोग होते हैं। मसलन अफ़सर इंगलिश हैं और मातहत हिन्दुस्तानी मुसलमान। साहब बहादुर शहर के बाहर बंगले में फ़र्दक्श हैं[13]। मातहत वस्तशहर[14] की किसी तारीक[15] गली में रहते हैं। अफ़सर और मातहत से सिर्फ़ दफ़्तर में सामना होता है। एक दूसरे की सीरत और अख़्लाक़

---

१ कर्तव्य २ मध्यम वर्ग ३ परिवार ४ पर्याप्त होना ५ सावधान ६ मापदण्ड ७ लाभों ८ हानि ९ ध्यान देने योग्य १० गुणपारखी ११ ईमानदारी १२ अधिकार-हनन १३ अकेले डटे हैं १४ शहरबीच १५ अँधेरी।

से दोनों ना-बलद[१] महज़ मामूली रोज़ाना कारोबार से मातहत को अपनी लियाक़त के इज़हार का बहुत ही कम मौक़ा मिल सकता है। मसलन इसी मुहक़मे तामीरात में एक पुल या कोठी का तखमीना एक मामूली दरजे का इस्टीमेटर भी तक़रीबन उतने ही वक़्त में कर सकता है जितनी देर में एक आला दर्जे का लायक़ इंजीनियर। यह एक मामूली काम है। इस क़िस्म के काम दफ़्तर में लिये जाते हैं। इससे अफ़सर को क्योंकर यह मालूम हो सकता है कि मिर्ज़ा आबिदहुसैन की इस्तेदाद[२] और ज़ेहानत[३] इससे ज्यादा क़ाबिल क़द्र है जिसका अन्दाज़: उनके बुश्रह-क़ियाफ़े[४] और मामूली अन्दाज़ कारगुज़ारी से किसी इंगलिशमैन ने किया है। अदाए हुक़ूक़ के लिए माक़ूल पैमाना मुअय्यन[५] होना चाहिए। न यह कि ऐसा अम्र अहम महज़ बख्त-इत्तफ़ाक़[६] के हवाले कर दिया जाए।

यह एक क़िस्म की क़ुर्अ:अन्दाज़ी[७] है। मुमकिन है कि क़ाबिल क़द्र सिफ़ात पर उन साहबों की निगाहें न पड़ें जिनकी क़द्रशिनासी पर किसी के हुक़ूक़ का फ़ैसला मुन्हसिर[८] है। यह सच है कि अफ़सरान मुहकमेजात हाईकोर्ट के चीफ़ जस्टिस की सी लियाक़त के नहीं हो सकते। लेकिन जिसकी हक़तलफ़ी हुई उसको ऐसे ही चीफ़ जस्टिस की जरूरत थी। अफ़सोस कि यह एक शख्स की अदमे लियाक़त से दूसरे का नुक़्सान हो; मगर ऐसा होता है। हम इस बात का फ़ैसला नहीं कर सकते कि इसका तदारुक[९] क्योंकर हो सकता है। मगर शायद इसमें किसी को कलाम न होगा कि होना चाहिये। शोअ़रा अक्सर नामुसाअदत-ज़माने[१०] की शिकायत करते रहते हैं, मगर यह मज़मून महज़ शायराना नहीं है। दुनिया ने नेकों को बहुत नुक़सान पहुँचाया और उससे दुनिया का बहुत नुक़सान हुआ। यह मशहूर मक़ूल: 'हर कसे रा बह्रे कारे साख्तन्द'[११] बहुत ही सच है। यानी हर शख्स एक तबीअत और मिज़ाज खास और इस्तेदाद[२] खास लेके पैदा होता है। अगर किसी वजह से वह उस काम में न लगाया जाय जिसके लिए वह पैदा होता है तो उससे ज़ियाअ क़ूवत[१२] मुतसव्वर है। इससे अलावा शख्सी नुक़्सान के, नौई[१३] नुक़सान बहुत होता है। अगर जार्ज इस्टीफ़ेन्सन तमाम उम्र कोल में काम करने पर मजबूर होता तो शायद रेलवे इंजन अभी प्लेटफ़ार्म तक हरगिज़ न आ सकता।

हाँ जिसे जो कुछ करना होता है वह कर ही लेता है। यह मक़ूल:[१४] एक हद तक सही है। च्यूँटी हिमालय पहाड़ काट कर नहीं फेंक सकती। एक तनफ़्फ़ुस[१५] निज़ामे मुआशरत[१६] की बहुत बड़ी क़ूवत का मुक़ाबिला नहीं कर सकता। अगर निज़ामे मुआशरत

---

१ अनभिज्ञ २ योग्यता ३ बुद्धि-प्रखरता ४ सूरत-शक्ल ५ निश्चित ६ दैवसंयोग ७ लाटरी (चिट्ठी) डालना ८ निर्भर ९ निवारण १० उलटा ज़माना ११ हर व्यक्ति एक विशेष काम के लिए बना है १२ शक्ति का अपव्यय १३ मानव जाति का १४ कथन १५ श्वास का रोगी १६ सामूहिक व्यवस्था।

हर हर फ़र्द के लिए अलाहिदः इन्तज़ाम नहीं करता तो ज़रूर है कि कोई क़ानून ऐसा निकाल दिया जाय जिससे ज़ियाअ क़ूवत[१] न हो जिसका ज़िक्र किया गया है।

अगर मिर्ज़ा आबिदहुसैन की सीरत से उनके अफ़सर बाला आगाह होते तो शायद आला तरीन ओहदा मुहकमे तामीरात तक इनकी तरक़्क़ी मुमकिन थी और यह न सिर्फ़ इनकी ज़ात के लिए बल्कि मुल्क व क़ौम के लिए मुफ़ीद होता।

अफ़सरों और मातहतों की अज्नबियत से मुल्क का बहुत बड़ा नुक़सान होता है। नाक़द्रशनासी[२] की वजह से अक्सर मुतदय्यिन[३] और कारगुज़ार मातहतों के दिल टूट जाते हैं। वह लोग जिनमें शराफ़त व आज़ादी का जौहर है वह कोल्हू के बैल की तरह डण्डे के ज़ोर पर काम करना नहीं पसन्द करते। मिर्ज़ा आबिदहुसैन साहब की तबीअत के लोग भी मुल्क में बहुत हैं। किसी न किसी तरह उनकी क़द्रशनासी करना निज़ाम-तमद्दुन[४] पर वाजिब है।

छोटा मुक़द्दमः जो मिर्ज़ा साहब पर दायर किया गया जिसमें एक मातद्‌बिह[५] रक़म उस रुपये की जिसे उन्होंने कमाल मेहनत और जाँफ़िशानी और किफ़ायतशारी से बरसों काम करके पस अन्दाज़ किया था, बैरिस्टरों के नज़र न हो जाती, अगर उनके अफ़सर आला उनके चाल चलन से कमाहक़्क़हू[६] वाक़िफ़ होते।

  

जो लोग मिर्ज़ा को जानते थे वह एक लमहा के लिए भी मिर्ज़ा की निस्बत सूएज़न[७] न करते। अगर इनका अफ़सर बेपरवाई न करता तो उस जाली मुक़द्दमें की अदालत पहुँचने की नौबत ही न आती।

मिर्ज़ा का क़ौल था कि मुझे अपनी ज़िन्दगी में अफ़सरों के इस्तिक़राए नाक़िस[८] और सूएज़न[७] से बहुत नुक़सान पहुँचा। मज़हब और इल्म फ़ीमिशन का पहला उसूल यह है कि हर शख्स को बेगुनाह समझो। इसी सबब से जो शख्स किसी जुर्म के इर्तिकाब[९] का इल्ज़ाम लगाए उसको सुबूत कामिल पहुँचाना वाजिब है और इस पर भी शुब्हः[१०] का फ़ायदा मुलज़िम को दिया जाता है मगर मेरे साथ ज़माने ने इसके बर अक्स[११] सुलूक किया। इसलिए कि अक्सर ऐसे ही लोगों से काम पड़ा जो हर शख्स को गुनहगार समझते थे और बार सुबूत भी मेरे ही ज़िम्मे था। मुझही को अपनी बेगुनाही साबित करना होती थी। और मुशब्बः[१२] भी बखिलाफ़ असल उसूल मेरे ही हक़ में मुज़िर था।

---

१ शक्ति का अपव्यय २ गुणपारखी न होना ३ ईमानदार ४ अधिकारियों ५ अच्छी ख़ासी ६ सही सही, यथोचित ७ बुरी धारणा ८ बुरी राय ९ पाप १० संदेह ११ विपरीत १२ जिससे उपमा दी जाय, नज़ीर।

अगर्चे इस बाब में मेरे ही मुल्क के निज़ाम मुआशरत का क़ुसूर है। इसलिए कि मुल्की इख़लाक़ का मेयार बहुत घटा हुआ है। ग़ैर मुल्कों के रहने वाले अक्सर हिन्दोस्तानियों को बेईमान, काहिल और बेवक़ूफ़ समझते हैं। इस क़ायदे कुल्लीय:[1] के इस्तिस्ना[2] पर बहुत ही कम नजर जाती है।

मिर्ज़ा कहते थे कि दुनिया ईमानदार लोगों से खाली नहीं है। फ़रमाते थे कि जिस ज़माने में मैं ज़िला सहारनपुर में ओवरसियर था मेरी अर्दली में चपरासी था—सय्यद मुसलमान। उसकी सी एहतियात मैंने उस क़िस्म की तनख्वाह वाले मुलाज़िमों में बहुत कम देखी है। चपरासियों का क़ायदा है जब दौरे पर अफ़सरों के साथ जाते हैं, आटा, दाल, घी, लकड़ी, गुड़, तेल, मिट्टी के बरतन ग़रज़ कि जुमल: जरूरियात जहाँ तक मुमकिन होता है ग़रीब नावाक़िफ़ दहक़ानों[3] से तरह तरह के फ़रेब और धमकियाँ दे के बतौर नाजाएज़ हासिल करते हैं। बसा औक़ात उनके अफ़सर यानी छोटे दरजे के ओहदेदार भी इस मज़िलमे[4] में उनके शरीक रहते हैं। ख़ुदा रहमत करे मोहसिनअली पर, लकड़ियाँ तक मोल ले के जलाता था। उसकी सिवाय पाँच रुपये माहवारी तनख़्वाह के और किसी क़िस्म के फ़ायदे उठाने से ग़रज़ न थी। मिस्ल और ओक़लाए हाल[5] के, मिर्ज़ा का भी यही खयाल था कि इस ज़माने का इख़लाक़ बनिस्बत ज़मानए साबिक़ के बहुत ही तनज़्ज़ुल पर है। इनका यह ख़याल था कि मुहकमों और दफ़्तरों में शाज़ोनादर ख़ुदा के बन्दे ऐसे हैं जो हराम व हलाल में फ़र्क़ करते हैं। अक्ल हलाल[6] और सिद्क़ मक़ाल[7] जो सबसे ज़्याद: उम्द: सिफ़ात इंसानी हैं उनका ज़िक्र कहीं नहीं।

नौकरी से पेन्शन ले के जब वतन में आए तो मिर्ज़ा साहब ने चन्द मौज़े मुज़ाफ़ात[8] लखनऊ में ख़रीद किए। और एक क़िता नज़ूली लखनऊ में ली। नुज़ूली ज़मीन पर सौम व सलात और जमीअ आमाले ख़ैर बातिल हैं[9]। इसलिए अब यह फ़िक्र हुई कि असल मालिक मकान से उसको बहाल करा लें। बड़ी मुश्किल से वुरसाए अस्ल मालिक ज़मीन से सिर्फ़ एक लड़की नाबालिग़: मिली। वली या वलीय:[10] जाएज़ इस लड़की का कोई मौजूद न था। सख्त तरद्दुद हुआ।

उस लड़की के एक दूर के अज़ीज़ थे। उन्हीं के क़ब्ज़े में यह लड़की थी। मिर्ज़ा साहब को एक नई बात सूझी कि अहमदअली का अक़्दा[11] उसके साथ कर दिया जाय। उस सूरत में वह ज़मीन असल मालिक जमीन के पास रहेगी और उसकी इजाज़त से आमाल ख़ैर उस पर सही हो जायँगे।

---

१ व्यापक नियम २ अपवाद ३ देहातियों ४ अनीति, शोषण ५ आजकल के बुद्धिमानों की तरह ६ मिहनत की कमाई (भोजन) ७ बचन का सच्चा ८ आस पास का, सुबर्ब ९ नुज़ूली ज़मीन पर रोज़: नमाज़ नेक काम सब व्यर्थ हैं १० संरक्षक या संरक्षिका ११ सगाई।

जो साहब उस लड़की के सरपरस्त थे वह निहायत ही ग़रीब आदमी थे और उस लड़की की भी कोई जायदाद मौजूद न थी मगर मिर्ज़ा साहब अपने इरादे में मुस्तक़िल थे। मिर्ज़ा साहब के अक्सर अज़ीज़ों की लड़कियाँ मौजूद थीं और मिर्ज़ा साहब की वजाहत[१] ज़ाती अब इस क़िस्म की थी कि अगर किसी अमीर खान्दान में लड़के का पैग़ाम देते तो वह बख़ूबी मंज़ूर कर लेता। इस बात में मियाँ-बीवी की राय में भी किसी क़द्र इख़्तिलाफ़ हुआ था मगर वह तो अजब तरह की नेक बीवी थीं। जब मिर्ज़ा ने असली मंशा उन पर ज़ाहिर किया तो समझ गईं। चुप हो रहीं।

वाक़ई उन मियाँ-बीवी में वैसा ही मेल था जो ख़ास मंशाए तज़वीज है। जिस मक़सद के पूरा करने के लिए उस साने आलम[२] ने औरत को ख़ल्क़ किया है, न यह कि जब घूँघट खुला बल्कि उससे भी पहले मियाँ से मोर्चा बाँध लिया। सास से सैद[३] होगई। नन्दों से तू-तू मैं-मैं, जूती पैज़ार होने लगी। कभी मुँह फूला है, कभी नाक चढ़ी है, कहीं कोस रही हैं और जो गालियों पर ज़बान खुली तो हफ़्ताद पुश्त[४] में किसी को न छोड़ा। मियाँ-बीवी के बाहमी मुआमले में एक ख़ास बात ऐतिबार है। चाहिये कि मियाँ को बीवी पर और बीवी को मियाँ पर ऐतिबार हो। घर का कारख़ाना चल ही नहीं सकता जब तक कि साख न हो। न यह कि इधर मियाँ ने कोई बात की और उधर बीवी ने कहा—"चल झूटे" या अगर बड़ी तहज़ीब की—"अच्छा यूँ ही होगा फिर किसी को क्या।" और बाहमी ऐतिबार मियाँ-बीवी दोनों के लिए होता है। रास्त-बाज़ी[५] असल उसूल है। रास्ती मूजिब रज़ाए ख़ुदा अस्त[६]।

ख़ुदा उन्हीं अफ़आल से राज़ी होता है जिनमें हमारा, तुम्हारा, दुनिया का फ़ायदा है। वर्ना ख़ुदा हमारे तुम्हारे बल्कि तमाम आलम के अफ़आल सय्यः व हसनः से बेनियाज़[७] है। असल ईमान इसी का मंशा है कि असली मुआशरत[८] के उसूल ठीक मुनासिब हों। सब इस तरह मिल जुल कर रहें कि हर शख़्स को हर शख़्स से फ़ायदा पहुँचे। बाबे मदीनतुल् इल्म हज़रत अमीरुल् मुअ्मिनीन अली करमल्लाहु वज्हहू[९] से किसी ने पूछा "मल्कुफ़्रो या अमीरुल्मुअ्मिनीन" ऐ अमीरुल्मुअ्मिनीन कुफ़्र क्या है। हज़रत ने इरशाद फ़र्माया "शिर्क बिल्लाहि वल् इज़्रारि बिन्नास" यानी ख़ुदा की ज़ात में किसी को शरीक करना और आदमियों को ज़रर पहुँचाना। वाक़ई क्या जामे व माने तारीफ़ कुफ़्र की इरशाद फ़र्माई है। हर शख़्स जिसको कुछ भी ख़ुदा का ख़ौफ़ हो 'इज़्रारि बिन्नास' (यानी इंसानों को दुख पहुँचाने) से बचता रहे कि असल कुफ़्र है। 'ज़ुह्द रियाई ख़ुश्क मुल्लाई[१०]।'

---

१ प्रतिष्ठा २ विश्व-स्रष्टा ३ दाँव-घात (आखेट) ४ सत्तर पुश्त ५ सच्चाई ६ सच्चाई ईश्वर की प्रीति का साधन है ७ बुरे-भले से निरपेक्ष ८ नागरिकता ९ स्वयं पैग़म्बर साहब इल्म का शहर थे और हज़रत अली उस शहर के फाटक थे। १० दिखावटी संयम कोरा पाखण्ड है।

ग़रज़ कि हर तरह की खुदनुमाई और खुदआराई और बातिन में महज़ हेच बल्कि रात दिन में लोगों का माल ग़स्ब[१] करने और खल्क़ अल्लाह को ज़रर पहुँचाने की फ़िक्र में रहना—ऐसे लोगों का ईमानदार होना वही बात है जैसे—बर अक्स नहन्द नाम ज़ंगी काफ़ूर[२]। कम अज़ कम मियाँ को बीवी से और बीवी को मियाँ से ऐसी मुआमलत रखना चाहिए कि दोनों मिलकर एक ज़ाते वाहिद[३] के हुक्म में हो जाँय। और इसके साथ ही दोनों को अपने अपने फ़राएज़ भी समझ लेना चाहिये। यह याद रहे कि हकीम मुतलक़ का कोई फ़ेल (मुआज़ल्लाह) अबस[४] नहीं है। इंसान आला दर्जे के मसनूआते इलाही[५] में से है बल्कि मज़हब और हिकमत से ज़्यादः का दावा करते हैं और इंसान को अश्रफ़ुल् मख्लूक़ात ठहराते हैं फिर उसका खल्क़ बवजे औला अबस और लग़ो नहीं हो सकता। इसके बाद हमें अपने अफ़आल पर ग़ौर करना चाहिये कि आया इनसे ऐसा मालूम होता है कि जिस मक़सूद के लिए हम पैदा किये गये हैं, वही काम हम करते हैं या नहीं। अगर ऐसा नहीं है तो हैफ़[६] है। अब यह क्योंकर मालूम हो कि हम किस काम के लिए पैदा किए गए हैं। जिन लोगों को अक़्ल सलीम है वह अपने इस्तेदादात और क़वी[७] से खुद ही इस मसले को हल कर सकते हैं। इस तरह से कि जब आँख खोल कर आलम को देखते हैं और अश्या[८] के बाहमी तअल्लुक़ात पर नज़र करते हैं और चीज़ों का तअल्लुक़ अपनी ज़ात के साथ और अपनी ज़ात का तअल्लुक़ दूसरी चीज़ों के साथ देखते हैं। अब उन चीज़ों में ज़विल्उक़ूल[९] और ग़ैर ज़विल्उक़ूल दोनों शामिल हैं। हमारे तअल्लुक़ात दोनों से हैं और जिससे अज़रूए जिन्सीयत[१०] और नोईयत[११] के तक़ारुब[१२] बढ़ता जाता है उसकी निस्बत से तअल्लुक़ात भी ज़्यादः होते जाते हैं।

मियाँ-बीवी का तअल्लुक़ बिलकुल अनोखा है। उसको महदूद करना सख्त मुश्किल है मगर बाज़ हैसियतों से तमाम तअल्लुक़ात पर उसको तफ़र्रुक़[१३] है। हमने अक्सर देखा है कि अक्सर सूरतों में यह दोनों अपने फ़राएज़ को नहीं समझते। इससे तरह-तरह की खराबियाँ वाक़ै होती हैं।

मुताखरीन[१४] में से एक हकीम का यह खयाल है कि मियाँ-बीवी दोनों को खुदमुख्तार होना चाहिये। हर वाहिद के मुआमलात और माल अलाहिदा अलाहिदा हों, मसलन मियाँ अगर किसी कारखाने में काम करते हैं तो बीवी एक दफ़्तर में मुलाज़िम। मसलन मियाँ पचास रुपया माहवार पैदा करते हैं तो बीवी सौ रुपये। दोनों अपना-अपना खाते हैं, अपना अपना पहनते हैं। एक दूसरे के मुआमलात से कोई तअल्लुक़ नहीं, न यह आपके

१ बलात् अपहरण २ आँख के अन्धे नाम नयनसुख ३ अकेला परमेश्वर ४ बेकार ५ ईश्वरीय रचनाओं ६ खेद ७ योग्यता और शक्ति ८ चीज़ों ९ अक़्लवाले १० यौन, शारीरिक आत्मीयता ११ लाक्षणिक समानता १२ सामीप्य १३ वैषम्य १४ पश्चात्कालीन।

मुहताज हैं न वह आपकी, मगर दोनों में मुहब्बत है। इस वजह से दोनों एक साथ या अक्सर औक़ात राहत या तातील[१] के वक़्त एक साथ रहते हैं। सिर्फ़ इसी क़द्र तअल्लुक़ है और कुछ नहीं। हाँ इतना ज़रूर है कि इन्दल्हाजत[२] एक दूसरे की मदद करने को मौजूद हैं। मगर हर वाहिद उनमें से इसकी सअी[३] करता है कि अपना बार किसी क़िस्म का क्यों न हो दूसरे पर न डालें।

हरएक की उसमें से यह कोशिश है कि जहाँ तक मुमकिन हो ख़्वाह अपनी ज़ात पर तकलीफ़ ही क्यों न हो दूसरे से मदद न लें बअैनिही उसी तरह जैसे अहबाब में एक दूसरे से मदद लेना आर समझा जाता है। ख़ुसूसन मुआमलात ज़र[४] में।

उस हकीम ने जो सूरत तजवीज[५] की क़रार दी है बेशक क़ाबिल ग़ौर है। इस अम्र पर दो हैसियतों से ग़ौर करना चाहिये। एक तो यह कि ऐसा मुमकिन है कि नहीं, दूसरे यह कि बिलफ़र्ज़-इमकान उस सूरत में फ़ायदे क्या हैं और नुक़सान क्या हैं।

क़तानज़र[६] नुक़सान और फ़ायदों के, उसमें एक अम्र की कमी है। वह यह कि इस्तक़्रार और तअैयुने मंज़िल किसी तरह मुमकिन नहीं। "यानी घर नहीं बन सकता।" घर का मफ़्हूम एक ऐसी चीज है जिसको अल्फ़ाज़ में बयान करना मुमकिन नहीं। हर शख़्स को जिसको ख़ुदा ने दुनिया में घर दिया है वह उसको समझ सकता है। यह बऐनिही ऐसी बात है जैसे कोई सुर्ख़ या सब्ज़ किसी रंग की तारीफ़ करना चाहे। यह ऐसी चीजें हैं जिनका इद्राक[७] सिर्फ़ मुशाहदे[८] पर मौक़ूफ़ है।

उस हकीम ने जो सूरत तज्वीज़ की है उसमें मर्द-औरत दोनों अपना-अपना काम करते हैं। फ़र्ज़ किया जाय कि मियाँ मसलन घड़ीसाज़ी की दूकान करते हैं। मियाँ आठ बजे शब को दूकान बन्द करके घर पर आते हैं और बीवी साढ़े पाँच बजे दफ़्तर से तशरीफ़ लाती हैं। उमूर खानादारी सब मुलाज़मीन के महौल है (बशर्ते कि मुलाज़िम रखने का मक़्दूर भी हो)। मुलाज़मीन ने खाना पका रखा। बिछौने बिछा दिये। दोनों मियाँ बीवी रात को सो रहे। सुबह को खाना-दाना खाके दोनो साहब फिर अपने-अपने काम पर गये।

यह ज़िन्दगी चन्द रोज़ तक बहुत अच्छी तरह गुज़र सकती है लेकिन फ़र्ज़ किया जाय मियाँ या बीवी दोनों में से कोई बीमार होगया उस सूरत में ज़रूर है कि एक दूसरे की मदद करें। अगर बीवी बीमार हों तो मियाँ को रुख़्सत लेना होगी और मियाँ बीमार हों तो बीवी को। और अगर यह न हो तो मुल्क की तरफ़ से कोई ऐसा इन्तज़ाम हो कि बीमारों की तीमारदारी किसी खास हस्पताल में की जाय। मसलन अगर मियाँ

---

१ अवकाश २ ज़रूरत पर ३ कोशिश ४ रुपये-पैसे ५ वैवाहिक जीवन ६ अलावा ७ अनुभूति ८ आखों देखने।

बीमार हों तो चाहने वाली बीवी सिर्फ़ अपने दिल ही में खाली मियाँ की हालत पर अफ़सोस करती रहें। मियाँ की तीमारदारी उन लोगों के हवाले है जो हस्पताल से क़लील तनख्वाह पाते हैं। एक तो मियाँ बीमार हुए। दूसरे प्यारी बीवी से छूटे। खुदा ही उनकी जान का हाफ़िज़ है।

अगर यह मर्ज़ मर्ज़ुलमौत[1] हो और मियाँ ने इन्तक़ाल किया। अब बीवी इस फ़िकर में हैं कि मियाँ की यादगार क़ाइम की जाय। चन्दे की फ़ेहरिस्त बनाकर और बाज़ू पर स्याह कपड़ा बाँधकर अहबाब से चन्दा तहसीलती फिरती हैं। यह उन लोगों की क़िस्मत का ज़िक्र है जो कि नामी और नामवर हैं वर्ना............मर गये मरदूद जिनका फ़ातिहः न दुरूद। बीवी ने तज़वीज[2] का मुआहिदः किसी और से कर लिया।

यह तो उस सूरत में था कि जब दो से तीसरा न हो। जैसा कि हकीम मौसूफ़ की राय है कि सिलहिला तवालुद[3] को क़ता या महदूद[4] करना चाहिए यानी औलाद न हो या एक दो से ज़्यादः न हो। उस सूरत में यह फ़ायदा शायद मुस्तहसन[5] हो लेकिन हकीम मौसूफ़ की राय के बरखिलाफ़ अगर किसी बेवक़ूफ़ मर्द या औरत को औलाद की हवस हुई तो सख्त मुश्किल पड़ेगी। इसलिए बीवी को वक़्तन फ़वक़्तन सिक लीव (रुख्सत बीमारी) लेना पड़ेगी और अगर इस बीमारी ने तरक़्क़ी की तो नौकरी तशरीफ़ ले जायगी और उस सूरत में एक अम्र अहम यह है कि मुआमलः मुआशरत[6] में जब मर्द और औरत दोनों का ज़ोर और दोनों के हक़ मुसावी[7] हैं तो औलाद की परवरिश और तर्बियत ओर तालीम का बार किस के ज़िम्मे डाला जाए। उस हालत में या तो (इस्टेट) सल्तनत की तरफ़ से लड़कों की परवरिश का बन्दोबस्त होगा और अगर बर्सबीले तहुहुम्म[8] वाल्दैन ने खुद अपने ज़िम्मे ले लिया, दोनों खुदा के फ़ज़्ल से बरसरकार हैं, सिवाए इसके कि ठेके पर दे दी जाय और क्या हो सकता है। हर एक औलाद को वही लुत्फ़ आयेगा जो हज़रत आदम को आया होगा। बाप की शफ़क़त और आग़ोशे-मादर का लुत्फ़ दोनों से महरूम रहेगा।

खुलासा यह कि रफ़्तः रफ़्तः तमाम इंसान यह समझने लगेंगे कि गोया वह बज़रिये कलों के पैदा किए गए हैं। और उसूल मीकानी[9] की बिना पर उनकी परवरिश हुई है। उस हालत में हुक़ूक़े वाल्दैन का हिस व मस[10] किसी औलाद को बाक़ी न रहेगा और रफ़्तः रफ़्तः वह हालत पैदा होगी कि साहबज़ादे बलन्द इक़बाल हाईकोर्ट के जज हैं और वालिद माजिद खैरातखाने के टुकड़े तोड़ रहे हैं।

---

१ प्राणघातक २ निकाह, बिवाह ३ बच्चे पैदा करना ४ बन्द या सीमित
५ उत्तम ६ सामाजिक जीवन में ७ समान ८ मामता के कारन ९ मेकैनिकल
१० स्नेह और अनुरागवश।

मिर्ज़ा साहब का मफ़्हूम मियाँ-बीवी का यह था कि दोनों वजूद और बक़ाए मंज़िल[1] के लिए लाज़िम व मल्ज़ूम[2] हैं और दोनों के जुदा-जुदा फ़रायज़ हैं।

मर्द का फ़र्ज़ है कि मंज़िल[3] के लिए ज़रूरियात का मुहय्या करना। औरत का फ़र्ज़ है मंज़िल की अन्दरूनी हालत को दुरुस्त रखना। यह दोनों के फ़र्ज़ इन दोनों लफ़्ज़ों से बहुत अच्छी तरह तावीर[4] किए जा सकते हैं। मर्द का फ़र्ज़·········कमाई। औरत का फ़र्ज़······गृहस्ती। उन दोनों में जिसने अपना फ़र्ज़ अदा नहीं किया वह खुदा का भी गुनहगार है और निज़ाम मुआशरत का भी और इस गुनाह की दुनियाँ में यह सज़ा होना चाहिये कि ऐसे मर्द या औरत के हुक़ूक़ मंज़िली[5] ज़ब्त कर लिये जायँ। निखट्टू मियाँ शौहरियत की लियाक़त नहीं रखता। और फूहड़ औरत इस क़ाबिल नहीं कि वह किसी शरीफ़ की बीवी हो सके।

सकीना (उस लड़की का नाम था जिसके साथ मिर्ज़ा साहब ने अहमदअली का अक़्द तजवीज किया था[6]) का सिन दस-ग्यारह बरस का था। भोली-भाली सूरत थी, माँ-बाप दोनों ही बचपने के ज़माने में मर चुके थे। माँ के मरने के बाद उसको खाला ने अपनी हिमायत में ले लिया था। वह भी क़ज़ाए इलाही से फ़ौत हो गईं। यह उस वक़्त का ज़िक्र है जब सकीना का सिन सात बरस का था। अब यह लड़की खालू के पास रही। उन्होंने ने भी ज़ौजः के मरने के बाद अक़्द सानी[7] किया। इससे नाज़रीन बख़ूबी समझ सकते हैं कि जिस घर में सकीना रहती थी उसके घर के मालिकों में किसी को सकीना के साथ कोई तब्ई[8] तअ़लुक़ न था। इस यतीम लड़की की परवरिश एक तरसखुदा का काम था। सकीना के खालू बेचारे बहुत ही ग़रीब थे। मरसियाख्वानी करते थे। साल भर के बाद सौ रुपये उनको एक देसी रियासत से मिलते। इस पर चार औलादें ज़ौजः अव्वला से, एक लड़की ज़ौजः सानियः[9] से। सकीना का नसीब अच्छा था कि मिर्ज़ा साहब के दिल में उसकी मुहब्बत पैदा होगई। मगर उसमें एक मुश्किल यह थी कि अहमदअली का सिन पन्द्रह बरस का था। वह भी मिडिल क्लास में पढ़ता था। मिर्ज़ा की यह राए थी कि इंट्रेंस पास करने के बाद शादी कर देना चाहिये। मिर्ज़ा बचपने की शादी के खिलाफ़ थे मगर जवान होते ही लड़के-लड़की की शादी कर देने को फ़र्ज़ समझते थे।

मिर्ज़ा ने सकीना के खालू से मिल कर उसको अपनी सरपरस्ती में ले लिया और फ़रज़न्दों की तरह परवरिश करने लगे। सकीना दबी दबाई लड़की थी।

---

१ मौजूदः व शेष जीवन के लिए २ परस्पर कर्तव्यबद्ध ३ घर ४ अनुमान ५ घर-जायदाद में अधिकार ६ सगाई तय की थी ७ दूसरी शादी ८ दिली ९ दूसरी बीवी।

चन्द ही रोज़ में मिर्ज़ा साहब की बीबी ने उसे अपने ढंग पर लगा लिया। तीन बरस के बाद अहमदअली के साथ अक़्द कर दिया गया।

जिस तरह मिर्ज़ा ने बहू को तालीम दी। बओनही यही ख़याल दामाद की निस्बत था। मगर इस मतलब के लिए उन्होंने किसी लड़के को परवरिश नहीं किया। उसमें यह लिम थी कि अगर ऐसा किया जायगा तो साहबज़ादे सुसराल के टुकड़े तोड़ने के आदी हो जायँगे। उनसे फिर कोई काम न होगा। लड़की ऐसे लड़के से न दबेगी। उम्र भर बे-लुत्फ़ी रहेगी। मगर अब लड़की भी ब्याहने के लायक़ होगई है। आख़िर उनके दोस्तों में से कोई एक साहब वाहिदहुसैन नामी थे, उन्होंने शादी का पैग़ाम दिया। लड़के के चाल-चलन से मिर्ज़ा बख़ूबी वाक़िफ़ थे। इसलिए कि अगर्चे पहले से उसका शान व गुमान भी न था कि इस लड़के के साथ लड़की का अक़्द किया जायगा, लेकिन मिर्ज़ा को अपने और अपने अहबाब के लड़कों की तालीम से एक क़ुदरती लगाव था। इसलिए मिर्ज़ा उस लड़के की हालत से बख़ूबी वाक़िफ़ थे। पैग़ाम आते ही मिर्ज़ा ने मंज़ूर किया। मामूली रुसूम के बाद शादी कर दी गई। लड़के-लड़की दोनों की शादियों में मिर्ज़ा साहब ने ख़िलाफ़ जुम्हूर तमाम बेहूदा रस्मों को तर्क कर दिया। खास अहबाब की दावत के सिवा और किसी क़िस्म का सामान नहीं किया गया। न रंडियाँ नाचीं न भांड-भगेतों को बुलाया। लड़के की शादी में तो दोनों तरफ़ का इख़्तियार ख़ुद इन्हीं को था। सकीना के ख़ालू बराए नाम शरीक हो गए थे और जो कुछ उन्होंने सकीना को अपनी ख़ुशी से दिया उसको निहायत ही शुक्रगुज़ारी से मंज़ूर कर लिया। लड़की की शादी में यह शर्त पहले ही कर ली गई थी कि माँझा, साचक़, बरात बतौर मुतआरफ़ न होगा। सिर्फ़ शरई अक़्द किया जायगा। दूल्हा की माँ को डोमिनियों के बुलवाने पर बहुत इसरार था मगर मिर्ज़ा साहब ने हरगिज़ मंज़ूर न किया। शरबत पिलाई की रस्म को मिर्ज़ा बहुत ही बुरा जानते थे। इसलिए अक्सर अज़ीज़ों और दोस्तों से बिगड़ गई। मगर मिर्ज़ा उन लोगों में न थे जिनको किसी अम्र माक़ूल में निज़ाम मुआशरत की मुताबअत[1] में कोई उज़्र नहीं है—अलावा उन उमूर जो ख़िलाफ़ ख़ुदा ओ रसूल या ख़िलाफ़ अक़्ल हों। उमूर जायज़ में हम-मुआशरत की इस तरह फ़र्माबर्दारी जिस तरह सल्तनत के क़ानून की या तशरीअ् के अहकाम[2] की। मगर जो रस्म और क़ानून के ख़िलाफ़ होगा उसमें निज़ाम मुआशरत का मुक़ाबला पूरी क़ूवत से किया जायगा। लड़के-लड़कियों की शादियों के बाद मिर्ज़ा बहुत ही सुबुकदोश[3] होगए। अब उन्होंने वह तरीक़: ज़िन्दगी इख़्तियार किया जिससे दुनिया में बिहिश्त का लुत्फ़ आता था। बशर्ते कि

१ अनुकरण २ शास्त्रादेश ३ उऋण, भार से हलके।

बिहिश्त में तब्ऒी[1] मिहनत भी अस्बाब ऐश में दाखिल हो। मिर्ज़ा का यह ख़याल था कि वग़ैर मिहनत के ज़िन्दगी बसर नहीं हो सकती।

अब उन्होंने लखनऊ के क़रीब एक मौज़े में एक क़िता ज़मीन खुदकाश्त किया। साल में सिर्फ़ दो एक महीना लखनऊ में रहते थे। बाक़ी तमाम साल गोया वही घर था। शहर में मिर्ज़ा का दिल न लगता था इसलिए कि यहाँ इनकी दिलचस्पी का कोई सामान मुहय्या न था। इनके दो शुग़्ल थे—एक मशक़्क़त, दूसरे कुतुबबीनी[2]। शहर के लोगों को इन दोनों बातों से नफ़रत। उनका ख़ास शुग़्ल जिससे मिर्ज़ा को नफ़रते कुल्ली थी, कबूतरबाज़ी, बटेरबाज़ी की।

  

अगर्चे बचपने के दोस्तों का असर मिर्ज़ा आबिदहुसैन की सीरत पर नहीं पड़ा और यह अम्र क़ाबिल सताइश है कि वह इस असर की ख़राबी से महफ़ूज़ रहे लेकिन आम नश्वोनमा के बाद अलबत्ता अक्सर क़ौमी तबीयतों ने इन पर असर डाला और उसका उन्हें ममनून होना चाहिए।

मसलन सय्यद जाफ़रहुसैन साहब जिनको इनसे खास मुहब्बत थी। सय्यद साहब की सीरत क़ौम और मुल्क के लिए एक उम्दः मिसाल है। इब्तदाई उम्र से सय्यद साहब के क़ुवा[3] इस लायक़ न थे कि वह किसी क़िस्म की सख्त तब्ऒी मशक़्क़त कर सकें। इसलिए तालीम अंगरेज़ी आला दर्जे की न हासिल कर सके। सिर्फ़ इन्ट्रैंस क्लास पहुँच के बसबब अलालत[4] मदरसा छोड़ना पड़ा। मगर मसलहत-अन्देश ज़ेह्न इन्सान को हरगिज़ बेकार नहीं छोड़ते। इसलिए उन्होंने रुड़की कालेज के दाखिले का इम्तहान पास किया और उस मदरसे में दाखिल हो गये। यहाँ इन्होंने अपनी बिल् इस्तिक् मिहनत और नेक चलन से अपने उस्तादों को बहुत ही खुश रखा। अगर्चे उस मदरसे में एक साहब और भी लखनऊ के रहने वाले उस ज़माने में दाखिल थे और सय्यद साहब और वह बवजह हमवतन होने के एक ही बारिक बल्कि एक ही कमरे में मुक़ीम थे। यह दूसरे हज़रत इन्तहा के काहिल। फ़ज़ूलखर्च और सबसे बड़ा खब्त शायरी का उनके दिमाग़ में समाया हुआ था। रुड़की कालेज में दाखिल होकर बजाए इसके वह तालीमी कोर्स को याद करते, ग़ालिब और ज़ौक़ के दीवान हिफ़्ज़ फ़रमाते थे। सरेशाम से आधीरात बल्कि उससे कुछ ज़्यादः देर तक अपना और अपने साथियों का वक़्त ज़ाया करने के सिवा उनका कोई और काम न था। सुबह को माशा-अल्लाह उस वक़्त सो के उठते थे जिस वक़्त कालेज का घण्टा बजता था। यानी साढ़े दस बजे। फिर उस वक़्त भी अगर उनका शाहाना मिज़ाज दुरुस्त हुआ तो कालिज़

१ शौक़िया २ पुस्तकों का अध्ययन ३ बल-पौरुष ४ बीमारी।

गए वर्ना बारिक ही में पड़े रहे। माहवारी इम्तहानों में किताबें देखना क़सम था। सिर्फ़ इम्तहान से एक दिन पहले जब तुलबा आपस में बैठ कर मुबाहिसा किया करते थे, उसमें खौफ़े ख़ुदा करके शरीक हो जाते थे। मगर नहीं मालूम क्या ख़ुदा की क़ुदरत थी कि किसी इम्तहान में फ़ेल न हुए। सिर्फ़ पास होने भर के मार्क्स (नम्बर) मिल जाया करते थे। हज़रत को इसका फ़ख्र था। सालाना में ख़ुदा-ख़ुदा करके पास हो गए और एक साल के लिए सय्यद साहब को अपने हाल पर छोड़के कालिज से निकल आए। नौकरी पर भी एशियाई शायरी का ज़हरीला असर और उनके मलज़ूम[1] काहिली, बेपरवाई, बद्‌दिमाग़ी को लिये हुए पहुँचे, भला ऐसों से नौकरी क्या होती। डेढ़ दो बरस के बाद मौक़ूफ़ कर दिए गये। फिर मुस्तक़िल सरकारी मुलाज़िमत न मिली। ख़ुदा जाने किस तरह हैं और क्योंकर हैं। उन हज़रत के कालेज से निकल आने के बाद सय्यद साहब का पीछा छूटा। अब सय्यद साहब ने मुस्तक़िल मेहनत करना शुरू की। दूसरे साल के इम्तहान में (जो रुड़की कालेज का आखिरी इम्तहान है) दूसरे दर्जे में पास हुए और एक मज़मून में इनाम भी पाया। इसके बाद मुहकमे नहर में मुलाज़िम हुए। और उस मुहकमे में अब भी आला दर्जे के ओहदे पर हैं। मैं पहले एक मुक़ाम पर लिख चुका हूँ कि मिर्ज़ा आबिदहुसैन ने इंजीनियरी का इम्तहान आप ही की राय से पास किया था। बल्कि उस इम्तहान के पास करने में आपने बड़ी मदद की। पैमायश व लेविल, नक़्शाकशी, तख्मीना इमारत वग़ैरह सब आप ही से सीखा था।

सय्यद साहब को इनके साथ और इनको सय्यद साहब के साथ खास दर्जे का ख़ुलूस[2] था। वह आपकी मद्‌ह व सना[3] ग़ायबाना[4] करते थे। और यह उनकी तक़लीद करते थे और वह इनकी। मज़ाक़ दोनों का मिलता हुआ। शेरो-शायरी से इनको भी नफ़रत थी और उन्हें भी। समझते दोनों थे। मगर वाक़िईयत[5] में इस क़दर ग़र्क़ थे कि मज़ामीनख़याल[6] इनको हेच व पोच मालूम होते थे।

एक मर्तबा का ज़िक्र है। सय्यद जाफ़रहुसैन साहब के वही लखनवी हमवतन जिनका ज़िक्र ऊपर आ चुका है, फ़सीहुलमुल्क नवाब मिर्ज़ा साहब दाग़ देहलवी का तीसरा दीवान बड़े ज़ौक़ व शौक़ से खरीद करके लाए। सय्यद साहब उस वक़्त मौजूद थे। ख़ुदा जाने क्या जी में आया, दीवान उठा के देखना शुरू किया। इत्तफ़ाक़ से पेंसिल हाथ में। अश्आर-नज़री[7] करना शुरू कर दिया। सफ़े के सफ़े काट दिये और बाज़ अश्आर पर कुछ हाशिये भी चढ़ाये। बस यही मज़ाक़ मिर्ज़ा आबिद-

---

१ संबद्ध २ आत्मीयता ३ प्रशंसा व गुणगान ४ पीठ पीछे ५ यथार्थ जीवन ६ विषय-कल्पना ७ छन्दावलोकन।

हुसैन साहब का भी था। मेकानिक्स में दोनों को आला दर्जे की क़ाबिलियत थी। सैकड़ों कलों की तजवीज़ रोज़ाना हुआ करती थी, नक़्शे बना करते थे। बल्कि अगर मक़दूर[१] हुआ तो उसके नमूने भी बनवाये गये। वर्ना आरज़ूएँ[२] दिलों में रह गईं।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन के अज़ीज़ों में से भी कोई ऐसा मौजूद न था जिससे मिर्ज़ा आबिदहुसैन के इख़्लाक़ को कोई नफ़ा पहुँचता हो। इनके एक अज़ीज़ का तज़किरः बतौर नमूने के किया जाता है।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन के दूर के रिश्तेदारों में एक शख़्स मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन नामी लखनऊ के रहने वाले बहुत तबाह-हाल और परेशान थे। किसी क़दर फ़ारसी पढ़े हुए थे और बचपने से शोरगोई[३] का भी ख़ब्त था। उसने तबीयत को और नाज़ुक कर दिया था। मरसियाख्वानी के शौक़ ने सब्र व क़नाअत[४] का सबक़ पढ़ा दिया था। साल भर के बाद अशरः मोहर्रम में किसी सरकार से सिर्फ़ पचीस रुपये की आमद थी। उसमें क्या होता था। एक बीबी, एक आप, एक लड़का, दो लड़कियाँ थीं। ग़रज़ कि यह सब बन्दे ख़ुदा के इफ़्लास[५] के पंजे में गिरफ़्तार थे। न कोई सूरत सफ़र की आप से आप नज़र आती थी कि उस बला से नजात हासिल हो और न इतनी हिम्मत और अक़्ल थी कि ख़ुद अपनी सअी बाज़ू[६] से मुख़लिसी[७] हासिल करें। जो लोग लखनऊ के निज़ाम मुआशरत से वाक़िफ़ हैं, उनसे तो कुछ कहने की ज़रूरत नहीं। मगर हाँ और लोगों को इतना बताना ज़रूर है कि यहाँ के रहने वाले अमूमन अक़्ल-मआश[८] से बेबहरः होते हैं। अगर्चे यह शहर अब ऐसा मुफ़्लिस हो गया है कि यहाँ के मुतवस्सित दर्जे[९] के लोगों में से अक्सर को आप फ़िक्रे-मआश[१०] में मुब्तिला पाइयेगा। और अगर किसी चलते पुर्ज़े आफ़त के परकाले को अक़्ल मआश है भी तो वह अक़्ल फ़साद के साथ मिली हुई। नेक और जायज़ वसीलों से रुपया पैदा करना यहाँ के लोग नामुमकिन ख़याल करते हैं। और दुनिया भर में रुपया पैदा करने के लिए तरह-तरह की तदबीरें सोची जाती हैं। कोई इस फ़िक्र में है कि या कोई पेशा सीखें या कोई नौकरी करें; या अगर किसी क़दर रासुल्माल[११] पास है तो कोई दूकान खोलें या कोई कारख़ाना करें। यहाँ इस क़िस्म की कोशिश करने वाले पस्तख़याल[१२] अदना दर्जे के लोग समझे जाते हैं। और जो शख़्स ऐसा कर लेता है, वह गोया दायरा तश्ख़ीस[१३] से निकल जाता है। मसलन उन लोगों में जो अहल तश्ख़ीस में दाख़िल हैं, यह वही लोग हैं जिनके आबा व अज्दाद[१४] साहबे सर्वत[१५] थे।

---

१ समाई २ इच्छाएँ ३ कविता रचने का ४ धैर्य और संतोष ५ कंगाली के दैवी प्रकोप ६ बाहुबल ७ मुक्ति ८ जीविकार्जन-बुद्धि ९ मध्यम वर्ग १० रोज़ी की चिन्ता ११ पूंजी १२ मंदबुद्धि १३ मर्यादावाले १४ पूर्वज १५ सम्पन्न, धनाढ्य।

यह बुज़ुर्ग सर्वत को तो अपने साथ मुल्के अदम को लेते गए, मगर महज़ तशख़्ख़ुस[१] और निख़्वत[२] जो कि लाज़िमी सिफ़ात इस सर्वत के थे, अपनी औलाद की मीरास[३] में छोड़ गये। अगर किसी ने कोई पेशा कर लिया तो वह बेचारा अंगुश्तनुमा[४] हो जाता है। फिर करें क्या ? यह मुझसे सुनिये:—

(१) अगर अरबी शुद-बुद पढ़ी है और शक्कियाते नमाज़[५] और मसाएल रोज़-मर्रः से वाक़िफ़ हैं—किसी मुज्तहिद[६] से यह सओ व सिफ़ारिश या बइज़हार रसूख़ियत-खान्दानी इजाज़ः[७] हासिल करके पेशनमाज़ बन जायँ। लखनऊ में तो ख़ैर मगर अक्सर बाहर के देहाती क़स्बाती बहुत से मोतक़िद[८] हो जायँगे।

(२) अगर चौगोशिया टोपी क़ालब[९] पर चढ़ाना जानता है, किसी नामी मरसियाख़्वान का शागिर्द हो जाय और उनसे कोई रुक़्क़ा लेकर बाहर चला जाय। हस्ब हैसियत लिबास व तशख़्ख़ुस ज़ाहिरी[१०] कुछ न कुछ वसूल हो जायगा।

(३) अगर कुछ पढ़ा नहीं है सिर्फ़ किसी क़दर क़िर्अत[११] से वाक़िफ़ है, खुसूसन ज़ाल और ज़ाद को ब-सेहत अदा कर सकता है, किसी मैयित[१२] के रोज़ः नमाज़ का उजूर:[१३] ले। नमाज़ पढ़े या न पढ़े, रोज़े रखे या न रखे, यह उसका ईमान जाने। या हज या ज़िआरत का मुआमलः करले।

(४) अगर इल्म मजलिस से वाक़िफ़ हो, किसी रईस का दरबार करे, नौकरी का उम्मीदवार रहे। वक़्तन फ़वक़्तन बग़रज़ फ़ाक़ाशिकनी[१४] के कुछ वसूल हो जाया करेगा।

यह सूरतें अक्ले-हलाल[१५] की हैं। अब अगर हराम व हलाल से कोई बहस न रखता हो और सूरत ज़ाहिरी अच्छी हो, किसी मालदार औरत के फाँसने की फ़िक्र करे। आम इससे कि वह शौहरदार हो या बेवा। यह भी नामुमकिन हो तो किसी नौउम्र रईसज़ादे को क़ब्ज़े में लाये। उस हालत में अगर मुमकिन हो तो अपनी बहन या लड़की का निकाह उसके साथ कर दे या किसी और तरीक़े से उसके माल पर क़ब्ज़ा करे और जब वह यकबीनी-व-दोगोश[१६] हो जाय तो उससे किनाराकशी करे; और तनहा उसकी लियाक़त न रखता हो तो जालियों की कम्पनी में शिरकत करे और जो कुछ

---

१ मर्यादा २ अभिमान ३ उत्तराधिकार ४ बदनाम, नक्कू ५ नमाज़ संबन्धी शंकाओं ६ शीआ सम्प्रदाय का धर्म-गुरु ७ पुश्तैनी योग्यता की सनद ८ श्रद्धालु, भक्त ९ टोपी चढ़ाने का साँचा १० पहनाव ओढ़ाव ११ कुर्आन का शुद्ध सस्वर उच्चारण १२ मरे हुए १३ मिहनताना १४ लंघन (उपवास) तोड़ने के लिए १५ हलाल रोज़ी १६ बिलकुल लाचार।

रुपिया पास हो तो जाली मुक़द्दमों में रुपये से मदद दे। रुपिया न हो तो पैरवी दौड़-धूप से अपना एक हिस्सा मुस्तक़िल कम्पनी में क़ायम करले।

यह सब सूरतें ऐसी हैं कि निज़ामेमुआशरत में[1] इज़्ज़त बाक़ी रहे और रुपिया पैदा हो; और अगर कोई ख़ुदा न ख़्वास्तः पेशा कर लिया या किसी क़िस्म का हुनर सीख के उससे अख़्ज़-मआश[2] करने लगा तो लोगों की निगाहों में ज़लील हो जायगा। यहाँ तक कि लड़के-लड़की की शादी ब्याह में दिक़्क़तें पेश आयेंगी। छोटी उम्मत वालों में शुमार कर लिया जायगा, ख़्वाह वह कैसा ही शरीफ़ुल्-नस्ल और शरीफ़ुल्-ज़ात क्यों न हो। यह उमूर जो यहां लिखे गये हैं, इसको नाज़रीन मज़ाक़ न समझें। यह बिल्कुल वाक़िआत हैं।

ग़रज़ कि हमारे मिर्ज़ा के अज़ीज़ मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन उसी क़िस्म के लोगों में से थे जिनके ऐसे ख़यालात होते थे और अपने ख़यालात के बदौलत यह और इनके बाल-बच्चे तरह-तरह के मुसाएब[3] में मुब्तिला थे।

जिस ज़माने में मिर्ज़ा साहब ज़िला मेरठ में असिस्टेंट इंजीनियर थे मिर्ज़ा फ़िदा-हुसैन बसीग़ए मरसियाख़्वानी उसी ज़िले में एक रईस के मकान पर तशरीफ़ ले गए। मिर्ज़ा साहब भी मुहर्रम की मजलिसों में वहाँ जाया करते थे। वहीं मुलाक़ात हुई। मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन को बलिहाज़ क़राबत[4] एक दिन अपने इलाक़े पर मेहमान किया। दावत की। एक रोज़ अपने मकान पर ख़ुद मजलिस करके मिर्ज़ा साहब से पढ़वाया। वक़्त-रवानगी मिर्ज़ा साहब को रईस की सरकार से पच्चीस रुपये वसूल हुये। मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन के इफ़्लास[5] का हाल कुछ पोशीदः न था। मिर्ज़ा आबिदहुसैन ने एक मजलिस की पढ़वाई के हीले से पचास रुपये अपने पास से दिए। दूसरे साल फिर ऐसा ही इत्तफ़ाक़ हुआ। अबकी मर्तबा मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन ने कहा कि अगर कोई सूरत रोज़गार की मुमकिन हो तो कर दीजिए। मिर्ज़ा आबिदहुसैन ने कहा कि सूरत रोज़गार की हो सकती है बशर्ते कि मिहनत पर आमादः हों। मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन इफ़्लास के हाथों बहुत तंग थे, मंज़ूर कर लिया। मिर्ज़ा आबिदहुसैन ने साहब से कहके एक जगह मुहर्रिरी[6] की उनको दिलवा दी। पन्द्रह रुपये माहवार तनख़्वाह थी। मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन ख़ुशी-ख़ुशी लखनऊ गए। और मय अहलोअयाल[7] मिर्ज़ा आबिद-हुसैन के इलाक़े पर पहुँच गए।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन ने उनके अहलोअयाल को अपने घर में उतार लिया।

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी सकीना बेगम बहुत ही तंगमिज़ाज थीं। इसके

---

१ नागरिक जीवन में　२ रोज़ी (जीविका) की प्राप्ति　३ मुसीबतों　४ आपसदारी　५ कंगाली　६ क्लर्की　७ बीवी-बच्चे।

अलावा लखनऊ के तर्ज़ मुआशरत[1] की आदी। आदतें बिगड़ी हुईं। सुबह के नौ बजे सो के उठना। दिन भर फ़ुज़ल औक़ात ज़ाया करना। वैसी ही कुछ बच्चों की भी ख़सलतें थीं।

उन लोगों को कभी बाहर जाने का इत्तफ़ाक़ न हुआ था। हर चीज़ बाहर की आपको बुरी मालूम होती थी। ख़्वाह वह दर हक़ीक़त बुरी हो या न हो।

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन का हाल कुछ ही क्यों न हो लेकिन उनकी बीवी समझती थीं कि मिर्ज़ा आबिदहुसैन ने जो उनके मियाँ को नौकर रखवा दिया है उसमें कुछ उन्हीं का मतलब है।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी मेहमाननवाज़ी के लिहाज़ से जितनी उनकी ख़ातिर-दारी करती थीं वह उसको एक क़िस्म की ख़ुशामद और मतलबबरारी[2] समझती थीं। यह तो एक क़िस्म की ग़लतफ़ह्मी थी। इसके अलावा हसद[3] ने और भी आँखों पर पर्दे डाल दिये थे। एहसानफ़रामोशी[4] ऐब है मगर वह अपने शौहर को मिर्ज़ा आबिदहुसैन का मुहसिन[5] तसव्वुर करती थीं और उसी क़िस्म के सुलूक की मुतवक़्क़ो[6] थीं जो मुहसिनों के साथ करना चाहिए। सकीना बेगम साहिबा ने ऐसे हल्क़ए मुआशरत में परवरिश पाई थी जहाँ बेग़रज़ी से किसी के साथ नेकी करने का मफ़्हूम[7] बिल्कुल नामुमकिन ख़याल किया जाता था। उनका यह मक़ूलः था कि "बे मतलब किसी को कोई कुछ नहीं देता।"

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी यह समझती थीं कि मिर्ज़ा आबिदहुसैन और उनके ख़ानदान ने इनके शौहर और ख़ुद इनपर वह ज़ुल्म किया है जिसकी तलाफ़ी[8] रद्द-मज़ालिम[9] से भी मुमकिन नहीं।

एक तो लखनऊ से छुड़वाने का गुनाह इस क़दर संगीन और सख़्त था कि अगर अदालत मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी के इख़्तियार में होती तो मिर्ज़ा आबिदहुसैन और उनके बीवी-बच्चों को कोल्हू में पेलवा डालतीं। उठते-बैठते यह कलाम था, "हाय पन्द्रह रुपल्ली के लिए घर छोड़ा, बार छोड़ा। मुझे जंगले में आ के रहना पड़ा। क्यों बहन रुक़य्या बेगम! (मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी का नाम) मैं कहती हूँ कि अगर यहाँ कोई मर जाए तो क्या हो। खटिया पर उठाया जायगा। फ़ातिहः दुरूद भी अच्छी तरह न हो।

तुम्हारे मियाँ का ख़ुदा भला करे किस जंगले में लाके डाला है, जहाँ अपना कोई अज़ीज़ न साथी। न पूछने वाला न देखने वाला। सब तो सब मेरी बतूली को

१ रहन सहन का तरीक़ः २ स्वार्थसिद्धि ३ ईर्ष्या ४ कृतघ्नता ५ उपकारकर्ता ६ आशा रखती थीं ७ उद्देश्य ८ उद्धार, क्षतिपूर्ति ९ प्रायश्चित्त।

दूसरा साल भर के तीसरा साल शुरू हो गया है। शहर में दूधबढ़ाई[१] करती। चार अपने-पराये जमा होते। नज़र-नियाज़ होती। ज़ाकिर (बड़े लड़के का नाम था) को पन्द्रहवाँ साल है। माशाअल्लाह मसें भीगती हैं। उसका सील-कूंडे[२] करना है। और तो खैर, बड़ी मुश्किल यह आन पड़ी कि हुरमुज़ी (बड़ी लड़की का नाम है) को नवाँ बरस है। शहर में होते तो उसकी निस्बत[३] का बन्दोवस्त करती। मुशात:[४] को बुलवा के कहीं से रुक़्आ[५] मंगवाती। मैं कहती हूँ कि यह होता क्या है। फट पड़े वह सोना जिससे टूटें कान। बाज़ आए हम इस पन्द्रह रुपये की नौकरी से। शहर के चने अच्छे और बाहर का पुलाव नहीं अच्छा।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी बहुत ही नेक और निमोही थीं, मगर पन्द्रह रुपये का ताना इतनी बार दिया गया कि आखिर कलेजा पक गया। एक आध मर्तबा बोलना ही पड़ा। उनका बोलना था कि अच्छी खासी लड़ाई ठन गई। बी सकीना बेगम आप ही आप खफ़ा हो गईं। बातचीत तर्क कर दी। आदतें उस खानदान की बिलकुल बिगड़ी थीं। सबसे बढ़कर एक खराब आदत सवा पहर दिन चढ़े सो के उठना। नमाज़-दुआ से कोई वाक़िफ़ ही न था। मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी मुँह अँधेरे सो के उठती थीं और अपने साथ बेटी-बहू को भी उठाके नमाज़ पढ़वाती थीं उसके बाद कलाम-अल्लाह का एक सिपार: पढ़ा जाता था। मामाएँ असीलें[६] खाना पकाती थीं। बीवियाँ या किताबें पढ़ रही हैं या कुछ सी-पिरो रही हैं। खुलासा यह कि मिर्ज़ा आबिदहुसैन की जफ़ाकशी और मिहनतपसन्दी का तमाम घर पर असर था। छोटा-बड़ा इस खान्दान का बेकारी को गुनाह अज़ीम समझता था। "अम्र बिल्मारूफ़ और नही अनिल्मुन्कर" याने 'अच्छे कामों के करने की हिदायत करना और बुरी बातों से रोकना' न सिर्फ एक फ़र्ज़ मज़हबी है बल्कि इन्सान की नेकी खुद उसको कामों की तरफ़ मुतवज्जेह करती है। अगर तबीअतें बुराइयों की आदी न हो जायँ और उनमें तबीयत-पिज़ीरी[७] का जौहर मौजूद होता है तो इस्लाह मुमकिन है। जिन तबीअतों में खराब आदतें जड़ पकड़ लेती हैं तो उनमें बजाए तबियत पिज़ीरी के एक क़िस्म की ज़िद्द का माद्दा पैदा हो जाता है। इसमें शक नहीं कि उनका दिल भी अपनी बुराई का मुअरिफ़[८] होता है मगर उसके तर्क[९] पर या तो क़ुदरत रखते या उसे मोहाल समझते हैं। इसलिए तबीयत उन हीलों को तलाश करने लगती है जिससे नसीहतगरों की ज़बानबन्दी की जाए या अगर औरों को नेकी करते हुए देख के खुद अपना नफ़्स

१ बच्चे के दूध छुड़ाने की रस्म २ किशोरावस्था के आरंभ में नज़र-नियाज़ की रस्म ३ सगाई ४ ब्याह-काम तय कराने वाली औरत ५ रुक़्क़: (सगाई का पैग़ाम) ६ शरीफ़ नौकरानियाँ ७ गुणग्राहकता ८ प्रशंसक ९ त्याग।

मलामत करे तो उसमें जौहरशरीफ़ को (जो फ़िलहक़ीक़त एक फ़िरिश्तः है जो हर हालत और हर वक़्त में इंसान को नेकियों की तर्ग़ीब[1] और बुराइयों से मना किया करता है और जब उसका कहना न मान के इन्सान बुराई करता है तो उसको सख्त मलामत करता है) दबा देने बल्कि ख़ाक में मिला देने की कोशिश की जाती है।

मसलन जब मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी ने देखा कि कई वक़्त नमाज़ के गुज़र गये और मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी ने नमाज़ न पढ़ी तो पहले उनको तअज्जुब सा हुआ। दो एक मर्तबा इरादा किया कि कुछ कहें लेकिन लिहाज़ के मारे कुछ न कह सकीं। आख़िर एक दिन मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी को अलाहिदा ले जाके इस तरह तमहीद[2] उठाई।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी—भाभी मुझे एक बात में बड़ा तअज्जुब है मगर कहते हुए शरम आती है। अगर आप बुरा न मानें तो कहूँ।

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी—कहो ?

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी—कहना यह है कि मैंने आपको नमाज़ पढ़ते नहीं देखा और न लड़कों को। यह आप लोग नमाज़ किस वक़्त और कहाँ पढ़ते हैं कि मुझको ख़बर नहीं होती। भाई साहब की अज़ान और नमाज़ की आवाज़ अक्सर आती है।

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी—हाँ वह पढ़ते हैं शायद।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी—हाँय, यह शायद कैसा और क्या आप नहीं पढ़तीं ?

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी—रमज़ान और मुहर्रम में तो पाँचों वक़्त की नमाज़ पढ़ते हैं। और यूँ कभी पढ़ ली और कभी न पढ़ी।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी—तो क्या फ़क़त मुहर्रम और रमज़ान में नमाज़ वाजिब है और दिनों में नहीं ?

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी—अब यह तो मौलवी लोग जानें, जो मैंने देखा था तुम से कह दिया।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी—अच्छा आप क्यों नहीं पढ़तीं ?

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी—यह भी एक कमबख्ती की मार है। बात इतनी है कि मेरी तबीयत में शुब्हा कुछ इस क़िस्म का है कि जहाँ ज़रा सी छींट पड़ गई या कुछ ऐसी बात हो गई बस जी नहीं चाहता नमाज़ पढ़ने को ?

---

१ प्रेरणा २ भूमिका।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी—शुब्हा तो आप जानती हैं मुए शैतान की तरफ़ से होता है। शैतानी वसवसे[१] के ख़याल से ख़ुदा की नमाज़ का छोड़ना कैसा ?

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी—ऐ है भाभी तुम तो पढ़ी लिखी हो। तुमसे दलील कौन मिलाये। अच्छा अबकी से नहाऊँगी तो ज़रूर पढ़ूँगी।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी—जान बूझ के एक मर्तबा की नमाज़ क़ज़ा करने का नहीं मालूम कितना अज़ाब है। और आपने कह दिया कि नहाऊँगी तो पढ़ूँगी। अभी परसों तो आप नहाई थीं।

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी—ऐ है नहाई तो थी फिर छींट पड़ गई। कपड़े ग़ारत हो गये।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी—कहाँ छींट पड़ गई। जहाँ छींट पड़ गई हो उसको धोके ग़ोता दे लीजिये। शौक़ से नमाज़ पढ़िये।

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी—अब यह क्या मालूम कहाँ छींट पड़ गई है। अगर ऐसा होता फिर क्या था।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी—तो मालूम होता है आपने छींट पड़ते देखा नहीं। अगर देखा होता तो यह ज़रूर मालूम होता कि कहाँ पर छींट पड़ी।

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी—हाँ तो मैं ख़ुद ही कहती हूँ कि शुब्हा है।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी—शुब्हा पर नमाज़ तर्क नहीं हो सकती।

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी—ख़ुदा मारे या जिलाए। मुझसे हर सट्टे नहीं नहाया जाता।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी—आपसे हर सट्टे नहाने को कौन कहता है। हाँ तो यह कहिए कि न पढ़ी जायगी।

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी—कपड़े तो छिया-बिया और नमाज़ पढ़ लूँ। ऐसी नमाज़ से क़ुर्बान।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी—हाँ तो कहिये कि नमाज़ न पढ़ियेगा, और फिर जब आप ही न पढ़ें तो लड़के भला क्यों पढ़ने लगे।

ग़रज़ कि इस तक़रीर के बाद मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी को मायूसी हो गई।

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी को जहाँ और शिकायतें थीं उन सब में एक यह बहुत बड़ी शिकायत थी।

"हाय इस जंगल में लाके डाला है जहाँ कहीं अज़ान की आवाज़ नहीं आती। जहाँ शाम हुई और गीदड़ बोलने लगे।"

---

१ प्रेरणा।

जिस दिन से नमाज़ के बाब में गुफ़्तगू हुई थी, अज़ान का ज़िक्र इस शिकायत से हज़्फ़ कर दिया गया था[१], मगर मातम की शिकायत बाक़ी थी बल्कि उस दिन से मातम के लफ़्ज़ पर ज़्यादा ज़ोर दे दिया गया था। वजह उसकी यह थी कि जब इन्सान की एक बुराई साबित हो जाती है तो वह अपनी बाज़ नेकियों को जो उसमें मौजूद हों ज़ाहिर करने की ज़्यादातर कोशिश करता है, ताकि उसकी बुराई की वजह से जो उसकी ज़िल्लत हुई है दूसरी नेकी उसका मुवाज़नः[२] कर दे।

मातम के बार-बार तज़्किरे से यह मक़्सूद था कि अगर्चे हम नमाज़ के पाबन्द नहीं हैं लेकिन मातमदारी का शौक़ हमें बनिस्बत और लोगों के कम अज़् कम मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी से ज़्यादः है। मिर्ज़ा आबिदहुसैन के घर में अगरचे मातम और नौहःख़्वानी[३] का ज़िक्र न था मगर ख़ुदा के फ़ज़्ल से छोटे से लेके बड़ा तक एक मज़हबी तारीख़ से वाक़िफ़ था। पैग़म्बर और अह्लेबैत[४] के नाम पर जानोदिल से फ़िदा थे। ज़िक्र-अह्लेबैत को इबादत समझते थे। मगर न उस तरह कि जैसा मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी का ख़याल था। आठवें दिन जुमेरात को सवा पैसे की रेवड़ियाँ मंगवा के खड़े हो जाना और दो बोल सीधे उल्टे किसी धुन में पढ़ लेना और मातम-हुसैन कहके सीनःकोबी[५] कर लेना उनके नज़दीक चन्दाँ वाजिबात[६] से न था। मिर्ज़ा आबिदहुसैन का तरीक़: दीनदारी आम लोगों के ऐसा न था और उनमें एक सिफ़्त ख़ुदादाद थी कि जिस बात को अच्छा समझ लेते थे, उसको अमल में लाने से पहले उनको किसी से हिजाब[७] न होता था। अवाम की तक़्लीद-महज़[८] से उनको चिढ़ थी। यही तरीक़: आपके घर भर का हो गया था।

चन्दरोज़ तक मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी की इन शिकायतों का कोई जवाब नहीं दिया गया। आख़िर ईमान की बात थी, कहाँ तक सुकूत किया जाता[९]। एक दिन मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी को कहना पड़ा।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी—तो क्या तुम जुमेरात को मातम किया करती हो ?

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी—हाँ बीबी सौ काम दुनिया के करते हैं। कोई न कोई काम ईमान का भी तो करना चाहिए। आख़िर ख़ुदा को भी एक दिन मुँह दिखाना है।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी—मगर आप नमाज़ तो पढ़ती नहीं जो असल काम ईमान का है।

---

१ निकाल दिया गया था २ क्षतिपूर्ति ३ मरे हुए के लिए रोना, मुहर्रम में मातम करना ४ पैग़म्बर की संतान ५ छाती पीटना ६ अनिवार्य कर्त्तव्यों ७ संकोच, लज्जा ८ अन्धानुकरण मात्र ९ चुप रहा जाता।

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी—अच्छा नमाज़ नहीं पढ़ते न सही। मातम तो आठवें रोज़ का नाग़ा नहीं होने पाता।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी—ऐसे मातम से कोई फ़ायदा नहीं। जब नमाज़ न पढ़ी तो खाली मातम से क्या होता है ?

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी—तौबः तौबः करो। कुफ़्र न बको। मातम को तुम इस तरह कहती हो ?

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी—मैं सच कहती हूँ। इमामहुसैन इस बात से हरगिज़ राज़ी न होंगे कि ख़ुदा के फ़र्ज़ को आप तर्क करके उनका मातम कीजिए।

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी—यह तुमने क्या कहा। मातम एक पर एक है।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी—मगर नमाज हज़ार पर एक है। बग़ैर नमाज़ के मातम काम न आयेगा।

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी—भाभी बाहर रहते-रहते तुम्हारा ईमान दुरुस्त नहीं रहा और हाँ मैंने एक और बात सुनी है। तुम्हारे मियाँ ! ऐ है मुवे वह कौन कहलाते हैं, हाँ ख़ूब याद आया नेचरी, तुम्हारे मियाँ तो नेचरी हैं। जानती हूँ कि तुमने भी मियाँ के साथ अपना ईमान खो दिया। जब तो तुम मातम को इस तरह कहती हो। तुम ऐसा न कहो, आल-औलाद वाली हो।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी—क्यों इसमें आल-औलाद को ख़ुदा न ख्वास्ता क्या ज़रर[1] है ?

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी—तो इतना भी तुम नहीं समझतीं। आल-औलाद का ज़लल (ज़रर) तो होता ही है। ख़ुदा कोई लाठी लेके मारता है। जब उसकी बातों में तुम पै निकालती हो। उसकी सज़ा कुछ न कुछ होना चाहिए। या दीदों-घुटनों के आगे आये या ख़ुदा न ख्वास्ता शैतान के कान बहरे औलाद के दुश्मनों पर बन आये। हर जुमेरात को मातम किया करती थी। शामत की मार तीन जुमेरातें नाग़ा हो गईं। बतूली ऐसी माँदी हो गई कि किसी तरह बचने की कोई तवक़्क़ो न थी। आख़िर मुझे ख्वाब में दिखाया कि तू हमारा मातम किया करती थी, उसे तूने नाग़ा किया। आख़िर पाई न उसकी सज़ा।

दूसरे दिन से मैंने तीन वक़्त मातम करना शुरू कर दिया। सुबह, दोपहर, शाम, लीजिये उसी दिन से मेरी लड़की अच्छी होने लगी।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी—भाभी इमामहुसैन को भी तुम लोगों ने अपना सा बना लिया कि ज़रा-ज़रा सी बात पर ख़फ़ा हो जाते हैं।

---

१ क्षति।

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी—यह तो ख़फ़ा होने की बात ही है। आपस में देख लो। यह ख़याल करो कि तुम मुझको ईद-बक़रीद हिस्सा भेजती हो। और जो नाग़ा करो तो मुझको रंज होगा या नहीं, बस यूँ ही समझ लो।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी—आप तो मुझको कहती हैं मगर मालूम हुआ कि आप ईमान की बातें बिलकुल नहीं जानती।

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी—सच है अपनी हाई औरों पर गवाँई। जैसे तुम मियाँ की मुहब्बत में ख़ुदा और रसूल सब भूल गईं, वैसा सबको जानती हो। बस तुम्हारे ईमान का हाल तो मालूम हो गया कि शिया मोमिन होके तुम मातम की कोई असल नहीं समझतीं।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी—मैं मातम की कोई असल समझती हूँ या नहीं, यह मेरा दिल जाने और मेरा ईमान। मगर मुझे ऐसा मालूम होता है कि आप मुसलमान होके ख़ुदा की नमाज़ जो वाजिबात[1] में से है उसी की कोई हक़ीक़त नहीं समझतीं; न ख़ुद पढ़ती हैं न बच्चों को सिखाती हैं। हम लोग इमामहुसैन के ग़म को इतना मानते हैं कि रोज़ बाद नमाज़ और कलाम अल्लाह के, सज्जादी के अब्बा हदीस पढ़ते हैं। या अगर वह बाहर होते हैं तो मैं ख़ुद पढ़ती हूँ। सब छोटे-बड़े घर के सुनते हैं, जो बातें ख़ुश होने की हैं उन पर ख़ुश होती हूँ और जो रंज करने की बातें हैं उन पर रंज करती हूँ। जिन बातों को उन्होंने मना किया है उनसे बचते हैं और जिन कामों के करने का हुक्म दिया है उसे हत्तल्मक़दूर[2] करते हैं।

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी—हमने तो एक दिन भी नहीं देखा।

इस पर मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी बे-इख़्तियार मुस्कराने लगीं और कहा।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी—भाभी आप क्योंकर देखतीं। आप तो उस वक़्त सोई रहती हैं।

"जो सोया उसने खोया"

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी—(इस बात पर ज़रा खिसियानी सी हो गईं) तो एक दिन मैं भी सुनूँगी, भाई साहब क्या पढ़ते हैं।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी—ख़ैर, वह आजकल दौरे पर हैं। आप सबेरे उठिए, मैं आपको हदीस पढ़कर सुनाऊँगी।

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी—ज़रूर कल ही सही। वायदा तो कर लिया। मगर मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी को एक दिन भी सबेरे उठना नसीब न हुआ कि वह हदीस सुनतीं।

---

१ अनिवार्य कर्तव्य २ यथाशक्ति।

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन साहब की बीवी में एक और सिफ़्त थी। बात-बात में गाली। ख्वाह गुस्से में, बच्चों से बात करने में, हर-हर लफ़्ज़ के बाद एक मोटी सी गाली ज़रूर शरीक हो गई। हुरमुज़ी की ज़बान भी माशाअल्लाह खूब आरास्त:[1] थी। छोटी लड़की जो गोद में थी उसकी ज़बान खुलने लगी थी। उसको गालियाँ तालीम दी जाती थीं और जो एक आध लफ़्ज़ उस मासूम बच्चे की ज़बान से निकल जाता था उससे बहुत खुश होती थीं।

साहबज़ादे का सिन अब चौदह बरस से कुछ ज़ाएद था। जिनके सील के कूँडे का तज़किर: पहले हो चुका है। ज़िला, जुगत, फ़ब्ती में ताक़[2] थे। उनकी शिकायत सबसे बड़ी यह थी कि यहाँ कनकौए का कहीं ज़िक्र न था और बग़ैर कनकौआ उड़ाये आप क्योंकर रह सकते थे। आख़िर आपने यह कारस्तानी की कि मिर्ज़ा साहब के दफ़्तर में से आपने एक गड्डी ट्रेसिंग पेपर की उड़ाई, और पैमायश करने की झण्डियों से एक झण्डी का बाँस जो उनकी कोन का था उसको काट के काँप-ठड्डे छीले। कई कनकौए तैयार हो गये। डोर के लिए अम्माँ की पेंचकें सत्यानास कीं। खुलासा यह कि उन्होंने अपने शुग़ल के लिए अच्छा खासा सामान तैयार कर लिया। पढ़ने-लिखने से कोई ग़रज़ न थी।

एक दिन आप कनकौआ उड़ा रहे थे। इत्तफ़ाक़ से कनकौआ टूट के एक ग़रीब किसान के खेत में जा गिरा। उस खेत में गेहूँ बोये हुए थे। आप बेतकल्लुफ़ खेत में घुस गए और ग़रीब किसान की मिहनत के सरसब्ज़ खेत को पामाल करते हुए कनकौआ उठा लाए। दो एक मर्तब: तो किसान चुप हो रहा लेकिन जब कई मर्तबा ऐसा इत्तफ़ाक़ हुआ तो उसने इन्जीनियर साहब (मिर्ज़ा आबिदहुसैन) से नालिश की। मिर्ज़ा साहब को तअज्जुब हुआ कि यहाँ कनकौआ कहाँ से आया। ग़रज़ कि वह कनकौआ मंगा के देखा गया। काग़ज़ मिर्ज़ा साहब ने पहचाना। निहायत जिज़बिज़ हुए[3]। अह्ल दफ़्तर पर सख्त ताकीद की यह साहबज़ादे दफ़्तर न जाने पायें और ट्रेसिंग पेपर अपने पास से मंगाके दफ़्तर में दाखिल किया।

साहबज़ादे में एक और आदत बद थी। इन्जीनियर साहब के बंगले के क़रीब एक सरकारी बाग़ था। उसकी निगरानी मिर्ज़ा साहब के ज़िम्मे थी। उसका ठेका साल के साल दिया जाता था। खुद मिर्ज़ा साहब के घर में मेवे और तरकारी बाज़ार से आती थी। या अगर बज़रूरत बाग़ से लिया गया तो उसके दाम ठेकेदार को दिये जाते थे। साहबज़ादे ने उस बाग़ से नारंगियाँ और अमरूद कच्चे-पक्के बेतकल्लुफ़ तोड़ना और खाना शुरू कर दिये। अक्सर ऐसा भी हुआ कि मियाँ ज़ाकिर ने उस

---

१ सजी-सवाँरी २ बोल बोलने, व्यंग करने में दक्ष ३ झुंझलाये।

चुराये हुए माल से चार पाँच नारंगियाँ और अमरूद अपनी अम्माँ जान को भी दिये। उन्होंने भी बग़ैर उसकी तहक़ीक़ और तफ़्तीश के कि यह कहाँ से लाता है नोश करना शुरू कर दीं। आख़िर उसकी भी शिकायत शुदः शुदः[१] इन्जीनियर साहब के गोश-गुज़ार[२] हुई। यह चोरी का मामला था। मिर्ज़ा साहब ने ज़ाकिर को बुलाकर सख़्त तम्बीह की। और मज़ीद तम्बीह के लिहाज़ से यह भी कह दिया कि अगर अबकी ऐसा हुआ तो मैं तुमको थाने पर भेज दूँगा। यह ख़बर मियाँ ज़ाकिर की माँ तक पहुँची। ऐ लीजिए क़ियामत आ गई। गोया किसी ने भिड़ के छत्ते को छेड़ दिया। कोई कोसना और गाली बाक़ी न रखी। कई दिन तक बड़बड़ाया कीं। है है थाने पर भेजने वाला ग़ारत हो। ऐ लो, बच्चे ने दो नारंगियाँ बाग़ से तोड़ लीं, उस पर बच्चा थाने पर भेजा जाता है। यह अज़ीज़दारी है। सच है इस वक़्त के अज़ीज़ यज़ीद[३] होते हैं।

आख़िर यहाँ तक कि मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी को बोलना पड़ा। धड़ाधड़ी की लड़ाई हुई।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी बेचारी लड़ना जानती ही न थीं मगर आख़िर इन्सान थीं कोई फ़िरिश्तः तो थीं नहीं। झूठी और बेतुकी बातों पर ख़्वामख़्वाह ग़ुस्सा आ ही जाता है।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी—भाभी आप भी क़ियामत करती हैं। यह तो कुछ ऐसी बुरा मानने की बात न थी जिस पर आप बेक़ुसूर बुरा भला कह रही हैं। लड़के ने सरकारी बाग़ से नारंगियाँ और अमरूद चुराए, इस पर अगर उन्होंने तम्बीह के लिए कुछ कहा तो क्या बेजा किया।

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी—बस इसी बात पर तो मेरे दिल में आग लगती है जब तुम चोरी का नाम लेती हो। चोरी कैसी? चचा का बाग़ समझ के लड़के ने दो फल तोड़ लिये तो इसमें क्या ऐब हो गया। यों रोज़ वहीं से फल-फलारी आया करती है। माशा अल्लाह घर भर खाता है तो कुछ नहीं।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी—बस यही तो आप समझती नहीं। हमारे घर में जो कुछ आता है मोल आता है।

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी—यह तो हमने कहीं नहीं सुना। घर के बाग़ में से फल-फलारी मोल आता है।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी—तो क्या हमारा बाग़ है यह?

---

१ धीरे-धीरे २ कानों में आई ३ ह० इमामहुसैन का क़ातिल।

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी—फिर किस का बाग़ है ?

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी—सरकारी बाग़ है।

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी—अच्छा वह सरकार का सही। सरकार ने तो दिया है तर-तरकारी खाने को।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी—सरकार से तनख़्वाह दी जाती है, भत्ता दिया जाता है। तर-तरकारी खाने को बाग़ नहीं दिये जाते। और दिये जायँ तो कहाँ-कहाँ दिये जायँ। आज यहाँ कल वहाँ। रोज़ जो बदली होती रहती है। बाग़ पर क्या मौक़ूफ़। लाखों रुपये की जायदाद, माल सरकारी, इनके हवाले रहती है। उसकी जो कुछ आमदनी आई वह सरकार में दी जाती है। मसलन यही बाग़ है। इसका ठेका साल के साल हो जाता है। ठेकेदार जो रुपया देता है वह सरकार में चला जाता है।

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी—हाँ, आधे-तिहाई का होगा।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी—तौबः करो। हम लोग सिवाए तनख़्वाह और भत्ते के एक हब्बा के गुनहगार नहीं होते। जिस तरह हमारी तनख़्वाह महीने-महीने सरकार से मिलती है, उसी तरह हम सरकारी माल का दाम-दाम सरकार को देते हैं। उसमें हमारा क्या हक़ है जो हम ले लें।

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी—अच्छा तो क्या फल-फलारी से भी गये गुज़रे ?

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी—हमारी क्या हक़ीक़त है। बड़े इंजीनियर साहब जब दौरे पर आते हैं, उनके लिए जो मेवा, तरकारी जाता है उसके दाम उनसे वसूल कर लिये जाते हैं और वह ख़ुशी से दे देते हैं।

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी—यह तो सब कहने की बातें हैं। बच्चे ने दो नारंगियाँ तोड़ लीं उस पर तूमार बाँधा। अभी भाई साहब या मियाँ बाक़र दो अमरूद तोड़ लेते तो उनका हाथ कौन पकड़ लेता। अच्छा वह सरकार ही का बाग़ है फिर क्या सरकार हर वक़्त देखा करती है।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी—भाभी फिर वही कहे जाती है। यह सच है, कोई हाथ न पकड़ लेता और न कोई हर वक़्त देखता रहता है। मगर ख़ुदा देखता है। यह तो खुली-खुली चोरी है। भला उनके दुश्मन क्यों चोरी करते। क्या ख़ुदा ने हमें पैसा नहीं दिया है जो हम मोल ले लेते।

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी—यह तो हमने यहीं आके सुना। ककड़ी के चोर की गरदन नहीं मारी जाती। फल-फलारी इसी लिए होता है जिसके हाथ लगा उसने तोड़ लिया। ऐ लो हमारे मैके में ख़ाला हमसाई के घर में बेरी का दरख़्त था।

हम और हमारी बहनें, लड़कियाँ थीं। खाला हमसाई दिन भर चिल्लाया करती थीं। और हम लोग दिन-दिन भर झोरा करते थे। एक दिन उन्होंने मुझे उसी बात पर कोसा था। दोपहर को वह तो सो गईं, मैंने मारे ढेलों के बेर का सुथराव कर दिया।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी—आपने बड़ा अच्छा काम किया। मगर वह खाला हमसाई की बेरी थी। वह चीख़-पीट के चुप हो रही होंगी और यहाँ पाँच करेलों के लिए अगले साल एक शख़्स को दो महीने की क़ैद हो गई। यह सरकारी माल है। इसे कोई हाथ नहीं लगा सकता।

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी—अच्छा बीवी, अब तो हम तुम्हारे बस में हैं। चाहे क़ैद करवाओ, चाहे फाँसी दिलवाओ। तुम यहाँ की हाकिम हो, जो जी चाहे करो। हम तो ख़तावार बन्दे हैं।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी—अच्छा तो बस। अब इस ज़िक्र को जाने दीजिये, आपका मलाल बढ़ता जाता है और जो असल बात है वह आप समझती नहीं और बेफ़ायदे ताने देती हैं।

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी—ताने सहने की तो मेरी आदत नहीं है। और समझ को जो तुमने कहा, बेशक समझ तो मेरी उलटी है। सीधी समझ तो आजकल की छोकरियों की है और हज़ार बात की एक बात तो यह है कि समझ उसी की ठीक होती है जिसके पास चार पैसे होते हैं। मुफ़्लिसी में आई अक़्ल जाती रहती है। अगर अक़्ल ठीक होती तो इस बुढ़ापे में अपना शहर, घर-बार छोड़के इस परदेस में पराए घरों पर क्यों आके पड़ते और लोगों की जूतियाँ क्यों खाते।

उस दिन खराश तक़रीर[1] के हर-हर लफ़्ज़ ने बेचारी मासूम-सिफ़्त[2] मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी के दिल पर नश्तर का काम किया। मगर बेचारी ने सब्र किया और कुछ जवाब न दिया। मगर यह क़ायदा है कि जो लोग किसी का दिल दुखाने के लिए कुछ कहते हैं और जब यह मालूम होता है कि दूसरे शख़्स पर उसका कुछ असर नहीं होता तो उन्हें और ग़ुस्सा आता है। इस तक़रीर के बाद मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी मुन्तज़िर थीं कि मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी ज़रूर कुछ बोलेंगी। मगर वह बेचारी लहू के घूंट पी के चुप हो रहीं। इस पर मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी का ग़ुस्सा और बढ़ा। इस मौक़े पर एक और नाशुदनी वाक़िअः[3] हुआ।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन के एक दोस्त ने उनको कई टोकरे अमरूद और नारंगियों के और उसके साथ और कई क़िस्म का मेवा था, तोहफ़े के तौर पर भेजे थे। मिर्ज़ा साहब ने महज़ अपनी सादःदिली से या बतौर तलाफ़ी-माफ़ात[4] या बतौर

---

१ कठोर वचन २ निष्पाप स्वभाव ३ अनहोनी घटना ४ बीती को भुलाने के लिए।

मेहमान-नवाज़ी-दिलजोई वह सब टोकरे बिजिन्सिही मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी के पास भेज दिये। सूरत वाक़िअ: की यह हुई कि जब यह टोकरे मेवे के आये, ज़ाकिर, मिर्ज़ा साहब के पास चुपका ग़रीब बना हुआ था। मिर्ज़ा साहब के दिल में यह ख़याल आया कि मैंने ज़ाकिर को उस दिन जो तम्बीह की थी मुमकिन है वह किसी क़द्र ज़रूरत से ज़्याद: हो। इसलिए कि ज़ाकिर की अभी इतनी अक़्ल कहाँ कि वह प्राइवेट और पब्लिक प्रापर्टी (यानी माल ज़ाती और माल सरकारी) की हक़ीक़त को समझ सके। मुमकिन है कि उसने मेरा माल समझ के मेवा तोड़ा हो। अगर्चे उस दिन की चश्मनुमाई[1] मेरी बेजा न थी और इस ख़याल के साथ ट्रेसिंग पेपर और कनकौवे बनाने का वाक़िअ: याद आया, और फिर उस किसान की फ़र्याद; मगर इन सब उमूर से क़ता नज़र[2] करके आख़िरी तम्बीह की सख़्ती पर मिर्ज़ा साहब ने अपनी करीमुन्नफ़्सी[3] से अपनी ज़ात को मुल्ज़िम फ़र्ज़ कर लिया। इनको क्या मालूम था कि घर में वाल्द: ग़ुस्से में भरी बैठी हैं।

जिस वक़्त मिर्ज़ा साहब ने यह टोकरे ज़ाकिर को इनायत किये उसी वक़्त एक मुख़्तसर सा लेक्चर भी दिया। जिससे ज़ाकिर की तशफ़्फ़ी और तसल्ली कमा-हक़्क़हू[4] हो गई।

मिर्ज़ा साहब के लेक्चर का मज़मून ग़ालिबन यह होगा:—

देखो बेटा! उस दिन जो हमने तुमको तम्बीह की थी, उसका सबब यह था कि वह बाग़ माल सरकारी है और हम उसकी हिफ़ाज़त के लिए मुक़र्रर हैं और उसी की तनख़्वाह पाते हैं। यह हमें हरगिज़ गवारा न होगा और ज़रूर है कि तुम भी इसको पसन्द न करोगे कि जो चीज़ तुम्हारे सिपुर्द की जाय उसमें से ख़ुद सर्फ़ करो या किसी और को सर्फ़ करने दो। आज यह टोकरे मेवे के हमारे एक दोस्त ने हमको भेजे हैं। यह सब टोकरे हम तुमको दिये देते हैं। अब यह माल तुम्हारा हो गया। इसमें से जिस क़दर जी चाहे ख़ुद खाओ या किसी को दो, तुमको इख़्तियार है। यह तसल्ली देने वाली तक़रीर और फिर उसके साथ में टोकरे, विलायती नारंगियों और बड़े अमरूदों से भरे हुए; मुमकिन न था कि ज़ाकिर के दिल में किसी क़िस्म की आज़र्दगी[5] का शोब:[6] भी बाक़ी रहता।

जब मिर्ज़ा साहब तक़रीर ख़त्म कर चुके और मियाँ ज़ाकिर को यक़ीन हो गया कि यह सब के सब टोकरे नारंगियों और अमरूदों के उनका माल है, पहले तो यह अन्दाज़ किया कि इनको क्योंकर यहाँ से उठा ले जाऊँ। मगर यह उनकी ताक़त

१ आँखे टेढ़ी करना २ दृष्टि हटाकर ३ नेकदिली ४ जैसा चाहिए वैसा ५ खिन्नता ६ लेशमात्र।

से बाहर था। फिर दाहिने बायें नज़र करके देखा कि अगर कोई ऐसा आदमी मिले जो इन सबको उठाके मेरे साथ ले चले। उस वक़्त कोई नज़र न आया। आखिर उनकी अक़्ल ने यह फ़ैसला किया कि इनमें से थोड़ी नारंगियाँ और अमरूद हाथ में उठा के चलते हो। यह ख़याल करके फिर यह टोकरे तो किसी न किसी तरह घर में पहुँच ही जायँगे, और अगर पहुँचे भी तो वहाँ जाके हिस्सारसदी बट जायँगे, इससे अपना हिस्सा पहले ही क्यों न ले लो। उन्होंने सात-आठ बड़ी-बड़ी नारंगियाँ और चार-पाँच अमरूद जेबों में भर लिये और कुछ हाथ में ले के घर की तरफ़ रवानः हुए और एक नारंगी रास्ते में छील डाली। जब यह घर के अन्दर दाखिल हुए हैं तो कई फाकें उसकी नोश फ़रमा चुके थे। इन बेचारे को क्या मालूम था कि अम्मा जान गुस्से में भरी बैठी हैं। ज्यों हीं यह घर में गए और इनकी अम्मा ने अमरूद और नारंगियाँ इनके हाथ में देखीं, आग बबूला हो गईं और ज़ाकिर को मुँह ही मुँह खूब कुचला। वह बेचारा कहता रहा कि अरे सुनो तो, मुझे चचाजान ने यह दिये हैं। उन्होंने कुछ न सुना। बराबर कुचल रही हैं। आखिर मिर्ज़ा आबिद-हुसैन की बीबी ने बड़ी मुश्किलों से छुड़ाया और जिस क़दर नारंगियाँ और अमरूद उनको मिले उनको जूतियों के नीचे कुचल के मल डाला। उड़ जायँ यह नारंगियाँ, ग़ारत हों यह नारंगियाँ। खाने वाला मरे। खाने वाले को हैज़ा खाये। मुवा कैसा मकर-मकर खा रहा था। अभी उस दिन जूतियाँ खा चुका है, बेद (बेत) खा चुका, क़ैद-फ़रंग[1] भुगत चुका। मुवा बेग़ैरत ! फिर वही नारंगियाँ, वही अमरूद ! ऐसे खाने से मुई बुरी चीज़ खाई होती।

मियाँ ज़ाकिर जो पिट-पिटा के अलाहिदः खड़े हुए तो वह अपनी हाँक बोल रहे हैं।

वाह मुझे तो चचाजान ने ख़ुद दी थीं। मुझे तो उन्होंने तीन टोकरे अमरूदों और नारंगियों के दिये हैं। सब बाहर रखे हैं।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी-बच्चे सब उनकी ख़सलत से वाक़िफ़ थे कि जब वह किसी बच्चे पर ख़फ़ा होते हैं तो ज़रूर है कि वह दूसरे वक़्त उसकी दिलजोई[2] करें। वह अस्ल रूदाद को समझ गईं। लेकिन ज़ाकिर की माँ का ग़ुस्सा किसी तरह फ़र्द नहीं होता। कोसने पर कोसने और गालियाँ पर गालियाँ दिए चली जाती हैं। मुँह खोल दिया है और आखें और दोनों कान बन्द कर लिये हैं। न कुछ देखती हैं न कुछ सुनती हैं। अपनी ज़टल हाँक रही हैं। जब इस चीख़-चाख़ और गाली-गलौज और कोसमकाट को बहुत देर हो गई तो आखिर मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी को बोलना पड़ा।

---

१ अंग्रेज़ी क़ैदखाना २ तसल्ली।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी—भाभी आप ख्वाहमख्वाह चीख रही हैं। सरीहन ज़ाकिर कहे जाता है कि मुझको चचाजान ने नारंगियाँ दी हैं। और आप बेफ़ायदा उस पर भी खफ़ा होती हैं और हम लोगों को भी जो जी में आता है कह रही हैं। खैर हम लोगों को जो चाहे कहिए। हम तो कुछ नहीं कह सकते। आप बड़ी हैं। मगर बच्चे को तो बेगुनाह न कोसिए।

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी इसी की राह देख रही थीं कि कुछ बोलें तो लड़ाई के सिलसिले को अच्छी तरह तूल दूँ।

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी—बीवी हटो। तुम्हारा इसमें क्या दख़ल है। हम अपने बच्चों को नसीहत करते हैं, तुम्हें क्या ? तुम कौन हो ?

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी—मगर क़ुसूर माफ़ कीजिएगा। यह नसीहत तो बेजा है, इसलिए कि जब वह कहे जाता है कि चचा ने मुझको तीन टोकरे नारंगियों और अमरूदों के दिये हैं तो उसने क़ुसूर ही क्या किया है जिस पर आप ने उसको बेकार मारा भी और अब कोस भी रही हैं।

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी—बीवी हटो। उन्होंने लाख दी थीं। इसने क्यों लीं। उस दिन की घुड़कियाँ भूल गया। जेलखाने जाना भूल गया, मुआ बेग़ैरत।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी—यह आप बेकार कहती हैं। उन्होंने उस दिन अपना बच्चा समझ के तम्बीह के लिए कुछ कहा था। इस पर इतना बुरा माना। आपको तो और खुश होना चाहिए कि हमारे बच्चे को नसीहत की और आज उन्होंने इस खयाल से कि शायद उस दिन की तम्बीह से उसको रंज होगा कहीं से मेवे के टोकरे आए होंगे उसको दे दिये। इसमें कौन सी बुराई की ?

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी—तुम लोगों की वह मसल है कि सर पर जूती और मुँह में रोटी। उस दिन तो ज़लील कर दिया और आज नारंगियाँ देने बैठे हैं। मुवा बेग़ैरत था ना। उसने खुशी-खुशी ले लीं। मैं तो ऐसी नारंगियों को आग लगा देती। भले आदमी को एक बात और भले घोड़े को एक चाबुक।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी—अभी आप ही उस दिन कह रही थीं कि मेरे दिल में बात नहीं रहती। मगर आज आपकी बातों से मालूम होता है कि आप ज़रा-ज़रा सी बात में गिरह बाँध रखती हैं। अच्छा बस अब जाने दीजिए।

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी—तो मैं तुम्हें कुछ कहती हूँ। मगर उस मुए का जब तक ढाई चुल्लू लहू न पी लूंगी मुझे चैन न आएगा। उसने नारंगियाँ क्यों लीं। जिन नारंगियों के कारन इतनी ज़िल्लत उठाई, जूतियाँ खाईं, वही नारंगियाँ फिर खाने लगा। मुआ कंगला, बेग़ैरत। यह मुआ है ही बेग़ैरत। यह क्या इसका

बावा भी बेग़ैरत है। जब तो मुआ बुढ़ापे में घर-वार छोड़के पराए टुकड़ों पर आके पड़ा हुआ है।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी—अफ़सोस मैं लाख चाहती हूँ कि न बोलूँ लेकिन आप बातें इस तरह की करती हैं कि बे-बोले रहा नहीं जाता। पराए टुकड़ों पर आके क्यों रुके। नौकरी में कोई ऐब नहीं। हम लोगों की मजाल क्या है जो किसी को टुकड़े खिलाएँगे, और दुनिया का कारखाना इसी तरह चलता है। एक के हीले से एक का फ़ायदा होता है। भाई साहब ने नौकरी के लिए कहा। यहाँ एक जगह खाली थी। उन्होंने नौकर रखवा दिया। इसमें तो कोई बुराई नहीं हुई।

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी—मुई नौकरी में नौकरी भी हो। पन्द्रह रुपये की नौकरी, उसके लिए तमाम उम्र का इहसान हो गया। वह अपने अज़ीज़ों ही का सही। इहसान तो उठाया। उम्र भर किसी के नमक की कंकड़ी के शर्मिन्द: नहीं हुए, इस बुढ़ापे में मुँह को कालक लगाना क्या फ़र्ज़ था। मैं तो उन्हीं को कहती हूँ तुमको कुछ नहीं कहती। इसमें तुम्हारा बुरा मानना बेकार है।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी ने देखा कि इनकी अक़्ल ठीक नहीं है। न यह उल्टी समझती हैं न सीधी। इनसे हुज्जत करना बेकार है। यह वहाँ से उठने के लिए बहाने ढूँढ़ रही हैं। इतने में बाक़र ने आवाज़ दी। अम्मा जान यहाँ आइये, यह उठ गईं। वह नेकबख़्त उनके उठ जाने के बाद भी बकती रहीं और ज़ाकिर तो मौक़ा पाके खिसक गया वर्ना ख़ूब ही कोब:कारी[१] होती।

बाक़र मिर्ज़ा आबिदहुसैन का बड़ा लड़का जो अभी अलीगढ़ कालेज से रमज़ान मुबारक की तातील में आया हुआ था, उसके कान इस क़िस्म की बातों से ना-आश्ना[२] थे। इसलिए कि वह अपने और अपने वतन असली के तर्ज़ मुआसिरत से बिलकुल नावाक़िफ़ था और इसलिए कि जबसे उसने होश संभाला मिर्ज़ा साहब बाहर रहे। घर में ख़ुदा के फ़ज़्ल से इस क़िस्म की गुफ़्तगू सुनी न थी। उसकी ख़सलतों में शाइस्तगी[३] पूरा असर कर चुकी थी। कालेज की तालीम और तर्बियत[४] ने मग़रबी निज़ाम इख़्लाक का पहला उसूल "जिओ और जीने दो" अमली तरीक़ों से उसके दिलनशीं[५] कर दिया था। उस तरीक़:-तहज़ीब का उसे मल्क:[६] हो गया था जिसमें यह सिखाया जाता है कि 'दियानत[७] बेहतरीन मसलहत है'। उसने आँख खोल-खोलकर रास्तगी[८] और हक़पसन्दी[९] की ज़िन्द: मिसालें यानी अपने वाल्दैन को देखा। मदरसे में बाहमी मेलजोल और हमदर्दी के अक्सर लेक्चर सुने; अपने मुअल्लिमों और

---

१ कुटम्मस २ अपरिचित ३ सभ्यता ४ परवरिश ५ हृदयंगम ६ अभ्यास ७ ईमानदारी ८ सदाचार ९ सत्यप्रियता।

मुदर्रिसों में अक्सर को इन्सान की भलाई में दिलोजान से कोशिश करते हुए देखा। इल्म की बरकत से हुक़ूक़ वाल्दैन और उसके साथ ही उनके आला दर्जे के इख़्लाक़ की अज़्मत उसके दिल में समा गई थी। बुग्ज़ व हस्द कुफ़रान नेअमत[1], और उसके मिस्ल और गुनाहाने कबीर[2] यानी वह गुनाह जो निज़ाम मुआसिरत को बातिल[3] और कल अदम[4] करने वाले हैं, उससे उसको ज़ाती तनफ़्फ़ुर[5] था। ताने-तिशने, गालियाँ, कोसने, बकना-बड़बड़ाना और उसी क़िस्म की और सिफ़ात से वह अजनबी था। अपनी माँ के साथ एक बेसग़ज़ी, बदज़बान और बेतुकी औरत को उलझते देखकर उसको इन्तिहा दर्जे का तैश आया। आखिर उसने अपनी माँ को बुलाके उस वाक़िए की असलियत को दरयाफ़्त किया। उससे मालूम हुआ कि सरासर क़ुसूर उसी औरत का है और वाल्दः उस मुआमले में महज़ बे ख़ता हैं जैसा कि उसको पहले ही यक़ीन था। उस मौक़े पर बाक़र और उसकी वाल्दा में जो बातें हुई वह लायक़ तहरीर हैं:—

बाक़र—मैंने इससे पहले कभी इस क़िस्म की बातें अपने घर में नहीं सुनीं। आप क्यों बेकार उसके साथ उलझती हैं। मैं ख़याल करता हूँ कि आपकी सेहत को इससे सख़्त ज़रर पहुँचेगा।

माँ—क्या करूँ बेटा। जब से यह आई हैं नाक में दम कर दिया है। न सीधी समझती हैं न उल्टी।

बाक़र—मैं तो हरगिज़ जाइज़ न रखता कि ऐसे लोग घर में रहें बल्कि वालिद से इस बाब में अर्ज़ करूँगा कि इनको फ़ौरन घर से निकाल दें।

माँ—तुम्हारे अब्बा ख़ुद परेशान हैं। मगर अज़ीज़दारी का वास्ता है। कुछ बनाए बन नहीं पड़ती।

बाक़र—मैं समझता हूँ कि जो लोग हमदर्दी की क़द्र न करें, उनसे किसी क़िस्म का सुलूक करना अपनी नेकी को ज़ायः करना है।

माँ—हाँ यह सच है मगर क्या किया जाय। आखिर हमें तो नेकी ही करना चाहिए। अब इस परदेस में इनको कहाँ निकाल दें।

बाक़र—अम्मा जान मैं उस दिल की नेकी का अन्दाज़ा नहीं कर सकता, जिसमें ऐसी बातें भरी हुई हैं, जो आपके मुँह से निकलती हैं। मगर मैं निहायत अदब के साथ आप से इख़्तिलाफ़ करता हूँ। किसी शख़्स के हुक़ूक़ से ज़ियादः उसकी रिआयत करना मेरे नज़दीक एक तरह की नाइंसाफ़ी है। आप इस मुआमले में फिर ग़ौर कीजिए। मुझे उम्मीद है कि काफ़ी ग़ौर के बाद आप मेरी राए से इत्तफ़ाक़ करेंगी। मुझे एक दिन के लिए इनका घर में रहना मुनासिब नहीं मालूम होता। और किसी

१ द्वेष-इर्ष्या-कृतघ्नता २ महापाप ३ व्यर्थ ४ मिटाने वाले ५ घृणा।

मसलहत से जिसको आप समझती हों, या अब्बाजान इनका घर में रहना ज़रूरी समझते हों, तो ज़रूर है मेरे अलाहिदः रहने का बन्दोबस्त कर दिया जाय। अगर्चे इन बेहूदगीयों का असर आप पर न पड़ सकेगा, मगर खान्दान के लोगों पर जो अभी कमसिन और नातजर्बेकार हैं, इसका बहुत बुरा असर पड़ेगा। मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी बात के पहलू को समझ गईं। बाक़रहुसैन बहुत दूर की बात कहता है। और उसकी तक़रीर का साफ़ मंशा है कि अगर यह घर में रहेंगी तो मैं हरगिज़ नहीं रहूँगा और अपने बीवी बच्चों समेत अलाहिदः हो जाऊँगा।

बाक़र—मुझे इस वजह से भी इनके साथ रहना मंज़ूर नहीं कि चार पाँच दिन का ज़िक्र है नादिर को यह गोद में खिला रही थीं। एक बेहूदा बात ज़बान से निकाली जिसको सुन के मेरी आँखें नीची हो गईं और उनको किसी क़िस्म की ग़ैरत न आई। बच्चे जो बातें बार-बार कानों से सुनते हैं उसी को दुहराने लगते हैं। मैं हरगिज़ गवारा न करूँगा कि नादिर की ज़बान गालियों पर खुले।

माँ—हाँ मुझे याद आया। यह इन लोगों की प्यार की बातें हैं।

बाक़र—मैं बाज़ आया ऐसे प्यार से। मैं तो ख्याल करता हूँ कि इन लोगों को गालियाँ देने और गालियाँ सुनने की आदत हो गई है। यह लोग बग़ैर इसके रह नहीं सकते। कोई नहीं है तो मासूम बच्चे को गालियाँ दे रहे हैं। आख़िर इसका अंजाम यह होगा कि जब बच्चे की ज़बान खुलेगी तो वह भी गालियाँ बकने लगेगा। मेरे किसी मुहज़्ज़ब[1] दोस्त की गोद में अगर मेरे लड़के ने कोई गाली ज़बान से निकाली तो मुझे निहायत ही हिजाब[2] होगा।

बाक़र के जवाब ऐसे माक़ूल और मुदल्लल[3] थे कि माँ को सिवाए इसके कि मुक़द्दमे को मिर्ज़ा आबिदहुसैन साहब के फ़ैसले पर महमूल करें[4], कुछ कहते न बन पड़ा।

शब को जब मिर्ज़ा साहब खाना खाने के लिए घर में तशरीफ़ लाए तो कुल वाक़िआत मिन व अन[5] उनसे बयान हुए। बाक़र की राए को मिर्ज़ा साहब ने बहुत पसन्द किया। दूसरे दिन मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन को नौकरी पर से बुलवा भेजा। निशेबो-फ़राज़[6] समझा के इस अम्र पर आमादा किया कि वह अपने बीवी बच्चों को उस जगह जहाँ वह मुतअय्यिन[7] थे, ले जायँ।

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन का जिस जगह तअय्युन[8] हुआ था वह हेडक्वार्टर से पचीस मील के फ़ासले पर था। उस जगह पर एक डाक बंगला था। उसी के शागिदपेशः[9] के मुत्तसिल[10] एक छोटा सा सायबान मुहर्रिर के रहने के लिए बना हुआ था। मकान

१ सभ्य २ लज्जा ३ तर्कपूण ४ भार छोड़ें ५ ज्यों के त्यों ६ ऊँचनीच ७ नियुक्त ८ नियुक्ति ९ नौकर-चाकरों १० पास।

से मिली हुई चौकीदार की कोठरी थी। थोड़ी दूर के फ़ासले से एक बारिक मज़दूरों के रहने के लिए बनी हुई थी।

इंजीनियर साहब ने मज़ीद इनायत से पचास रुपये की मंज़ूरी मुहर्रिर के मकान की मरम्मत और ज़रूरी तब्दीलियों के लिए करके तहवील सरकारी से वह रुपया मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन को दिलवाया।

यह एक ख़ास क़िस्म की अयानत थी जो मिर्ज़ा साहब ने अपनी नौकरी के ज़माने में बहुत कम की होगी। मिर्ज़ा साहब यह रुपया अपने पास से अदा करने पर बड़ी ख़ुशी से राज़ी हो जाते, मगर सरकारी मकान था, उसमें किसी क़िस्म के ज़ाती मसारिफ़ के यह मजाज़[1] न थे।

ख़ुलासा तक़रीर यह है कि मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी, लड़की और लड़का (यानी मियाँ ज़ाकिर) इस वाकिए के तीसरे-चौथे रोज़ इंजीनियर साहब के बंगले से रुख़्सत होके एक बैलगाड़ी में सवार होके रवाना हुए।

जिस दिन जाने की तैयारी हो रही थी उस दिन मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी ने सुबह से बकना और बड़बड़ाना शुरू किया—

१. आख़िर मियाँ से कहके निकलवा दिया ना। अब देखिए किस जँगले में जाके रहना पड़ता है। शेर खाता है या भेड़िये खाते हैं। इस बुढ़ापे में देखिए क्या लिखा पूरा होता है।

२. ऐ है लोगो! क्या बुरी आदत है। ज़रा सी बात हुई और फुस से मियाँ के कान में फूंक दी। जब आदमी एक जगह रहता-सहता है तो लड़ाई-भिड़ाई भी होती है। ऐसी बातें कोई मर्दों के मुँह पर रखता है? निकलवा दिया तो क्या हुआ? हमें पड़ रहने भर को जगह न मिलेगी? आदमी इतना भी न इतराए। गुरूर ख़ुदा को भी पसन्द नहीं। क्या हम मकान सर पर उठा ले जाते। और मकान भी मुआ मुफ़्त का। अंगरेज़ का बनवाया हुआ। कुछ किराया देना पड़ता है? ख़ैर कोई ख़फ़ा हो जाए हमारा ख़ुदा ख़फ़ा न हो। कोई न कोई जगह रहने को मिल ही जायगी। क्या मुर्दों को जगह ज़िन्दों को नहीं। परदेस का वास्ता। यहाँ दो आदमी मिल-जुल के रहते थे। दुःख बीमारी में सब तरह का आराम मिलता। मगर वह तो बाज़े लोगों को अकेले रहने की आदत है। दो से तीसरा आँख में ठीकरा, है-है क्या बुरी आदत है! ऐसे भी लोग होते हैं जिन को चार आदमियों की आबादी नहीं अच्छी लगती, आदम-बेज़ार। यह सब बातें मिर्ज़ा आबिदहुसैन की बीवी अपने कानों सुनती रहीं मगर एक कान गूंगा कर लिया, एक बहरा। ख़ुलासा यह कि मिर्ज़ा

१ अधिकारी।

फ़िदाहुसैन की बीवी सवार हो गईं। मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन को इस अलाहिदगी का ज़रूर मलाल हुआ। इस ख़याल से कि तनख़्वाह क़लील थी। मियाँ कुल इख़राजात के बार से सबुकदोश थे। सिर्फ़ अपने दम की फ़िक्र थी। अब सारे घर का खर्चा और वही पन्द्रह रुपये। मगर इन मसलहतों को उनकी बीवी क्या समझतीं थीं और अगर समझती भी थीं तो उनकी ज़बान कब मानती थी!

अलक़िस्सा मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन साहब ने अपने बीवी-बच्चों को उस मकान में उतारा। उस मकान को देख के बीवी बहुत घबराईं। एक दिन वह था कि इन्जीनियर साहब के बंगले को यह नाम रखती थीं। आय हाय! यह भी कोई मकान है जिसमें अंगनाई नहीं। कमरों में घुटे बैठे रहो। इस मकान में छोटी सी अंगनाई ज़रूर थी, मगर नीची छतें, तंग मकान, दरवाजे से झाँक के इधर-उधर देखा। कोसों तक का जंगल था। भला शहर के रहने वालों खुसूसन औरतों का ऐसी जगह क्या दिल लगता। कुछ दिन रहे गाड़ी पहुँची थी। सरेशाम तो बिल्कुल ही दम क़लक़ करने लगा[1]। रात को तीन बजे तक मारे खौफ़ के नींद न आई।

दूसरे दिन ज़िन्दगी का सहारा उसी तरह हुआ कि चौकीदार की जोरू मुंशी की बीवी से मिलने आई। उसने खूब घुल-मिल के बातें कीं, सौदे सुलफ़ का हाल भी उससे दरयाफ़्त किया। या यों चलिये कि आप ने कहीं उससे कहा कि मेरे पास पान नहीं। एक दो पैसे के पान मंगवाए। मालूम हुआ कि एक गाँव यहाँ से तीन चार कोस के फ़ासले पर है। वहीं से गेहूँ, चावल, दालें, नमक खरीद करके आता है। पान भी वहीं मिलते हैं। मगर बाज़ार के दिन गोश्त अठवारे में एक मर्तबा मिलता है, वह भी अगर आदमी वक़्त पर पहुँच जाय; नहीं तो बिक जाता है। इतने में मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन बाहर से आए। मक्का की जोरू घूँघट से मुँह छिपाए बाहर चली गई। मिर्ज़ा साहब अपनी बीवी की बद आदतों से वाक़िफ़ थे और मिर्ज़ा आबिदहुसैन के घर से निकलने का ग़ुस्सा उनके दिल में भरा हुआ था। मक्का की जोरू को देखते ही उस दिन की तस्वीर साफ़ उनकी आँखों में फिर गई जिस दिन मक्का की जोरू से फक्कड़ होती होगी। मगर उस वक़्त उन्होंने छेड़ना मुनासिब न जाना। बात दिल में लिये रहे। बाहर जाके दो एक मर्तबा खयाल आया कि मक्का को समझा दें कि अपनी जोरू को घर में न जाने दे। मगर कुछ कहते-सुनते न बन पड़ा। आखिर बात गई गुज़री हुई। दूसरे दिन मकान की मरम्मत के लिए मज़दूर लगाये। पर्दे की वजह से सख्त तकलीफ़ हुई। डाक बंगला ख़ाली पड़ा था। बीवी बच्चों को चन्दरोज़ के लिए उसी में उठा ले गए। यह बंगला बहुत सुथरा

१ व्याकुल होने लगा।

और ज़रूरियात के असबाब से आरास्ता था। बीच के हाल में दरी का फ़र्श था। दर्मियान में एक मेज़ लगी थी। चार पाँच कुर्सियाँ रखी थीं। पहलू के दोनों कमरों में बहुत ही उम्दः नेवाड़ी के पलंग लगे थे। किनारे एक मेज़ लगी थी। उस पर एक सन्दूक़्चः सिंगारदान मय आइने के रखा हुआ था। एक तश्तरी में साबुन रखा था। कंघी रखी थी। मेज़ के ख़ाने में कई सफ़ेद तौलिये रखे हुये थे।

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन की बीवी यह सामान देख के बहुत ख़ुश हुईं। मियाँ से कहने लगीं आख़िर जो तुम वहाँ कलकत्ते में पड़े हुए हो, यहीं आन के क्यों नहीं रहते।

मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन—यह हमारे रहने के लिए नहीं है। इसमें ख़ुद मिर्ज़ा साहब आके उतरते हैं या जब कोई अंगरेज़ दौरे पर आता है तो वह रहता है।

बीवी—आजकल तो बिलकुल ख़ाली पड़ा है। भाई साहब जब दौरे पर आएँगे, रात की रात सो रहेंगे। और अगर दो एक दिन रहेंगे तो क्या हर्ज है। जब अंगरेज़ कोई आने वाला होगा, बंगला ख़ाली कर देना। उसी घर में चले जायँगे। कोई हमेशा थोड़ा ही रहेगा। रात ही रात रह कर चला जायगा।

मियाँ—यहाँ तुम्हारा रहना मुनासिब नहीं। जो मकान रहने के लिए दिया गया है उसी में रहना चाहिए।

बीवी—तुम्हारे कहने से मुनासिब नहीं। अच्छा ख़ासा बंगला छोड़के वहाँ मुर्ग़ियों की ढाबली में जाके रहें।

मियाँ—मुर्ग़ियों की ढाबली हमारी तक़दीर में हो तो बंगले में हम क्योंकर रह सकते हैं?

बीवी—तुम रहो मुर्ग़ियों की ढाबली में। हम तो नहीं रहेंगे। देखें हमें कौन निकाल देता है। छोटे भइया का मिज़ाज इस तरह का नहीं। मैं ख़ूब जानती हूँ। बीवी उनकी हैं बिस की गाँठ। और एक वह मुआ फ़ितना बाक़र ठीक अपनी माँ पर पड़ा है। ना साहब। बाप इस तरह का नहीं। अगर उनका बस होता तो कभी हमको जुदा न होने देते। मगर ज़रा नेक आदमी हैं। बीवी से डरते हैं। जितने नेक आदमी हैं वह बीवियों से डरते हैं, बीवियों के कहे पर चलते हैं। और जितने मुए बद मर्द होते हैं वह बीवियों पर जूता तेज़ रखते हैं। इस बारे में मैं छोटे भइया को हरगिज़ बुरा नहीं कह सकती। जो चाहा छोटी भाभी ने किया। ज़रा चार पैसे हो गए तो इतराती हैं। वह दिन भूल गए जब दिन सुइयाँ भोंकती थीं तो रात को रोटी नसीब होती थी। सच है अपने दिन किसी को याद रहते हैं!

मियाँ—छोटी भाभी तो बिस की गाँठ नहीं। यह तुम्हारी ज़बान कहीं चैन से न रहने देगी। मैं सब तुम्हारी हरकतें सुन चका हूँ। बस अब उन बातों को

जाने दो। तुमने मुझको कहीं का न रखा। छोटे भइया ने जिस वक़्त मुझसे अलाहिदः होने को कहा है उस वक़्त उनकी आँखों में आँसू भर आए थे।

बीवी—मैं तो खुद ही कहती हूँ कि छोटे भइया का कोई क़ुसूर नहीं। जो किया बाक़र ने और बाक़र की माँ ने।

मियाँ—बाक़र तो ऐसा नेक लड़का है कि दुनिया जहान के ऐसे लड़के हों। माशा अल्लाह इस सिन में क्या लियाक़त पैदा की है।

सामने मियाँ ज़ाकिर बग़लों में हाथ दिये खड़े हैं। एक यह मरदूद लूँबड़ा इतना बड़ा हो गया है और बात करने की तमीज़ नहीं। मियाँ ज़ाकिर ने जो यह देखा कि अब्बा जान अम्मा से लड़ते-लड़ते अब मेरी तरफ़ ढुले हैं, चुपके से बाहर खिसक गए।

बीवी—वाह बड़े लूँबड़ा कहने वाले। तुमसे मैंने लाख दफ़ा कह दिया कि तुम मेरे बच्चों को हौंसा मत करो। जैसे उन्होंने पाल-पाल के बड़ा किया है। बाक़र की तारीफ़ें करते हो। ज़ाकिर में क्या बुराई। पढ़ना-लिखना तक़दीर से। बाक़र-पढ़ा क्या है ? वही गिट-पिट अंगरेज़ी कुछ पढ़ा हो मगर इतने सिन में वह ग़ुरूर है कि माज अल्लाह यह सारी बातें माँ की हैं। बाबा बेचारे तो जब घर में आते थे मुझे झुक झुक के सलाम करते थे। साहबज़ादे जो आए तो न सलाम अलैक न किसी से पूँछना न गछना। हाँ, अम्मा के कलेजे में बेशक घुसा रहता है।

मियाँ—बाक़र क्या जाने तुम कौन बला हो जो तुम्हें सलाम करता। बचपने से वह बाहर रहा। किसी अज़ीज़ कुनबे को उसने देखा होता तो वह जानता।

बीवी—अच्छा, वह मैं तो बदज़बान। मगर तुम अपनी ज़बान को देखो (तुम कौन बला हो !) तुम खुद बला, भूत, पलेत हो गे !

मियाँ—अच्छा, मैं ही सही। मैंने तो एक बात कही। बाक़र तुमको क्या जाने ?

बीवी—अच्छा इससे क्या है। तुम बाक़र की और उसकी माँ की ग़ुलामी करो। हम नहीं करते।

मियाँ—अगर हम अशरफ़[१] हैं तो ज़रूर बाक़र की और बाक़र की माँ बल्कि उनके घर के ग़ुलामों तक की ग़ुलामी करेंगे। छोटे भइया ने तो हमारे साथ वह इहसान किया है कि तमाम उम्र उस बारे में सर नहीं उठा सकते। एक तुम बे-इहसानी हो के छोटे भइया के बीवी-बच्चों से जलती हो।

बीवी—मुई पन्द्रह रुपल्ली की नौकरी के लिए तुम जूतियाँ खाओ, और किसी को क्या ग़रज़ है। हम तो यह खयाल करते हैं कि आखिर अज़ीज़ कुनबा होता

१ कुलीन, खान्दानी।

किस लिए है। एक से एक का काम निकलता है। दूसरे वह ऐसा इहसान ही क्या किया जिसके लिए तुम बिछे जाते हो। यही ना पन्द्रह रुपल्ली का नौकर करा दिया। फिर शहर छुड़वा दिया, घर छुड़वा दिया, बार छुड़वा दिया। और कुछ तनख़्वाह उन्हें अपनी गिरह से देनी पड़ती है? सरकार में एक इस्म[1] लगा दिया है। कुछ अपने पास से देते तो एक बात थी।

मियाँ—तुम तो बेमग़ज़ी[2] हो। अपने पास से जहाँ तक मक़्दूर[3] था दिया। पचास रुपये नक़द लखनऊ जाते वक़्त दिये थे। यहाँ इतने दिनों सारे घर का बोझ-बार उठाया और क्या कोई अपना घर लुटा देता है।

बीवी—तुम्हारी भी क्या बातें हैं। कभी कुछ कहते हो, कभी कुछ कहते हो। तुम तो कहते थे कि वह रुपये पढ़वाई के दिये थे। फिर उसका इहसान क्या?

मियाँ—लाहौल विला क़ूवत। क्या अक़्ल है। अरे पढ़वाई भी क्या कोई हक़ है। देने का एक बहाना था। और अगर पढ़वाई के नाम से देते तो मैं लेता? बच्चों के नाम से दिये थे इसलिए लेना पड़ा।

बीवी—अच्छा तो अगर बच्चों के नाम से दिये थे तो एक दिन के साठ दिन हैं। माशा अल्लाह उनके आगे भी तो लड़की है। जब लड़की की शादी होगी, हम भी एक चाला कर देंगे। ख़ुदा देगा सौ रुपये का जोड़ा पहना के घर भेजेंगे।

मियाँ—लड़की के चाले का क्यों ज़िक्र करती हो। यह क्यों नहीं कहतीं कि छोटे भइया को सात पार्चे का ख़िलअत[4] देंगे।

बीवी—फिर क्या हुआ। वह तुम से छोटे हैं। अगर उनको भी कुछ दोगे तो क्या इन्कार कर सकते हैं?

मियाँ—रोटी खाने को नसीब नहीं और छोटे भइया को सात पार्चे का ख़िलअत देंगे।

बीवी—तो क्या ख़ुदा को देते हुए देर लगती है?

मियाँ—तुम्हारे गुन ही ऐसे हैं कि ख़ुदा तुमको देगा।

बीवी—हाँ फिर हम तो बुरे हैं। अच्छा फिर अब कोई अच्छी सी ढूँढ़ लाओ। और उसे छोटी भाभी की लौंडीगरी में दे दो।

मियाँ—अच्छा, ख़ुलासा यह कि तुम इस बँगले में नहीं रहने पाओगी।

बीवी—फिर तुमने वही बात निकाली। हम तो तुम्हारी ज़िद से यहीं रहेंगे।

मियाँ—तुम इस तरह की बातें करती हो जैसे तुम्हारे बाप का मकान है या मेरे बाप का। हम तो यहीं रहेंगे, क्या ज़बरदस्ती है। झोटा पकड़ के बाहर निकाल दी जाओगी।

---

१ नाम चढ़वा दिया २ बुद्धिहीन ३ सामर्थ्य ४ भेंट में पोशाक।

बीवी—यह तुम हँसी-हँसी में बाप तक पहुँच जाते हो। तो अंगरेज़ हमारे बाप ठहरे और झोटा पकड़ के निकाली जायँ तुम्हारी अम्मा-बहनियाँ। बस मुझसे इस तरह के कलाम न करना। नहीं तो मुँह पीट लूँगी।

मियाँ—मैंने अपने बाप को भी कहा, इसमें बुरा नाहक़ मानती हो और मेरी अम्मा-बहनियाँ जब किसी के घर में ढई[1] देंगी तो ज़रूर निकाली जायँगी। बल्कि जिस तरह तुम कहती हो उसी तरह। और यह धमकी है कि मुँह पीट लूँगी, तुम्हारा मुँह दुखेगा। मेरा क्या नुक़सान है।

मियाँ की तक़रीर सुन के बीवी ऐसी खिसियानी हुई कि सचमुच उन्होंने दो-चार तमाँचे अपने मुँह पर लगाए और चीखना शुरू किया। मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन तो इन हरकतों से वाक़िफ़ थे। उनको कुछ ज़ियादः तअज्जुब नहीं हुआ मगर बाहर मक्का चौकीदार और कई मज़दूर जो बँगले के पास आम के दरख्त के नीचे चिलम उड़ा रहे थे, वह क्या समझे कि बँगले में साँप निकला है। अपने अपने लट्ठ संभाल के बँगले के बरामदे में आ खड़े हुए।

"मुंशी जी! क्या सरप[2] निकला है? ज़रा पर्दा कर दीजिये।" मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन ने सबको व लतायफ़ुलहियल[3] टाल दिया।

अलक़िस्सः बीवी अपनी ज़िद करके उस बँगले में रहीं और चार ही दिन में बँगले को हैसियत से बे-हैसियत कर दिया। जाबजा दीवारों पर पीक के छपक्के, दरी पर पतीलियों के पेंदों की स्याही के निशान, तेल के चकत्ते। दोनों पलँगों को लड़कों ने कूद-कूद के दो ही दिन में झूला कर दिया। सिंगारदान का शीशा चकनाचूर कर दिया। दरवाज़ों के कई शीशे तोड़ डाले। फ़र्राशी पंखा जो हाल में लगा था उसको बी हुरमुज़ी और मियाँ ज़ाकिर ने झूला बनाया। एक दिन वह पंखा टूट के गिरा। दोनों को सख्त चोट आई। कुर्सियों में तो शायद ही कोई बची हो। मेज़ों की वार्निश लबालब पानी के कटोरे रखने से जाबजा खराब हो गई। तौलिये सब के सब सालन भरे हाथ पोंछ पोंछ के फ़लीते कर दिये। ग़रज़ कि दस ही बारह दिन में डाक बँगला और उसके असबाब को बिलकुल तहस-नहस कर दिया। उसी ज़माने में बड़े इंजीनियर साहब दौरे पर आए। इस ज़रूरत से बँगले को जल्दी-जल्दी खाली करना पड़ा।

साहब ने आके बँगले का जो यह हाल देखा, बहुत ही नाखुश हुआ। मिर्ज़ा फ़िदा-हुसैन को बुलवाके बहुत कुछ सख्त व सुस्त कहा। दस रुपया जुर्माना किया। और मिर्ज़ा आबिदहुसैन साहब को एक चिट्ठी उनकी शिकायत की लिख भेजी। उसका

---

१ धरना २ सर्प, साँप ३ बहाने बनाकर।

मज़मून यह था कि मुहर्रिर जो आपने नौकर रखा है, सख्त नालायक़ है। मालूम होता है कि उसने अपने ख़ानदान को डाकबँगले में लाके रखा है। इस वजह से बँगला और बँगले का असबाब बिलकुल ख़राब हो गया है। हमने फ़िलहाल दस रुपया जुर्माना मुंशी पर किया और आइन्दः अगर इस क़िस्म का क़ुसूर उससे सरज़द होगा[1] तो उसको मौक़ूफ़[2] कर देंगे। इत्तलाअन आप को तहरीर किया गया।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन को उस चिट्ठी के देखने से जिस क़द्र मलाल हुआ, उसका अन्दाज़ः नहीं हो सकता।

इस वाक़िए के बाद मियाँ-बीवी में क़ियामत की जंग हुई मगर उस तफ़्सील को ब लिहाज़ तूल क़लम-अन्दाज़ करते हैं।

मक्का की जोरू से घर के काम-काज में बहुत मदद मिलती थी। आटा भी वही पीस देती थी। उसका शौहर मक्का सौदा सुल्फ़ ला देता था मगर उससे भी आखिर एक दिन ख़ूब फक्कड़ हुई। मक्का ने अपनी जोरू को उनके घर में आने-जाने को मना कर दिया।

इस असना में मुहर्रम क़रीब आ गया था। मुहर्रम से पहले मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन ने एवज़ी दे के एक महीने की रुख्सत ली। बीवी बच्चों को घर पहुँचाया। आप जहाँ पढ़वाई पर जाते थे वहाँ गए और वहाँ से पलट करके फिर अपनी नौकरी पर वापिस आए। इसके बाद मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन एक अर्से तक मुलाज़िम रहे मगर बीवी को बुलाने का नाम न लिया। अगर्चे तरह-तरह की तकलीफ़ें थीं। मगर यह सब उन्होंने गवारा कीं। सख्ती झेल गये। आदमी कारगर साबित हुए। इसलिए वक़्तन फ़वक़्तन[3] तरक़्क़ी होती रही। आख़िर पचास रुपये के सब ओवरसियर हो गये।

ज़ाकिर को होनहार देखकर मिर्ज़ा साहब ने रख लिया था। लड़का तर्बियत-पज़ीर[4] था। चन्द रोज़ के बाद कुछ थोड़ा पढ़-लिख के ठेकेदारी का काम करने लगा। जवान होते-होते बहुत सा रुपया कमाया। मिर्ज़ा साहब की सुहबत की बरकत से अगर्चे यह खानदान बहुत ही तबाह था मगर बालाख़र कुछ न कुछ दुरुस्ती हाल हो ही गई।

जिस ज़माने में मिर्ज़ा साहब पर मुक़द्दमा क़ाइम हुआ था, मिर्ज़ा फ़िदाहुसैन ने हक़ क़राबत[5] ख़ूब अदा किया। बेचारे ज़मीन के गज़ बन गए थे। उस ख़ुश-सलीक़गी[6] से पैरवी की कि आखिर मिर्ज़ा साहब फ़तहयाब हुए और मुफ़्सिदों[7] को जेलखाना हो गया।

---

१ घटित होगा २ बर्ख़ास्त ३ समय-समय पर ४ सुधार अंगीकार करने वाला ५ सम्बन्धी का कर्त्तव्य ६ अच्छे ढंग से ७ उपद्रवियों।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन साहब जब अवध के एक ज़िले में पहले-पहले मुलाज़िम होके गए, सराँ में उतरे, साहब से मुलाक़ात की। कार-सरकारी सिपुर्द हुआ। इस अर्से में उस बस्ती के बहुत से लोग उनको पहचानने लगे। वजह इसकी यह थी कि छोटी बस्तियों में बनिस्बत बड़े शहरों के बहुत जल्द शुहरत हो जाती है। दो एक साहब शरीफ़-सूरत उस बस्ती के रहने वाले, जो अपने ज़ाती मुनाफ़े के बाब में बड़े ख़ुश-फ़िक्र[1] और दूरन्देश होते हैं, इनसे सराँ में आके मिले। ऐसे लोगों को ख़्वाहमख़्वाह फ़िक्रें रहती हैं कि फलाँ उहदे पर कौन शख़्स मुक़र्रर हुआ। किसकी तब्दीली हुई, किसकी तरक़्क़ी हुई। किसका तनज़्ज़ुल हुआ। ग़रज़ कि यह लोग ज़िन्दः गज़ट होते हैं और लुत्फ़ यह कि न कहीं नौकर न चाकर। न कोई ज़ाती मुआमिला-मुक़द्दमा। मगर इन बातों से बड़े-बड़े मतलब निकाल लेते हैं। हुक्कामरसी[2] अहल-अमले से हस्ब हैसियत रस्मोराह। यह खालिस औसाफ़[3] हैं जो मिन्जुमला फ़ज़ाइल[4] समझे जाते हैं।

मिर्ज़ा साहब से जो लोग आके मिले उनमें से एक साहब फ़िदवी मियाँ ख़ान्दानी रईस उस बस्ती के थे, मगर यह शरफ़[5] इन्क़लाबे रोज़गार[6] या मौरूसी ग़फ़लत[7] और इस्राफ़[8] या ख़ुद उनकी उलुल-अज़्मी[9] या शुरकाए तनाज़ो क़ानूनी[10] या कारिन्दों की चालाकी की वजह से अब सिर्फ़ इज़ाफ़ी[11] रह गया था। अगर्चे ज़माने मासबक़[12] में एक बुज़ुर्ग ज़मींदार थे, मगर अब सिर्फ़ बराए नाम एक मौज़े का नम्बर आप के नाम से रह गया था। अगर्चे इस पर भी तसर्रुफ़ मालिकाना उनके एक कारिन्दे मुसम्मी शिवरतन का था जो कि दर हक़ीक़त उंसी घर का साख़्तः परदाख़्तः[13] था मगर अब ख़ुद उनसे बदर्जहा मुतमव्वल[14] और उनकी कुल मौरूसी जायदाद का असली मालिक था। मगर बलिहाज़ इख़लाक़ ज़ाहिरी जो कि अक्सर किसी मसलहत पर होता है, वह भी अभी तक इनसे ब-मुरआत[15] पेश आता था। असल वजह यह थी कि मौज़ा सहजनपूर जहाँ का वह असली बाशिन्दः था उसी के यह बरायनाम नम्बरदार थे, तहसील वसूल शिवरतन के पास थी। मगर रिआया अभी तक उन्हीं का रोब-दाब मानती थी। और असामियों से दबा के कभी-कभी कुछ उन्हें भी वसूल हो जाया करता था। एक और वजह शिवरतन की उनसे दबने की यह थी कि शिवरतन एक छोटे दर्जे का आदमी था और बस्ती के लोग बसबब

१ काम बना लेने वाले २ हाकिमों में पैठ ३ सिफ़तें, गुण ४ ख़ूबियाँ ५ भद्र पुरुष ६ रोज़गारी उलट-पलट ७ पैतृक शिथिलता ८ फ़िज़ूलख़र्ची ९ ठाट-बाट १० साझेदारों-पट्टीदारों की मुकद्दमेबाज़ी ११ बराए नाम १२ बीते ज़माने में १३ बनाया हुआ १४ सम्पन्न १५ लिहाज़ से।

उनकी क़दीमी रियासत के इनको मानते थे और उसी ख़ुसूसियत के लिहाज़ से हुक्काम और अहल-अमल तक उनकी रसाई ब सहूलत[१] हो सकती थी। शिवरतन को उनसे बहुत मदद मिलती थी। इसलिए अक्सर मुक़द्दमात में सअी-सिफ़ारिश, कहना, सुनना जो कुछ होता था वह उन्हीं के ज़रिये से होता था। यह दवादविश[२], तमल्लुक़[३] व चापलूसी जो अक्सर मौक़ों पर करना पड़ती थी, उसका तमाम फ़ायदा शिवरतन को हासिल होता था। आपका मंशा सिर्फ़ इस क़द्र था कि लोग यह समझें कि फ़िदवी इलाक़:दार हैं, और फ़िदवी के क़ब्ज़े में अभी कुल मौज़े हैं और शिवरतन सिर्फ़ एक कारिन्द: है। सिर्फ़ इस क़द्र तफ़ाख़ुर के तहफ़्फ़ुज़ के[४] वास्ते आप हर तरह की मशक़्क़तें और सऊबतें[५] गवारा करते थे। बस्ती में जिस क़द्र मकानात आपके बुज़ुर्गों के थे, वह अब शिवरतन के क़ब्ज़े में थे और उनमें अक्सर अहलअम्ल: रहा करते थे। उसका किराया शिवरतन माह ब माह वसूल कर लेता था। अज़ वसके किराया लेना आप अपनी शान के ख़िलाफ़ समझते थे। लिहाज़: अगर कभी उसका ज़िक्र किसी मौक़े पर आया तो आप उससे तहाशी[६] फ़र्माते थे और शिवरतन को ग़ाइबाना कलिमात ना-मुलायम[७] से याद फ़र्माते थे।

इस्म मुबारक आपका फ़िदाअली था। मगर इस नाम से बहुत कम लोग वाक़िफ़ थे। लोग आपको अक्सर फ़िदवी मियाँ के नाम से जानते थे। आपका ख़ुद यह बयान था कि फ़िदवी तख़ल्लुस है। मगर असल वजह यह थी कि इब्तिदाए साल में आप इस लफ़्ज़ को अपनी निस्बत बहुत इस्तेमाल फ़र्माते थे—मसलन "फ़िदवी हाज़िर हुआ था" और "फ़िदवी ग़ाएब हुआ" और "अर्ज़ फ़िदवी की यह है" "फ़िदवी आपका क़दीमी नियाज़मन्द है"। इस लफ़्ज़ के कसरत-इस्तेमाल की वजह से लोगों ने आपका नाम फ़िदवी मियाँ रख लिया। पहले ग़ाइबाना[८] और फिर बिल्मुशाफ़ा[९] इसी इस्म से मौसूम[१०] हो गये। आपने मसलहतन यही तख़ल्लुस अपना क़रार दे लिया। क्योंकि आपके तख़ल्लुस की (जो अब किसी को याद भी न था) शुहरत न होने पाई कि यह लक़ब मशहूर हो गया। ऐसी हालत में उस तख़ल्लुस को बट्टा खाते में डालकर दम-नक़द यह तख़ल्लुस इख़्तियार कर लेना अैन मसलहत थी।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन के तक़रीर की ख़बर ज़िले में उनके आने से पहले आपको मिल गई थी। जिस दिन आप तशरीफ़ लाए, उसके दूसरे ही दिन आप सरा में पहुँच गये। फिर मुलाक़ात कर लेना कितनी बड़ी बात थी।

---

१ सरलता से पैठ २ दौड़धूप ३ लल्लोचप्पो ४ गौरव को क़ाइम रखने के लिए ५ मिहनत व कठिनाइयाँ ६ विमुखता ७ अनुचित सम्बोधनों से ८ परोक्ष ९ प्रत्यक्ष १० नामवर।

मिर्ज़ा साहब चार बजे के बाद सरा में आके अभी बैठे ही थे कि आप नाज़िल हुए और भटियारी से दरयाफ़्त करके बेतकल्लुफ़ मिर्ज़ा साहब के पास चले आये।

फ़िदवी—फ़िदवी आदाब अर्ज़ करता है।

मिर्ज़ा साहब—तस्लीम।

मिर्ज़ा साहब बहुत देराश्ना[1] थे। मगर इसका यह मतलब नहीं है कि वज़ा तहज़ीब के पाबन्द न हों। जब एक शरीफ़ सूरत इस तरह तअर्रुफ़[2] करे तो उससे बेरुखी क्यों करें।

"आइये तशरीफ़ लाइए।"

उस वक़्त इत्तफ़ाक़ से भटियारा उस तरफ़ किसी ज़रूरत से आ निकला। उसने कहा—"फ़िदवी मियाँ सलाम।" इसी तरह कई शख्सों ने आप को सलाम किया, चलिए नाम बताने की भी ज़रूरत न हुई। मिर्ज़ा साहब को मालूम हो गया कि आप इस लक़ब[3] से मुलक़्क़ब[4] हैं। इस पर भी मिर्ज़ा साहब ने अज़राह इहतियात[5] इस्म मुबारक दरयाफ़्त किया।

फ़िदवी मियाँ—बस यही "फ़िदवी"।

मिर्ज़ा साहब—(किसी क़द्र तअज्जुब से) दुरुस्त।

फ़िदवी मियाँ—जी हाँ। वह असल हक़ीक़त यह है कि नाम तो मेरा फ़िदा-अली है। मगर फ़िदवी तखल्लुस है। यही ज़बाँज़द हर कस व नाकस हो गया[6]।

मिर्ज़ा साहब—बहुत मुबारक।

फ़िदवी मियाँ—आपकी तशरीफ़-आवरी[7] की खबर सुनके मैं बहुत मुश्ताक़[8] था कि आप से मिलूँ। इसलिए कि यहाँ हुक्काम और अह्ले अमलः में कोई साहब ऐसे नहीं हैं जो फ़िदवी को न जानते हों।

मिर्ज़ा साहब—मैं जानता हूँ कि अक्सर साहबों को इस क़िस्म का शौक़ होता है।

फ़िदवी मियाँ—जी हाँ। शौक़ क्या, एक लत सी हो गई है। आप जानिए यारबाशी में तो वह मज़ा है कि जहाँ इसका चस्का पड़ा, फिर नहीं छोड़ता।

मिर्ज़ा साहब—सही है, जिसको जिस बात का शौक़ हो जाय। अगर इसमें तज्ईअ औक़ात[9] भी हो मगर इन्सान से बमुश्किल तर्क हो सकता है।

मिर्ज़ा साहब के इन बलीग़ फ़िक़्रों[10] का मतलब या तो फ़िदवी मियाँ समझे नहीं या समझ-बूझ के तजाहुल आरिफ़ाना[11] फ़र्माया। इसलिए कि मिर्ज़ा साहब तो कुछ ऐसे खुर्रे थे भी नहीं। आप तो ऐसे-ऐसे हुक्काम और अहलकारों से मिल चुके थे जो

---

१ देर में पहचानने वाले २ परिचय ३ उपाधि, उपनाम ४ उपाधि से विभूषित ५ सावधानी के लिए ६ छोटे-बड़े सबकी जबान पर चढ़ गया ७ शुभागमन ८ उत्कण्ठित ९ समय नष्ट होना १० अलंकारिक वाक्यों ११ जान बूझकर अनजान बनना।

रुखाई में शहरें आफ़ाक़[१] थे और फ़िदवी को इस बात का फ़ख़्र था कि मिर्ज़ा साहब क्या चीज़ थे, जेम्स साहब जो बेहूदा मुलाक़ातों से इस क़द्र नाफ़िर[२] और हारिब[३] थे कि जो कोई बिला वजह उनकी मुलाक़ात को जाता था, डंडा लेके पीछे दौड़ते थे; उनसे भी फ़िदवी मियाँ मिल चुके थे। और जब तक वह ज़िले में रहे बराबर हर दोशम्बे को सलाम के लिए जाया किये। अला हाज़ल्क़ियास[४] डिप्टी तहव्वरहुसैन खाँ साहब जिन्होंने अपने बंगले पर तख़्ती लिखके लगा दी थी कि कोई मेरी मुलाक़ात को न आये, वहाँ भी फ़िदवी पहुँच गये। और आख़िर इस क़द्र रस्म बहम पहुँचाया कि उनका पेचवान पिया। उनके खासदान से पान खाया।

फ़िदवी मियाँ—(मिर्ज़ा आबिदहुसैन से) यहाँ सरा में तो आपको तकलीफ़ होगी ?

मिर्ज़ा साहब—जी हाँ। अभी कल तो आया हूँ। मकान तलाश करके उठ जाऊँगा।

फ़िदवी मियाँ—फ़िदवी के मकानात ला-तादाद ला-तुहसा[५] हैं। खाली पड़े हैं, जो पसन्द आए उसमें उठ चलिए।

मिर्ज़ा साहब—(किसी क़द्र तअम्मुल[६] के बाद) किस किराये के मकानात होंगे ?

फ़िदवी मियाँ—(मुस्करा के) आपको मालूम नहीं। देहात में इस बात का ऐब है।

मिर्ज़ा साहब—मगर मैं इसको मायूब[७] समझता हूँ कि बिला किराया किसी के मकान पर रहूँ।

फ़िदवी मियाँ—मगर जब किसी ग़ैर का मकान हो ना। मिर्ज़ा साहब इसका जवाब देने ही को थे कि मेरी आपकी कब की शनासाई[८] है, मगर इसी असना में उनसे एक और साहब मिलने को आ गए।

पंडित जानकीप्रसाद साहब उनके हम-मक्तब[९] दोस्त जो इस ज़िले में थानेदार थे, मिर्ज़ा साहब उनसे मुख़ातिब हो गए। फ़िदवी मियाँ से उनसे हस्ब मामूल बे-तकल्लुफ़ी[१०] की मुलाक़ात थी, बल्कि कुछ मज़ाक़ भी फ़ीमाबैन[११] होता था। मकान का तज़्किरः पंडित साहब के सामने भी हुआ। पंडित साहब ने भी यही कहा कि फ़िदवी मियाँ के कई मकान खाली हैं, कोई उनमें से पसन्द करके उठ जाइए। एक ओहदेदार पुलीस के कहने से मिर्ज़ा आबिदहुसैन को यह तो इत्मीनान हुआ कि फ़िदवी मियाँ क़ाबिल एतमाद शख़्स हैं।

मिर्ज़ा साहब—मगर आप फ़र्माते हैं कि मैं किराया न लूँगा।

---

१ लोकप्रसिद्ध २ घृणा करनेवाले ३ दूर भागनेवाले ४ इसी तरह ५ असंख्य-असीम ६ सोच-विचार ७ अशोभन, बुरा ८ जान-पहिचान ९ सहपाठी १० निस्संकोच ११ आपस में।

पंडित साहब—अच्छा उठ जाइए। हिसाबे दोस्ताँ दर-दिल[1] का मुआमिला हो जायगा।

मिर्ज़ा साहब इस मुअम्मः[2] को न समझे, मगर चुप हो रहे। इस असना में फ़िदवी मियाँ किसी ज़रूरत से उठ गए।

पंडित साहब ने असल हक़ीक़त मिर्ज़ा साहब के ज़ेहन-नशीन कर दी। मालूम हुआ कि मकान का असल मालिक शिवरतन है। वह आपके घर का कारिन्दः था। इसलिए आप उसको माले-ममलूक[3] समझ के अपना माल समझते हैं।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन—मगर यह तो कहिए कि यह हज़रत मेरे औक़ात में तो हारिज[4] न होंगे। क्योंकि आप जानते हैं, इस क़िस्म की मुलाक़ातों से घबराता हूँ।

पंडित साहब—कुछ ऐसे हारिज न होंगे। मकान मेरे देखे हुए हैं। उनमें से बड़ा मकान जो आजकल ख़ाली है, उसमें पहले तहसीलदार साहब रहते थे। आपकी क़िस्मत से उनकी तब्दीली हो गई। फ़ौरन ले लीजिए, नहीं तो कोई न कोई ले लेगा और आपको अफ़सोस होगा। इनके हारिज होने की यह सूरत है कि इस क़िस्म के लोग जो बहुत लोगों से मिलते रहते हैं, वह किसी क़द्र मिज़ाज-शुनास[5] हो जाते हैं। वह आयेंगे ज़रूर। ख़्वाह उनके मकान में रहिए, ख़्वाह न रहिए। मगर जब आप मुंह न लगायेंगे, दो चार मिनट ठहर के चले जाया करेंगे। आपका हरज ही क्या होगा। दूसरे एक फ़ायदा भी होता है। वह यह कि जिस चीज़ की ज़रूरत हो (मुस्करा के) ख़्वाह कैसी ही ज़रूरत क्यों न हो, यह मोहय्या कर देते हैं। और लुत्फ़ यह कि बकिफ़ायत। मिर्ज़ा साहब पंडित जी के इस मौक़े पर मुस्कराने से किसी क़द्र बदज़न हो गए थे मगर पंडित जी ने अपनी तक़रीर को इस तरह जारी रखा।

पंडित जी—मसलन अब हाल फ़िलहाल तो आपको घोड़े की ज़रूरत होगी, वह आपकी मारफ़त बहुत जल्द और किफ़ायत से मिल सकेगा। माहवारी ग़ल्ला, गुड़, घी, राब जिस शै की ज़रूरत होगी इनकी मारफ़त मिल जाया करेगी। असबाब ज़रूरी मिस्ल पलंग, मेज़, कुर्सियाँ, दरियाँ, बर्तन, बासन, यह सब इन ही से मंगवाइयेगा।

मिर्ज़ा साहब—मगर इन सबका मुआविज़ा क्या देना होगा?

पंडित साहब—कोई मुआविज़ा नहीं। सिर्फ़ वही चन्द मिनट हर्ज औक़ात जो उनके आने से होगा। या अगर कुछ कमीशन वग़ैरह लेते हों तो उसका इल्म नहीं।

मिर्ज़ा साहब—अच्छा। अगर कमीशन ले के उम्दः शै बहम पहुँचा देते हैं तो यह कुछ ऐसा मायूब नहीं।

पंडित जी—हाँ बस यही समझ लीजिए। मेरा जहाँ तक ख़याल है आपको उनकी ज़ात से कोई ज़रर नहीं पहुँच सकता। मुमकिन है कुछ फ़ायदा हो जाय।

---

१ दोस्तों का हिसाब दिल ही दिल में २ पहेली ३ सेवक की सम्पत्ति ४ समय तो बरबाद न करेंगे ५ स्वभाव के पारखी।

मिर्ज़ा साहब—बाहमी फ़ायदा-रसाई[१] तमद्दुन[२] का असली उसूल है। इसका मैं मुन्किर नहीं हूँ। मगर वह मुआमलात जिनमें तरफ़ैन से ग़ैर काफ़ी मुआवज़ः[३] पर कोई शै एक दूसरे की तरफ़ मुन्तक़िल की जाय या कोई काम किया जाय, उसको मैं नाजाइज़ समझता हूँ।

पंडित जी—यह दक़ीक़ मन्तिक़[४] तो मेरी फ़हम[५] से बाहर है। मेरे कहने का ख़ुलासा यह है कि मकान ले लीजिए। फिर जिस तरह चाहे उनसे मुआमिलत रखिएगा।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन—पंडित साहब असल अम्र तो यह है कि ऐसे शख़्स की मार्फ़त मकान लेना भी किसी क़द्र मस्लक-एहतियात[६] से दूर हैं। मगर आप फ़र्माते हैं कि और कोई मकान नहीं मिल सकता और असल मुआमिलः एक शख़्स सालस[७] से है कि जिसका नाम आपने लिया था ?

पंडित जी—शिवरतन !

मिर्ज़ा साहब—शिवरतन से लिहाज़ा मकान लिये लेता हूँ, लेकिन इनके इस अजीब इख़लाक़ की वजह से मुझे ख़्वामख़्वाह तअल्लुक़ ख़ातिर हो गया, लखनऊ जो कि मेरा वतन असली है वहाँ के आमियानः अतवार व औज़ार[८] से मुझे नफ़्रत है। मैं समझता था कि बाहर जाके ऐसे लोगों से दूर रहूँगा मगर यहाँ भी वही सामना हुआ।

पंडित जी—जी हाँ। क्या किया जाय। बाहमी मर्दमाँ बेवायद साख़्त[९]।

उसके बाद पंडित जी रुख़सत होने को थे कि फ़िदवी मियाँ फिर नाज़िल हो गये और आते ही कहा—पंडित जी ! फिर, मकान देख लीजिए।

मिर्ज़ा साहब ने फिर ज़रा तअम्मुल किया। लेकिन पंडित जी भी फ़िदवी के हमज़बान[१०] हो गए। ग़रज़ कि मिर्ज़ा साहब भी उठ खड़े हुए।

पंडित जी की टमटम सरा में मौजूद थी। मिर्ज़ा साहब और पंडित जी दाहिने-बाएँ और अक़ब में फ़िदवी मियाँ और एक हवलदार जो पंडित जी के साथ था बैठ गये। गाड़ी रवाना हुई। रास्ते में फ़िदवी मियाँ और हवलदार में बड़े तपाक से बातें होती जाती थीं। जिस क़द्र हवलदार पंडित जी की हमराही की वजह से लिहाज़ करता था उसी क़द्र फ़िदवी मियाँ बेबाक[११] थे।

असनाए राह में बिला मुबालिग़ः सौ दो सौ आदमियों ने फ़िदवी मियाँ को सलाम किया होगा।

फ़िदवी मियाँ सलाम ! फ़िदवी मियाँ सलाम। यह सदाएँ दस-दस बारह-बारह क़दम के फ़ासले से सुनायी देती थीं।

---

१ पारस्परिक लाभ की युक्ति　२ नागरिकता　३ बदले में　४ सूक्ष्म तर्क　५ समझ　६ सावधानी की राह　७ तीसरे व्यक्ति　८ सामान्य कोटि के लोगों के ढंग-तरीक़ों　९ ऐसे ही लोगों में मजबूरन गुज़र करनी है　१० स्वर में स्वर मिलाया　११ निःसंकोच।

सलामों की तरतीब यह थी कि जो मिला पहले उसने थानेदार साहब को सलाम किया। माथे पर हाथ रखके और बहुत मुअद्‌बाना[1] झुक के। यह अव्वल दर्जे का सलाम था। दूसरे दर्जे का सलाम मिर्ज़ा साहब को किया। मगर वह भी बिला सौत व सदा[2]। तीसरा सलाम इन लफ़्ज़ों के साथ हवलदार साहब सलाम। माथे पर अभी तक हाथ रहता था। चौथा सलाम आवाज़ बुलंद के साथ फ़िदवी मियाँ सलाम!

फ़िदवी मियाँ का जवाब भी ख़ुसूसियात के साथ होता था—भइया सलाम, महतो सलाम।

इस दर्मियान में कई देहाती रंडियों ने भी सलाम किया फ़िदवी मियाँ हर एक का नाम ले ले के सलाम का जवाब देते थे—बैबाजान सलाम, रसूलन सलाम।

हर सलाम के बाद फ़िदवी मियाँ मिज़ाज-पुर्सी को भी वाजिब समझते थे। और हर शख़्स के साथ तर्ज़पुर्सिश[3] में जिद्दत[4] होती थी।

गाड़ी उस मकान तक पहुँची जिसे देखना मंज़ूर था। वाक़ई मकान क़ाबिल रहने के था। ज़नाना मकान पुख़्ता, दो मंज़िलें। बाहर बैठने का मकान जिसे क़सबाती ज़बान में बैठक कहते हैं, निहायत ही माक़ूल और उसके सामने बड़ा सा अहाता था। उसमें एक तरफ़ कच्ची खपरैलें थीं, गाड़ी, घोड़े और साईस, ख़िदमतगार वग़ैरः के रहने के लिए। जाबजा कुछ दरख़्त मुख़्तलिफ़ क़िस्म के लगे हुए थे, मगर बहुत ही बेतुकेपन से। कुछ बेला-चंबेली के झुण्ड, कुछ मेंहदी की रविशें[5]। बाँस का फाटक लगा था। ग़रज़ कि मकान मिर्ज़ा साहब को पसन्द आया। शिवरतन भी उस मौक़े पर पहुँच गया था। एक स्याहफ़ाम[6] सा आदमी, धोती बँधी हुई। ऊदी छींट की मिरज़ई पहने। उसी छींट की दोहरी टोपी। पावों में चमड़ौदा जूता। गले में एक बटुवा पड़ा हुआ। यह आपका दरबारी लिबास था। क्योंकि उस वक़्त आप बराहे रास्त कचेहरी से तशरीफ़ लाये थे। थानेदार साहब और मिर्ज़ा साहब के आने की ख़बर सुनके दौड़े चले आये। शिवरतन से किराये के बारे में गुफ़्तगू हुई। उस मौक़े पर फ़िदवी मियाँ ज़रा टल गए। सात रुपया माहवार पर वह मकान ले लिया गया। और उसी शब को मिर्ज़ा साहब का असबाब-सफ़र वहाँ आ गया।

दो पलंग, तीन कुर्सियाँ, फ़िदवी मियाँ की सरकार से बिला तलब भेज दी गईं और तौअ़नोकर्हन[7] मिर्ज़ा साहब को रखना पड़ीं।

दरियाँ और क़ालीन मिर्ज़ा साहब के हमराह थे। खाना पकाने के बर्तन भी काफ़ी मौजूद थे। मकान की सफ़ाई और मुख़्तसर सामान की आरास्तगी में फ़िदवी मियाँ की दख़्लदर मा'क़लात[8] होती रही। ऐसे लोग जो हर किसी काम में ख़्वामख़्वाह

---

१ अदब के साथ २ बिना बोले-पुकारे ३ पूछने के ढंग में ४ नयापन ५ पंक्तियाँ, क्यारियाँ ६ काले रंग का ७ विवश होकर ८ अनधिकार दखल देना।

दखील हो जाते हैं, उनमें एक खास वस्फ़ होता है जिसे कस्रें नफ़्सी[१] के सिवा और क्या कहा जाय। यानी इस क़िस्म के लोगों को दूसरों की इख़्तिलाफ़ से चन्दाँ मलाल भी नहीं; अगर्चे वह इख़्तिलाफ़ बुरे तेवरों से किया जाय। मसलन अगर उनकी राय हुई कि दरी इस तरह बिछाना चाहिए और पलंग यूँ लगाना चाहिए, और मेज़ का रुख यूँ रहे और दीवारगीरियों का वह मौक़ा है, और दूसरे शख़्स की आसाइश का यह एहतमाम कर रहे हैं। इनमें से हर तजवीज़ को विला दलील या यह अल्फ़ाज़ कहके "साहब आप नहीं जानते" मुस्तरद[२] कर दिया, हर एक में तरमीम[३] करदी, तो उनको न कुछ खिफ़्फ़त[४] होगी न मलाल[५]। ऐसे ही हमारे साद:दिल रईस, मौज़ा सहजनपूर, फ़िदवी मियाँ थे।

जब घर की सफ़ाई और आरास्तगी से फ़राग़त हुई और हर चीज़ अपने-अपने मौक़े से लगा दी गई, फ़िदवी मियाँ ने यह फ़र्माया—

लीजिए ओवरसियर साहब आपका मकान सज-सजा गया और अब जिस चीज़ की ज़रूरत हो वह हाज़िर कर दी जाय। क्योंकि खुदा के फ़ज़्ल से सब कुछ मुमकिन है। फ़क़त आपके इशारे की देर है।

मिर्ज़ा साहब—आपकी इनायत काफ़ी है। यह सामान भी मेरी ज़रूरतों से ज़ियाद: है और जो कुछ ज़रूरत होगी अर्ज़ कर दिया जायगा। यह आखिरी जुमला मिर्ज़ा साहब ने इस खयाल से कहा था कि थानेदार साहब ने पहले ही कहा था कि घोड़ा फ़िदवी मियाँ की कोशिश से बहुत जल्द और किफ़ायत से मिल जायगा, मगर फ़िदवी मियाँ को सिलसिला-कलाम के तूल देने का शौक़ था।

फ़िदवी मियाँ—ऐ तो फ़र्मा दीजिए ना। ताकि उसकी अभी से फ़िक्र की जाय। मिर्ज़ा साहब के पास इत्तफ़ाक़ से रुपया न था। उनको यह खयाल हुआ कि अभी कहना क्या ज़रूर है। पहले रुपये की फ़िक्र हो जाय तो देखा जायगा।

मिर्ज़ा साहब—अर्ज़ कर दूँगा।

फ़िदवी मियाँ—तो आप फ़र्माते क्यों नहीं ? और चारपाइयों की ज़रूरत हो तो भिजवा दी जायँ। चीनी के बर्तन, पतीलियाँ, लोटे, घड़े, मटके ग़रज़ कि जिस तरह लड़के पहेली बुझवाते हैं, यह एक-एक चीज़ का नाम लिये जाते थे और मिर्ज़ा नहीं-नहीं कहे जाते थे। उनकी सखावत[६] और सफ़ाहत[७] पर अगर कोई और होता तो खिल-खिलाके हँस देता। मगर मिर्ज़ा बहुत ही मुहज़्ज़ब[८] और मतीन[९] आदमी थे। उस पर भी मुतबस्सिम[१०] हो गए। मिर्ज़ा के तबस्सुम[११] से फ़िदवी मियाँ 'फ़िक्रे हर कस बक़द्रे हिम्मतें ऊस्त'[१२] कुछ और ही समझते थे। मिज़ाज के सादे, बेतकल्लुफ़ फ़र्माने लगे।

---

१ अतिशय विनयशीलता २ रद्द कर दिया ३ परिवर्तन ४ लज्जा ५ दुःख ६ दानशीलता, उदारता ७ तुच्छता (अति विनम्रता) ८ सभ्य-शिष्ट ९ गंभीर १० मुस्करा दिये ११ मुस्कान १२ हर आदमी का सोचने का तरीक़ा क़ाबिलियत के मुताबिक़ होता है।

फ़िदवी मियाँ—अच्छा तो इसमें तकल्लुफ़ क्या है, कोई पतुरिया बुलादी जाय। क्योंकि उसमें हर्ज क्या है। आप नौजवान आदमी हैं। और फिर लखनऊ के रहने वाले। मिर्ज़ा के कान इस क़िस्म की गुफ़्तगू से आश्ना[1] न थे। यह एक ख़ुश्क आदमी थे।

मिर्ज़ा साहब—जनाब आपने मेरे इख़्लाक़ का ग़लत अन्दाज़: किया। मैं इस क़िस्म के मज़ाक़ का आदी नहीं। आपकी ख्वामख्वाह इनायतों का मैं मजबूरन ममनून[2] हूँ, आइन्दः मुझको ऐसे मज़ाक़ से मुआफ़ रखियेगा।

फ़िदवी मियाँ—(बज़ाहिर झेंपके और खजलतज़द[3] सूरत बनाके दो तीन तमाँचे ज़ोर-ज़ोर से अपने गालों पर लगाके और दोनों कान मोड़के) तौबः! तौबः! खता हुई। मुआफ़ कीजिएगा। मैं नहीं जानता था कि आप मौलवी आदमी हैं।

मिर्ज़ा साहब—नहीं आपका क़ुसूर नहीं। यह इस ज़माने की तहज़ीब का क़ुसूर है। शायद आपको इसी तरह के लोगों से ज़ियादः मिलने का इत्तफ़ाक़ हुआ होगा, जो बेहूदः दिल्लगी, मज़ाक़, या चौसर, गंजीफ़ा वग़ैरः में अपने औक़ात को ज़ाया किया करते हैं। अगर मैं मौलवी नहीं मगर तालिब-इल्म ज़रूर हूँ।

मिर्ज़ा अपनी नेक-नफ़्सी[4] से फ़िदवी मियाँ की इस बात को दिल्लगी समझे थे हालाँकि फ़िदवी मियाँ का माफ़िज़्ज़मीर, हक़ीक़त का मुशअर था, न मिजाज़ का[5] क्योंकि आपकी ज़ात-वाला सिफ़ात से यह फ़ैज़ अक्सर मुलाज़िम पेशा लोगों को पहुँचता रहता था। इतना हम अपनी नेकनियती से कह सकते हैं कि इसमें कोई मुनाफ़अत[6] ज़ाती अज़ क़िस्म ज़र[7] फ़िदवी मियाँ को न थी। बल्कि उनका मज़ाक़ तबीअत इसी क़िस्म का वाक़ै हुआ था। ज़िले की कौन सी पतुरिया ऐसा थी जो आपकी ममनूनँ-मिन्नत[8] और मुतीअफ़र्मा[9] न हो। एक तो इसलिए कि ज़मानँ सर्वत[10] में आपने बिल्तख़सीस[11] इस फ़िर्क़: के साथ बहुत सलूक किया था। अक्सर बाग़ात और आराज़ी आपकी अतीयः रंडियों के क़ब्ज़े में मौजूद थीं। चार ही दिन का ज़िक्र है, छोटे साहब-ज़ादे छुट्टन मियाँ की तक़रीब-ख़तनः में दस बीघा ज़मीन बी वफ़ातन को, बीस दरख़्त आम के मय आराज़ी बी रसूलन को दिये थे। उसी तक़रीब में मौज़ा सहजनपूर रेहन हुआ था। यह सब औसाफ़ फ़िदवी मियाँ के मिर्ज़ा साहब को मालूम होते रहे और उसी क़द्र तनफ़्फ़ुर[12] उनके इख़्लाक़ से बढ़ता गया।

अगर्चे घोड़े की ख़रीद में फ़िदवी मियाँ की राय शरीक रही और उसी तरह और मुआमिलात में ख्वाही न ख्वाही इनका दख़ल रहा। लेकिन मिर्ज़ा हर अम्र में हत्तल-इमकान[13] उनसे दूर भागते थे। लेकिन फ़िदवी मियाँ की वज़ादारी से बईद था कि

---

१ परिचित २ कृतज्ञ ३ लज्जित ४ नेकदिली ५ मन की बात सचमुच यही थी, कोई बनावटी नहीं ६ लाभ ७ धन का ८ इहसानमन्द ९ हुक्म माननेवाली १० सम्पन्नता के समय, ख़ुशहाली में ११ ख़ास तौर पर १२ घृणा १३ यथाशक्ति।

मिर्ज़ा साहब के पास जाना तर्क करते। बल्कि उनको एक तरह की मुहब्बत मिर्ज़ा से हो गई थी। और कुछ ऐसा इख़्लाक़ी दबाव पड़ गया था कि उनसे किसी क़द्र डरते थे।

फ़िदवी मियाँ को कई मर्तबा मिर्ज़ा के सामने अपने मुंह पर तमाचे मारने और कान मोड़ने का इत्तफ़ाक़ हुआ; इसलिए कि यह मौक़े पर बोल उठते थे। और जो अम्र मिर्ज़ा की शान के खिलाफ़ होता था उस पर उनको डाँटते रहते थे। मसलन—

फ़िदवी मियाँ को यह मसलः मिर्ज़ा की ज़ात से तहक़ीक़ हुआ कि वह चीज़ जो अमूमन बालाई आमदनी कहलाती है, उसका लेना बिल्कुल हराम है।

फ़िदवी मियाँ सौम व सलात[1] की पाबन्दी और नाजाइज़ खाने-पीने की चीज़ों से इज्तनाब[2] करने को मौलवीयत[3] और ज़ुह्दोवरअ[4] ख़याल करते थे। नाजाइज़ तरीक़ों के इक्तिसाब मुन्फ़अत[5] करने को यह गुनाह ही न जानते थे बल्कि हराम समझते थे।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन से इनको यह भी मालूम हुआ कि शादी ब्याह में नाच-रंग या ईद-बक़रीद मुजरा देखना, या बग़ैर मुजरा देखे पतुरियों को इनाम देना गुनाह है। फ़िदवी मियाँ को मिर्ज़ा आबिदहुसैन की सुहबत से अक्सर ऐसे अमूर मालूम हुए जिनको यह नेकी समझते थे मगर दर हक़ीक़त वह बदी थे। रफ़्तः रफ़्तः फ़िदवी मियाँ को मिर्ज़ा साहब से वह एतक़ाद हो गया जो मुक़ल्लिद[6] को अपने मुज्तहिद[7] से या मुरीद[8] को अपने पीर[9] से होना चाहिए। मगर फ़िदवी मियाँ की आदतें इस हद तक ख़राब हो चुकी थीं कि उनकी इस्लाह मुहाल थी। अह्लें अमलः की ख़ुशामद बेजा, सई व सिफ़ारिश, झूठ बोलना, झूठी क़समें खाना, फ़ह्श और बेतुके मज़ाक़, रातों को रंडियों का दरबार, झूठे मुक़द्दमों की इताअत, बदमाशों की हिमायत और इसी क़िस्म के लाखों मआइब[10] उनमें मौजूद थे मगर इन सब मआइब के साथ एक वस्फ़[11] भी था। वह यह कि ख़ान्दानी शराफ़त नफ़्स की वजह से तमा[12] उनमें न थी। अगर्चे उस वस्फ़ के साथ एक ऐब भी था यानी असराफ़[13] जिसको लोग जिहालत से उलुल्-अज़्मी[14] कहते हैं। मिर्ज़ा साहब उनके इस वस्फ़ को पहचान गये थे। मिर्ज़ा का यह ख़याल था कि उनकी यह आदतें किसी हद तक तर्क हो सकती हैं। बशर्ते कि किसी ख़ास इख़्लाक़ी क़ूवत से उनके नफ़्स पर असर डाला जाय। मिर्ज़ा ने तजवीज़ किया कि मज़हबी जोश अगर आप की तबियत में पैदा कर दिया जाय तो मुमकिन है कि उनकी उलुल्-अज़्मी उनको इस तरफ़ मुतवज्जः[15] कर दे।

फ़िदवी मियाँ के दो लड़के थे एक निसारअली जिसका सिन चौदह बरस का, दूसरा अहमदहसन जिसका सिन सात-आठ बरस का था।

---

१ रोज़ः व नमाज़ २ परहेज़ ३ मौलवीयत, पण्डिताई ४ पाकीज़गी ५ नफ़ा कमाना ६ अनुयायी ७ सन्मार्ग-प्रदर्शक ८ शिष्य ९ धर्मगुरु १० अनेक दोष ११ गुण १२ लोभ-लालसा १३ फ़िज़ूलख़र्ची १४ मरदानगी, दिल होना १५ अनुरक्त।

निसारअली आवारगी की हद तक पहुँच गया, मगर एक खास सिफ़त जो क़सबात और देहात के लड़कों में पाई जाती है यानी शर्म—अगर्चे वह हद्द एतिदाल[1] से किसी क़द्र ज़ियादः होती है—लेकिन वही उनकी दुरुस्ती का बाइस हो गई।

फ़िदवी मियाँ अपने लड़कों की तालीम से ग़ाफ़िल न थे। एक मौलवी साहब वर्सों से दरवाज़े पर नौकर थे। मगर लड़का गुलिस्ताँ का बाब औवल पढ़ता था। कई साल हो चुके थे मगर उसके खत्म होने की नौबत न आती थी, और छोटा बग़दादी क़ायदा सामने लिए बैठा रहता था। मिर्ज़ा साहब ने रफ़्तः रफ़्तः फ़िदवी मियाँ के मुआमिलात में खानगी दखल देना शुरू किया और जिस क़द्र मिर्ज़ा साहब उनके मुआमिलात में दखील होते जाते थे, फ़िदवी मियाँ अपनी ज़िम्मेदारियाँ मिर्ज़ा के सिपुर्द करते जाते थे। नौवत ब ईं जा रसीद[2] कि फ़िदवी मियाँ का हर काम मिर्ज़ा ने अपने ज़िम्मे ले लिया। फ़िदवी मियाँ की वह इस तरह मुहाफ़िज़त और निगरानी करते थे जो नाबालिग़ या मजनुओं के वली[3] को करना चाहिए; और फ़िदवी मियाँ रोज़-अव्वल से कुछ ऐसा दबाव मिर्ज़ा साहब का मान गये थे कि बग़ैर इनके सवाबदीद[4] के कोई काम न होता था। जिस क़द्र मिर्ज़ा साहब फ़िदवी मियाँ पर तवज्जुः करते जाते थे, शिवरतन को मिर्ज़ा साहब से खौफ़ पैदा होता जाता था। मिर्ज़ा साहब को फ़िदवी मियाँ और शिवरतन के मुआमिलत में भी कुछ गुँजलक[5] और ग़ब्न मालूम हुआ औद दर हक़ीक़त ऐसा ही था। मिर्ज़ा साहब खुद फ़र्माते हैं कि यह राज़ मुझ पर शिवरतन की चश्मअबरू[6] से ज़ाहिर हो गया। मिर्ज़ा साहब फ़र्माते हैं कि मुझे शिवरतन की निगाहें फ़िदवी मियाँ के सामने झेंपती सी मालूम होती थीं। इससे मुझे मालूम हो गया कि उसने किसी क़िस्म की चालाकी इनके मुआमिलात में ज़रूर की है, और वह फ़िदवी मियाँ से किसी क़द्र दबता भी था इससे और भी यक़ीन हो गया था कि अभी तक उसकी चालाकी का तदारुक[7] फ़िदवी मियाँ के इख्तियार में है।

फ़िदवी मियाँ का अहलॅ अम्लः के पास दौड़-दौड़ के जाना। इससे भी मुझे एक क़िस्म का शुबहा सा पैदा होता था कि शायद फ़िदवी मियाँ इन मुआमिलात के तदारुक की फ़िक्र में हैं, मगर उनकी बेपरवाई ने इस शुबहा को दफ़ा कर दिया था।

मिर्ज़ा साहब फ़िदवी मियाँ को खफ़ीफ़ुल-अक़्ल[8] समझते थे, इसलिए अपने खयालात को उनसे ज़ाहिर करने में तअम्मुल था। इसलिए कि वह शायद इस राज़ को ज़ाहिर कर दें कि मिर्ज़ा को उनके मुआमिलात की दुरुस्ती की ग़ैर-मामूली फ़िक्र है। इन उमूर पर नज़र करके मिर्ज़ा ने खुफ़िया तहक़ीक़ात करना शुरू की। शिवरतन एक बुड्ढा आदमी था। वह फ़िदवी मियाँ के वालिद के ज़माने में उनके किसी मौज़े का ज़िलेदार था। जिस ज़माने में फ़िदवी मियाँ के वालिद शेख क़ुर्बान मुहम्मद

१ उचित सीमा से अधिक २ यहाँ तक नौबत पहुँची ३ संरक्षक ४ नेक सलाह ५ गोलमाल ६ आँख-भौं ७ छुटकारा का उपाय ८ कमसमझ।

साहब ने इन्तक़ाल किया, फिदवी मियाँ, जिनका असली नाम शेख़ फ़िदा अली था, बहुत ही कमसिन थे। तौलियत[१] जायदाद की उनके मामूँ शेख़ अहमद के सिपुर्द हुई थी। शेख़ अहमद एक मशहूर जालिया था। शेख़ अहमद की तौलियत के ज़माने में भी शिवरतन कारकुन था। बाद तहक़ीक़ात के मालूम हुआ कि शेख़ अहमद और शिवरतन की साजिश से इस मुआमिले में कोई जाल हुआ है। मिर्ज़ा का ख़ुद बयान है कि इस मुक़द्दमः की तहक़ीक़ात का मुझे ऐसा शौक़ हो गया था कि रातों को नींद न आती थी। ज़रा-ज़रा सी बातों को अमली मुशाहदात[२] के तौर जाँचता और परतालता था। शिवरतन के तमाम हरकात व सकनात[३] पर शब व रोज़ मेरी नज़र रहती थी। अगरचे इससे महीने में शायद ही दो एक मर्तबा मेरी उसकी मुलाक़ात होती थी; वह भी चन्द मिनट के लिए। मगर मेरा ख़याल हर वक़्त उसके साथ रहता था। फ़िदवी मियाँ अगर्चे बहुत ही सफ़ीह[४] और खफ़ीफ़ुल-हरकात[५] आदमी थे मगर अपनी आबाई जायदाद[६] को अपने वालिद के एक अदना मुलाज़िम के क़ब्ज़े में देखकर एक क़िस्म की हस्रत जो उनके बुश्: पर[७] ज़ाहिर होती थी, उस पर मुझे कमाल तअस्सुफ़[८] होता था और जब से मैं यह समझ गया था कि इस मुक़द्दमें में शिवरतन ने यक़ीनन जाल किया है, उस वक़्त से मेरा बस यही ख़याल था कि उसे इलाक़े से बेदख़ल करके फ़िदवी मियाँ को उसकी जगह क़ाबिज़ करा दूँ, मगर मेरा कोई इख़्तियार न था। ज़ाहिरा यह अम्र मुहाल मालूम होता था और सबसे ज़ियादः अहम उन ख़यालात की राज़दारी[९] थी इसलिए कि इफ़्शाए राज़[१०] में नाकामयाबी का अन्देशा एक तरफ़, तो शमातत[११] का ख़याल दूसरी तरफ़ दामनगीर था। आख़िर बड़ी मुश्किल से बाज़ वाक़िआत का पता लगा। फिर तो पेच दर पेच मुश्किलें आसान होने लगीं और बरसों की उलझी हुई गुत्थियाँ सुलझ गईं।

मालूम हुआ कि शेख़ क़ुर्बानअली—फ़िदवी मियाँ के वालिद ने लखनऊ में वफ़ात पाई थी। सबब वफ़ात मर्ज़-बाई मशहूर था। शेख़ फ़िदाअली की वाल्दा अपने शौहर के सामने मर चुकी थीं। शेख़ अहमद उनका सौतेला भाई था।

शेख़ क़ुर्बानअली के लखनऊ जाने का सबब एक मुक़द्दमा-अपील था। मुक़द्दमे की रूदाद यह थी कि किसी राजपूत मुसम्मी मान्धाता[१२] ने बन्दोबस्त के ज़माने में शेख़ क़ुर्बानअली के इलाक़े पर दावा किया था। सरसरी मुक़द्दमा हाकिम बन्दोबस्त ने ख़ारिज कर दिया। उसने नम्बरी नालिश की। वह भी ख़ारिज हुई। फिर उसने अपील की। अपील भी ख़ारिज हुई। फिर उसने अपील सानी की। यहाँ वह तमाम लोगों के खिलाफ़-उम्मीद जीत गया। जिस दिन अदालतुल्-आलिया से

१ प्रबन्धक, ट्रस्टी २ व्यवहारिक अनुभवों ३ गतिविधि ४ नादान ५ टुच्चेपन की हरकतों वाले ६ पैतृक जायदाद ७ चेहरे पर ८ अफ़सोस ९ गोपनीयता १० भेद के खुल जाने से ११ उपहास १२ मान्धाता नामक।

मुक़द्दमा उसके हक़ में फ़ैसल हुआ वही दिन शेख़ क़ुर्बानअली की वफ़ात का था, बल्कि अक्सर लोगों को यह गुमान हुआ कि शेख़ ख़ुदकुशी करके मर गए। अपील से जीतने के बाद चाहिए था कि क़ाबिज़-जायदाद मान्धाता या उसके वारिस होते मगर बख़िलाफ़ इसके क़ाबिज़-जायदाद शेख़ अहमद और शिवरतन हुए। शेख़ अहमद लावारिस मर गए। उसके बाद शिवरतन बिला मुज़ाहयत[1] ओहदे और बेमुशारकत ग़ैर[2] तमाम इलाक़े पर क़ाबिज़ और मुतसर्रिफ़[3] रहा। फ़िदवी मियाँ के साथ उसका सुलूक इस तरह का है जैसे किसी नमकहलाल क़दीम नौकर को, जो किसी वक़्त में मुलाज़िम था, अपने आक़ाज़ाद:[4] के साथ होना चाहिए जो अब मुफ़्लिस हो। मगर इस सुलूक में ज़ाहिरदारी किसी न किसी तरह खुल जाती थी। जायदाद पिदरी से एक बिसवा ज़मीन शेख़ फ़िदाअली को नहीं मिली। मौज़ा सहजनपूर जिसका नम्बर अब तक उनके पास है और जो शिवरतन के पास कई साल पेश्तर रेहन हो चुका था, वह मौज़ा इनकी वाल्दा का था। कुल जायदाद का मालिक बिल्फ़ेल[5] शिवरतन था जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं, हत्ता कि मकानात भी उसी के नाम रेहन हैं। मगर वह बतौर माहताज[6] शेख़ फ़िदाअली को गुज़ारा देता है और मौज़ा सहजनपूर के असामियों से जो कुछ छीन-झपट के वसूल हो जाता था वह गोया बालाई आमदनी हमारे इनायत-फ़र्मा शेख़ फ़िदाअली साहब की है। मिर्ज़ा को यह वाक़िआत जो ऊपर बयान किये कई बरस की तहक़ीक़ के बाद मालूम हुए। यह तो उन पर ज़ाहिर हो गया था कि उस मुआमिले में किसी क़िस्म की चालाकी हुई है। रहा यह अम्र कि वह क़ाबिल तदारुक[7] है या नहीं, इसका फ़ैसला तफ़सीली हालात के मालूम होने के बाद हो सकता है। मुँह से कोई बात निकालना तो इस मुक़द्दमे के लिए मुज़िर था जिसका सबब ऊपर बयान हो चुका है। और मिर्ज़ा का इस्तिक़्लाल[8] भी इसका मुक़्तज़ी[9] था कि जब तक कोई सूरत यक़ीनी कामयाबी की न पैदा हो, ऐसी बातों का मुँह से निकालना सफ़ाहत पर महमूल[10] किया जायगा। इनका यह मन्सूबः था कि क्या ख़ूब हुआ अगर मैं इस मुआमिले का पूरा पता लगाके और तदारुक की काफ़ी तदबीर करके उसको ज़बान से निकालूँ। पाँच बरस तक इस मुआमिले से मिर्ज़ा को तअल्लुक़ ख़ातिर रहा। फ़िदवी मियाँ तो रोज़ ही मिर्ज़ा के पास मौजूद रहते थे और शिवरतन भी कभी-कभी आ निकलता था, मगर दोनों को उनके किसी इशारे-किनारे से यह न साबित हुआ कि वह उनके हक़ में क्या करनेवाले हैं। इस अस्ना में कई बार इनको लखनऊ आने का इत्तफ़ाक़ हुआ। जुडीशल के मुहाफ़िज़ख़ाने में दिन-दिन भर गुज़र गया। कुल मुक़द्दमे की रूदाद से उन्होंने वाक़िफ़ीयत हासिल कर ली।

---

१ बे रोक टोक २ टाइटिल व बिना साझेदार ३ अधिकार कर लेने वाला ४ मालिक की सन्तान ५ फ़िलहाल ६ गुज़ारे के लिए ७ उपाय, निवारण ८ धैर्य ९ इच्छुक १० हलकेपन की निशानी थी।

जब तहक़ीक़ात कमा हक़्क़ोहू[१] कर चुके तो उस राज़ को एक ख़ास मतलब के लिए राक़िमुल हुरूफ़[२] (मिर्ज़ा रुसवा) पर ज़ाहिर किया, और बाज़ उमूर[३] मुझको तालीम किये जिसका हाल नाज़रीन को आइन्दः बयान से मालूम हो जायगा। इस मतलब के लिए मुझको मिर्ज़ा के पास ज़िला............जाना पड़ा। इतवार का दिन था। मिर्ज़ा दीवानखाने (बैठके) में तशरीफ़ रखते हैं। फ़िदवी मियाँ और मुझसे मज़ाक़ की बातें हो रही हैं। मिर्ज़ा ने अपने अर्दली के चपरासी को बुलाके कहा, शिवरतन को बुला लाओ। शायद इससे पहले मिर्ज़ा ने किसी मौक़े पर शिवरतन को याद न किया होगा। मैं इस मुआमिले से वाक़िफ़ था। मगर फ़िदवी मियाँ को अलबत्ता तअज्जुब हुआ होगा कि आज शितरतन ख़िलाफ़-मामूल क्यों बुलाया जाता है।

शिवरतन हस्बुल्तलब सामने आ खड़ा हुआ। मिर्ज़ा ने बैठने का इशारा किया, वह बैठ गया। मिर्ज़ा ने उससे चन्द मामूली ग़ैर ज़रूरी बातें करके मुझसे मुख़ातिब होके पूछा।

मिर्ज़ा—हाँ तो विलायत अली खाँ मर गया ?

मैं नहीं बयान कर सकता कि उसका नाम सुनने के बाद शिवरतन के दिल पर क्या गुज़री और उसके चश्मँ अबरू[४] से किस क़िस्म के आसार पाये गये।

मैं—जी हाँ मर गया। उसको मरे हुए दो महीने हुए होंगे।

मिर्ज़ा—आप जानते हैं यह कौन शख़्स था ?

रुसवा—मैं ख़ूब जानता हूँ कि कटारी टोले के मुत्तसिल वह गली जो कालिकों[५] की तरफ़ जाती है, नीम के दरख़्त के सामने।

मिर्ज़ा—आप ख़ूब जानते होंगे, मगर आपने सुना होगा कि किस बुरी गत से मरा है।

रुसवा—जी हाँ बंदगाने ख़ुदा की हक़-तलफ़ी[६] का यही अंजाम होता है।

मिर्ज़ा—सुनते हैं लावारिस था। मरने के बाद कुल असबाब पुलिस में उठ गया होगा, और यक़ीन है कि पुलिस ही ने उसे दफ़न किया हो।

रुसवा—जी हाँ, यही हुआ और होना ही क्या था।

मिर्ज़ा—और जो तकिया उसके सिरहाने रहता था ?

रुसवा—उसका हाल फिर अर्ज़ करूँगा।

इस गुफ़्तगू के बाद हम और मिर्ज़ा इधर-उधर का ज़िक्र करने लगे। शिवरतन के चेहरे पर मुर्दनी छाई हुई थी। वह अभी उठने भी न पाया था कि मिर्ज़ा ने गाड़ी कसवाने का हुक्म दिया। मिर्ज़ा साहब और मैं दोनों उठ खड़े हुए। मिर्ज़ा साहब ने फ़िदवी मियाँ का हाथ पकड़ लिया। गाड़ी पर सवार हुए। रास्ते में सिवा इस जुमले के जो मुझसे मुख़ातिब होके कहा था— 'क्यों देखा आपने, हम न कहते थे'',

---

१ मुनासिब २ इन पंक्तियों के लेखक ३ मसले ४ आँख-भौं ५ कालीजी के मन्दिर की गली ६ हक़ मारना।

जिसका जवाब मैंने अर्ज़ किया "जी हाँ, आपका खयाल बहुत सही था"।—और कोई गुफ़्तगू उस मुक़द्दमे की नहीं हुई। दूसरे दिन मालूम हुआ कि शिवरतन रात ही को लखनऊ गया।

इस वाक़िए से हमारे ख़यालात और पुख़्तः हो गये, कई दिन के बाद लखनऊ से वापस आया।

मिर्ज़ा का मुवक्किल शिकरम[1] में शिवरतन के साथ-साथ था। शिकरम लखनऊ पहुँचा। मुवक्किल साथ था। शिवरतन अमीनाबाद की सरा में उतरा। वहाँ थोड़ी देर ठहर के चौक की तरफ़ रवाना हुआ। गोल दरवाज़े के क़रीब बानवाली गली की तरफ़ से विलायत अली खाँ के मकान पर पहुँचा। (जिस दूकान में विलायत अली खाँ रहता था वहाँ अब शिवाला बन गया है) शिवरतन वहाँ के दूकानदारों से कुछ पता दरयाफ़्त करके उसके छत्ते की तरफ़ चला। जहाँ तीरः व तारीक[2] गलियाँ बहुत दूर तक चली गई हैं। उसके बाद एक नाला मिलता है, फिर एक टीकरा सा मिला उस पर गया। वहाँ एक शख़्स को आवाज़ दी, वह घर से निकला। दोनों में कुछ बातें हुईं। विलायत अली खाँ को मरे हुए दूसरा महीना था। यह ठीक पुलीस की मार्फ़त दफ़न हुआ था। मगर तकिए का पता न मिला। उसके बाद मुवक्किल और शिवरतन दोनों अमीनाबाद की सरा में आए। उसने हलवाई की दूकान से पूरियाँ लेके खाईं। मुवक्किल ने भी उसी हलवाई से पूरियाँ लीं। इसके बाद शिवरतन नज़ीराबाद की तरफ़ चला। इसके बाद उसने दो दिन तक कचेहरियों की ख़ाक छानी। आख़िर मायूस होकर············ज़िला को वापस चला। मुवक्किल उससे एक दिन पहले हमारे पास पहुँच गया था।

वह तकिआ, जिसमें शिवरतन की जान थी, हमारे क़ब्ज़े में कई महीने पेश्तर आ चुका था। उसमें चन्द काग़ज़ात थे और वह काग़ज़ात सब फ़िदवी मियाँ के इलाक़े के मुतअल्लिक़ थे।

अब हम इस जालसाज़ी को खोले देते हैं। असल वाक़िआ यह हुआ कि मान्धाता अदालतुल्आलिया से मुक़द्दमा हार गया था जैसी कि तवक़्क़ो थी, मगर उसी के दूसरे या तीसरे दिन शेख़ क़ुर्बानअली ने बआरज़ः फ़सली बुख़ार इंतक़ाल किया जैसा कि ज़ाहिरन साबित होता है। यह भी मुमकिन है कि शिवरतन और शेख़ अहमद मरहूम के हमराह थे। इन दोनों ने साज़िश करके शेख़ को कुछ खिला पिला दिया हो। मगर इस क़द्र अर्से की बात थी कि उसका सबूत दुश्वार बल्कि मुहाल है। इलाक़े के बाब में यह चालाकी की गई कि असल मसला मुहाफ़िज़ख़ाने से उड़ाके और बजाय उसके एक फ़ैसला बहक़ मान्धाता विलायत अली खाँ की मार्फ़त बनवा लिया गया। फिर मान्धाता और शेख़ अहमद और शिवरतन में कुछ ऐसा मन समझौता हो गया कि

---

१ एक क़िस्म की घोड़ागाड़ी २ अंधकारमय।

मान्धाता कुछ रक़म मुअ्तद्बिह[१] ले के अलाहिदः हो गया और उससे एक रेहननामा बनाम शिवरतन हो गया। शेख़ अहमद के नाम रेहननामा होता मगर उसकी हैसियत इस लायक़ न थी। और शिवरतन शेख़ क़ुर्बान अहमद के ज़माने ही में लेन-देन करता था और बड़ा रुपिया वाला मशहूर था। असल फ़ैसला-अदालत जो विलायत अली खाँ को बतौर नमूने के दिया गया था वह उसने दबा रखा और उसके ज़रिये से वह शिवरतन को वक़्तन फ़वक़्तन दबाकर कुछ ले लिया करता था।

आख़िर में विलायत अली खाँ नाबीना[२] हो गया था। जब वह ख़र्च से तंग होता तो एक ख़त दबाव डालने के लिए शिवरतन को लिख भेजता। वह कुछ न कुछ भेज दिया करता था, मगर क़लील मिक़दार। इसलिए कि शिवरतन ख़ूब जानता था कि विलायत अली वह काग़ज़ात पुलीस या अदालत में दाख़िल नहीं कर सकता, इसलिए कि वह ख़ुद भी मुजरिम है। मगर फिर भी एहतियातन कुछ दे निकलता था। जब मिर्ज़ा उस मुक़द्दमे की तहक़ीकात में मसरूफ़ हुए, एक दिन शिवरतन के नाम एक पोस्टकार्ड मिर्ज़ा की डाक के साथ चला आया। उस पोस्टकार्ड में अगर्चे कोई अम्र तफ़्सीली तौर से न लिखा था मगर विलायत अली खाँ को मिर्ज़ा अच्छी तरह जानते थे। विलायत अली खाँ का नाम पोस्टकार्ड पर देखते ही गोया तमाम मुक़द्दमे का पता चल गया।

पोस्टकार्ड का मज़मून यह था। शिवरतन को मालूम हो कि हमारा आख़िरी वक़्त है। कुछ हमारी मदद करना चाहिए। काग़ज़ात हमसे ले लो और जो कुछ तुमसे हो सके हमको दे देना। वर्ना मरता क्या न करता।

उस पोस्टकार्ड को मिर्ज़ा ने दबा रखा और एक मुवक्किल शिवरतन की तरफ़ से विलायत अली खाँ के पास गया और पचास रुपया दे के वह काग़जात उससे हासिल कर लिये। उसके चन्द रोज़ बाद ही विलायत अली वासिल जहन्नम हुआ। वाक़ई बहुत बुरी तरह से मरा। जालिये बेईमानों का यही अंजाम होना चाहिए।

इन वाक़िआत के मुफ़स्सिल ज़िक्र[३] के बाद अब इसके कहने की ज़रूरत नहीं है कि शिवरतन किस क़द्र सुहूलत के साथ तमाम जायदाद से दस्तबर्दार[४] होने पर राज़ी हो गया होगा। बाहमी फ़ैसला कर लेना मुनासिब वक़्त था। इसलिए कि अगर्चे जाल का सुबूत क़तई हाथ आ गया था और शिवरतन वाक़ई मुजरिम था, इसलिए वह बहुत ख़ाइफ़[५] था। मगर बहुत अर्से की बात थी। इसलिए मिर्ज़ा की एहतियात इसी की मुक़्तज़ी[६] हुई कि यह मुक़दमा अदालत तक न जाय और शिवरतन भी यही चाहता था। लिहाज़ा शिवरतन ने कुल जायदाद का बैनामा फ़िदवी मियाँ के नाम करके सिर्फ़ एक मौज़ा अपने नाम छुड़वा लिया, और इस फ़ैसले के चन्द ही रोज़ के बाद तीरथ को चला गया, जहाँ से इस वक़्त तक वापिस नहीं आया।

---

१ अच्छी ख़ासी २ अन्धा ३ विस्तृत चरचा ४ अलग ५ भयभीत ६ इच्छुक।

अब फ़िदवी मियाँ का हाल न पूछिए। पूरे रईस बन गए। मगर मिर्ज़ा को अभी तक उसी तरह माने जाते हैं और कोई काम बग़ैर उनकी सलाह व मशविरे के नहीं करते।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन का तरीक़: ज़िन्दगी बिल्कुल अनोखा है। हमने किसी शख़्स को जो औसत दर्जे का तमव्वुल[१] रखता हो, इतनी मिहनत करते नहीं देखा। मिहनत करने पर इस क़द्र हरीस[२] कोई हिन्दुस्तानी हमारी नज़र से नहीं गुज़रा। मिर्ज़ा साहब रोज़ सुबह को चार बजे गर्मी-बरसात उठ खड़े होते हैं। उस वक़्त से बाग़ में निकल जाते हैं। वहीं नमाज़ पढ़ते हैं। तुलूएँ आफ़ताब[३] के साथ ही पौदों की देखभाल शुरू हो जाती है। क़ब्ल इसके कि मुलाज़मीन और मज़दूर आएँ, हर एक का काम तजवीज़ हो जाता है। यह लोग आते के साथ काम शुरू कर देते हैं। अक्सर कामों में ख़ुद मिर्ज़ा साहब मदद देते जाते हैं। खुर्पी या फावड़े को ख़ुद उठाकर काम में मसरूफ़ हो जाना और इस बेतकल्लुफ़ी के साथ कि गोया उस काम के लिए फ़ित्रत[४] ने उनको ख़ल्क़ किया[५] था। कोई छोटे से छोटा काम भी नहीं जिससे मिर्ज़ा बेपरवाई करते हों या महज़ नौकरों पर छोड़ देते हों या नौकरों को हिदायत करते हों। मिर्ज़ा के नौकर उनके एहकाम की तामील में ऐसी मुस्तअदी और तवज्जुः ज़ाहिर करते हैं कि उसका नज़ीर हम किसी हिन्दोस्तानी मुलाज़िमों में नहीं पाते। जब सब लोग अपने-अपने कामों में मसरूफ़ हो जाते हैं तो मिर्ज़ा लेबोरेटरी (तज्रगाह)[६] में तशरीफ़ ले जाते हैं। यहाँ इल्म तबिआत[७] और टुकड़ी के तजुर्बात होते हैं और मामूलन दो घण्टा यहाँ रहते हैं। यहाँ सिर्फ़ एक आदमी इनका मददगार है। दस बजे खाना खाते हैं। खाना खाने के बाद अख़्बार देखते हैं। गोया यह घण्टा उनकी इस्तराहत[८] का है। मगर इस वक़्त भी उनको किसी ने पलंग पर लेटे हुए न देखा होगा। बहुत बड़ी इस्तराहत का ज़माना सिर्फ़ आध घण्टा है। ग्यारह बजे फिर खेतों पर जाते हैं। बारह बजे तक वहीं रहते हैं। बारह बजे मुलाज़िम और मज़दूरों को दो घण्टे की फ़ुर्सत दे के ख़ुद हद्दादख़ाना[९] या नज्जारख़ाना[१०] चले जाते हैं। यहाँ दो घण्टे तक सख़्त मिहनत होती है। उस दो घण्टे में मिर्ज़ा का हाथ कभी हथौड़े या बसूले या किसी और आला हद्दादी[११] या नज्जारी[१२] से ख़ाली न देखा होगा। आधा घण्टा बाग़ की ज़रूरियात के मुतअल्लिक़ सर्फ़ होता है। मसलन अगर कोई चीज़ टूट-फूट गई हो तो उसकी मरम्मत की जाती है, या कोई नया आला सिर्फ़ ज़राअत या बाग़ की तरक़्क़ी की ग़रज़ से बनाया जाता है। डेढ़ घण्टे तक इल्म ज़र्र सक़ील[१३] और मुख़्तलिफ़ क़िस्म की कलों के नमूने तैयार करने में सर्फ़ होते हैं। दो बजे फिर

---

१ हैसियत २ लोलुप ३ सूर्योदय ४ प्रकृति ५ सिरजा ६ प्रयोगशाला ७ शरीर-विज्ञान ८ आराम ९ लुहारख़ाना १० बढ़ईख़ाना ११ लुहारी १२ बढ़ईगीरी १३ मैकेनिक्स, भारी चीज़ों का उठाना।

काम पर जाते हैं। इस वक़्त ज़ियादः देर तक नहीं ठहरते। सिर्फ़ घण्टा आधा घण्टा में कुल काम का मुआइना करके चले आते हैं। तीन बजे से चार बजे तक एक घण्टा इल्म नबातात[1] के मुतअल्लिक सर्फ़ होता है। चार बजे घर में तशरीफ़ ले जाते हैं। यह वक़्त औलाद की तालीम की तरफ़ तवज्जुः करने का है। अगर्चे हर बच्चे की तालीम का जुदागानः एहतिमाम[2] है। लड़कियों पर आतू[3] नौकर हैं। लड़के जो मदरसे जाने के क़ाबिल नहीं वह घर पर मौलवी साहब से पढ़ते हैं। मगर मिर्ज़ा हर रोज़ बिला नाग़ा हर एक लड़की या लड़के का सबक़ सुनके ख़ुद छुट्टी देते हैं। पाँच बजे से छै बजे तक का वक़्त तफ़्रीह[4] के लिए मुअय्यन[5] है। इन औक़ात में मिर्ज़ा अक्सर सवार भी होते हैं। कभी घोड़े पर, कभी बाइसिकिल पर और अगर कोई दोस्त हस्ब दिलख़्वाह आ गया तो उसके साथ बाग़ की ओर ज़राअत की सैर कराने में मसरूफ़ रहते हैं।

इस वक़्त एक दिन राक़िमुल्हुरूफ़[6] इनकी ज़ियारत से मुशर्रफ़[7] हुआ था। वाक़ई जहाँ मिर्ज़ा रहते हैं वह अजीब दिलकश मुक़ाम है।

पुख़्तः सड़क से एक कच्चा रास्ता उस फ़ारम को जाता है। कुल रक़बः और बाग़ मिला के कोई पचास बीघा जरीबी[8] है। इस क़िता ज़मीन के चारों तरफ़ एक बुलन्द ज़मीन छोटी सी पहाड़ी के सिलसिले के मिस्ल हर तरफ़ से घेरे हुए हैं; गोया रक़बः उस पहाड़ी की घाटी है। इस बुलंद ज़मीन के उस तरफ़ एक बहुत बड़ी झील है जिसका एक हिस्सा पहाड़ी को काट के इस तरफ़ निकल आया है। बाग़ उस झील के पानी की सतह से कुछ ऊँचा है। फ़ारम और बाग़ के चारों तरफ़ बुलंद खाई और ख़न्दक़ है। उस खाई पर एक क़तार घीकुवार की है और दूसरी तरफ़ क़तार बबूल के पौदों की है। उसी के शुमाली रुख़[9] पर एक तूलानी[10] तख़्तः बाग़ का है। उसके एक क़िते में तुख़्मी और दूसरे में क़लमी आमों के दरख़्त हैं। फिर तुरशावः[11] का मुख़्तसिर सा तख़्तः है। उससे मिला हुआ फूलों का वसीअ[12] चमन है। उसकी सजावट से बिलकुल फ़ित्री तौर पर मिर्ज़ा की तबीयत की सादगी और फ़ित्रत-पसन्दी का मज़ाक़[13] उससे ज़ाहिर हो सकता है। अगर कोई इस चमन को देखे तो यह हरगिज़ नहीं कह सकता कि यह दरख़्त यहाँ लाकर लगाये गये हैं। बल्कि यह मालूम होता है कि आप से आप उगे हुए हैं। इसी चमन में एक कच्ची नाली पानी की झील से काटकर लाई गई है। उस नाली में कंकर कुटे हुए हैं जिससे साफ़ पानी बहता है।

---

१ वनस्पति शास्त्र २ अलग-अलग प्रबन्ध ३ उस्तानी ४ सैर ५ नियत, निर्धारित ६ लेखक ७ दर्शनों से धन्य ८ जरीब—खेत नापने की एक नाप (जंजीर) होती है ९ उत्तरी ओर १० बड़ा ११ खट्टे फलों का १२ विस्तृत १३ रुचि, झुकाव।

नाली के किनारे-किनारे दूब इस ख़ूबसूरती से जमाई गई है कि उसकी शाखों ने अक्सर पानी की सतह पर साया कर लिया है। चमन-बन्दी हमवार तख़्ते पर नहीं है। ज़मीन पहले हमवार थी, मगर उससे असली बीहड़ ज़मीन का नमूना बनाया है। उसमें जाबजा कंकरों की पहाड़ियाँ बनाई गई हैं। वह बिलकुल असली मालूम होती हैं। बाज़ मशहूर पहाड़ी मुक़ाम की नक़्ल मिर्ज़ा ने बिलकुल पैमाने से नाप कर बनाई है। ज़मीनँ मज़रुअ[१] का क़िता बहुत बड़ा और बिलकुल हमवार है। यह क़िता ज़मीन का बारह महीने सरसब्ज़ रहता है। पानी के बरहों[२] के किनारे तक बेकार नहीं छोड़े। कोई न कोई शै हर फ़स्ल के मुवाफ़िक़ हर जगह बोई जाती है। मिर्ज़ा आबिदहुसैन की सवानेःउम्री[३] तमाम नहीं हो सकती, जब तक इनके बाज़ ख़ुतूत जो हमने बड़ी मुश्किल से फ़राहम किये हैं, मय उन ख़तों के जिनके जवाब में वह लिखे गए हैं, उसके साथ शामिल न कर दें। हम इस किताब के साथ उनका फ़ोटो भी ज़रूर शाया करते मगर उसकी हमें इजाज़त नहीं है। लेकिन हम इस मौक़े पर उनके शमाइलँ ज़ाहरी[४] का एक नक्शः बज़रिये अल्फ़ाज़ खींचे देते हैं। इस मौक़े पर हम मिर्ज़ा साहब को गोया अपने नाज़रीन से बिलमुशाहदः तआरुफ़[५] कराये देते हैं।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन का सिनँ शरीफ़ अब तक़रीबन पचास साल का है। मगर वज़्ए एहतियात और जफ़ाकशी का यह नतीजा है कि वह बिल्कुल नौजवान मालूम होते हैं। गन्दुमी[६] रंग है। मियानः[७] क़द, चौड़ी हड्डी, ज़बरदस्त कलाइयाँ, मज़बूत हाथ। उनको एक नज़र देखने से ऐसा मालूम होगा कि उनके हर अज़ों में क़ूवत भरी हुई है। जब वह किसी जिस्मानी मिहनत का इरादा करते हैं, उनके शौक़ और तर्ज़े-आमादगी[८] से ऐसा ज़ाहिर होता है, जैसे कोई बच्चा खेल की तरफ़ मुतवज्जेः होता है। रफ़्तार उनकी किसी क़दर सरीअ[९] है। उनकी हैअतँ कज़ाई[१०] से ऐसा मालूम होता है जैसे उनको बहुत कुछ काम करना है। हम दावे के साथ कह सकते हैं कि उनको किसी ने किसी हालत में और किसी वक़्त में बेकार न देखा होगा।

बेटे का ख़त बाप के नाम—इंट्रेंस पास करने के मौक़े पर

क़िब्लए मन्, मद्दज़िल्लुहू। आदाब व तस्लीमात के बाद गुज़ारिश यह है कि ख़ुदा के फ़ज़्ल और आपकी दुआ से मैं इंट्रेंस के इम्तहान में कामायाब हो गया। एफ़. ए. के लिए मैंने यह मज़ामीन पसन्द किये हैं। अगर आप इजाज़त दें तो इन्हें इख़्तियार करूँ।

अंग्रेज़ी, साइंस, मन्तिक़, पोलिटिकल इकानमी, रियाज़ी (इल्म-हिसाब, अलजबरा,

---

१ जोती-बोयी २ बहावों ३ जीवनी ४ रूपरेखा ५ प्रत्यक्ष परिचय ६ गेहुँआ ७ मध्यम श्रेणी का ८ तत्परता, मुस्तैदी ९ तेज १० ढंग-तरीक़े।

इल्म-हिन्दसः मक़ालः[१] शशुम[२] व याजदहुम,[३] इल्म मुसल्लस,[४] कानसेक्शन), साइंस (इल्म तबीअ़ात व कमेस्ट्री)।

एफ़-ए की रियाज़ी बहुत मुश्किल है। अक्सर तालिब-इल्मों ने यह ज़रूरी कोर्स नहीं लिया। मुसलमानों में से सिर्फ़ मैंने यह कोर्स लिया है।

बाज़ दोस्तों ने बलिहाज़ॅ सुहूलत यह राय दी थी कि फ़ारसी ले लूँ। मगर मैंने इसलिए पसन्द न किया कि कोर्स की किताबों में से अक्सर मेरी देखी हुई हैं। साल भर तक उन्हीं को उलट-फेर कर पढ़ने से दिल उकता जायगा। दूसरे उन किताबों में कोई ऐसी बात नहीं मालूम होती जो सीखने के लायक़ हो। अगर मैं साइंस न लेता तो अ़रबी लेता। मगर जानता था कि साइंस के लिए अक्सर आप ताकीद फ़र्माते रहे हैं। इसलिए मैंने उसी को तर्जीह दी। और वाक़ई मुझको साइंस के पढ़ने का ज़ाती शौक़ है। अक्सर तालिबइल्मों का इरादः ला क्लास में नाम लिखवाने का है। मैं आजकल मन्तिक़ की किताब को बजाए ख़ुद पढ़ रहा हूँ। जो रिसाले मन्तिक़ के आपने घर पर पढ़ा दिये थे उनसे बहुत मदद मिली। पोलीटिकल इकानमी एक नया मज़मून है, मगर दिलचस्पी से खाली नहीं।

जनाब वालिदः साहिबा को तस्लीम और सब को दर्जः ब दर्जः सलामों-दुआ। अर्ज़ दीगर यह है कि माली से ताकीद कर दीजिएगा कि मेरे फूलों के नाँदों की अच्छी तरह ख़बरगीरी करे। मुझे खौफ़ है कि वह बाज़ औक़ात लापरवाई कर जाता है।

अरीज़ए फ़िदवी[५] बाक़र

ख़त आबिदहुसैन का अपने बड़े बेटे के नाम

बाक़रहुसैन ज़ाद क़द्रहू[६]। बाद दुआ के मालूम हो कि मुझे तुम्हारे इंट्रेंस पास करने का हाल गज़ट-सरकारी से मालूम हो गया था और मैं तुम्हें इस मौक़े पर मुबारकबाद का ख़त लिखने वाला था कि तुम्हारा ख़त आया। मुझे इस बात के मालूम होने से बड़ी ख़ुशी हुई कि तुमने अभी से एफ़० ए० के इम्तहान की तैयारी शुरू कर दी। इंतख़ाबॅ-मज़ामीन[७] के बारे में अच्छा किया तुमने मुझसे राय तलब करली।

अंग्रेज़ी और रियाज़ी मज़मून बहुत ज़रूरी हैं। इनके बारे में तो कुछ कहना ही नहीं है। शायद एफ़० ए० की रियाज़ी में यह मज़ामीन हैं। इल्म-हिसाब कामिल मय इल्मॅ-हिसाबॅ-नज़री, जब्रो मुक़ाबलः, हिन्दसः छठा मक़ालः मय ग्यारहवें मक़ाले के और अव्वल के चार मक़ालों पर नज़रॅसानी, क़िताअ मख़रूतात बहसॅ मुतनाक़िस

---

१ अध्याय　२ छठा　३ ग्यारहवाँ　४ टेग्नामेट्री　५ विनीत प्रार्थी　६ उन्नति करो　७ विषय-चयन।

जिसे वैज़वी कहते हैं और मुतक़ाफ़ी यानी पैराबोलः, शायद मुतज़ाएद की बहस एफ० ए० में छुड़ा दी गई है। मैं बहुत खुश होता अगर वह भी शामिल होती। मगर मैं तुमसे फ़र्माइश करता हूँ कि मुतज़ाइद (यानी हाईपराबोलः) की बहस बजाय खुद देख जाना। इल्म मुसल्लस सतही और उसके साथ लोगारिस्म का इस्तेमाल बहुत ही कारआमद है। एक किताब उम्दः चैम्बर्स मैथमेटिकल टेबिल्स की मैं बतौर इनाम तुमको रवाना करता हूँ। इस किताब से तुमको रियाज़ीयात के अमल में बहुत मदद मिलेगी। इस्टाटिक्स पर खास तवज्जुः करना। इस इल्म की मुल्क को और क़ौम को सख्त ज़रूरत है। गर्मियों की तातील में घर आओगे तो कलों के नमूने मेरे हाथ के बनाये हुये देखना। उनके फ़ायदे और इस्तेमाल के तरीक़े मैं तुम्हें अमली तौर से बताऊँगा।

एक ग़लत मक़ूलः आज कल बहुत मशहूर हो गया है। क्या अजब है कि तुमने भी सुना हो कि मुसलमानों का दिमाग़ रियाज़ी की तहसील[१] के नाक़ाबिल है। मैं तुमको यक़ीन दिलाता हूँ कि इस बात की कोई अस्ल[२] नहीं है। जब तुम मन्तिक़ पढ़ोगे तो तुमको मालूम होगा कि यह मक़ूलः[३] मिन्जुम्लए[४] इस्तिक़राय्यातॅ-नाक़िस[५] है। और इस्तिक़राए-नाक़िस इल्म और यक़ीन के लिए मुफ़ीद नहीं। अगले मुसलमानों ने खास इसी इल्म रियाज़ी में बहुत कुछ कर दिखाया है। तुमको मालूम हो कि अगले निज़ामॅ तालीमी में पन्द्रह मक़ाले उक़्लैदिस के इब्तिदाई दर्स[६] में और बत्तीस मक़ाले मुतवस्सितात[७] के दर्स औसत में दाख़िल थे और उसके बाद मजस्ती पढ़ाई जाती थी। यह किताबें निज़ामॅ बत्लीमूस इल्म हैअत[८] के बयान में है। अगर्चे निज़ामॅ बतलीमूस अब ग़लत साबित हुआ लेकिन यही किताब एक ज़माने में तमाम उलमाए हैअत की मुसनद अिलैः[९] थी और मजस्ती पहले पहल अ़रबी से लातीनी ज़बान में तर्जुमः हुई जिससे तमाम योरुप ने इल्म हैअत सीखा और मजस्ती के मिस्ल और किताबें भी अरबी से योरुपी ज़बानों में तर्जुमः हुई हैं। इससे साफ़ ज़ाहिर है कि मुसलमान इल्मॅ हैअत में भी अह्ले योरुप के उस्ताद हैं और इससे उलमाए योरप को इन्कार नहीं हो सकता। यह किताबें जिनका ज़िक्र किया गया है खुद मेरे कुतुबखाने में मौजूद हैं और एम० ए० कोर्स से किसी तरह कमपायः[१०] नहीं हैं। फ़ारसी एफ़. ए. में न लेना तुम्हारे लिए बहुत मुनासिब बल्कि ज़रूरी था। यह जो तुमने लिखा है कि अगर मैं साइंस न लेता तो अ़रबी ज़रूर लेता। जब तुमने खुद ही साइंस को तर्जीह देकर इख्तियार किया तो अब मुझे कुछ कहना नहीं है। मैं हमेशा तुमको समझाया किया हूँ कि

---

१ गणित विद्या का उपार्जन २ जड़ ३ कथन ४ सब में से ५ कुछ बातें देख कर व्यर्थ धारणा बना लेना ६ प्रारम्भिक कोर्स ७ माध्यमिक ८ खगोल शास्त्र ९ अत्यंत प्रामाणिक १० निम्न स्तर।

मदरसों की पढ़ाई और इम्तहानों की कामयाबी तहसीलें इल्म[१] का मक़्सूद[२] नहीं है बल्कि उससे एक हैसियत इज़हारें लियाक़त[३] की और एक मलकः तहसील[४] इल्म का हासिल हो जाता है। अगर तुमको अरबी पढ़ने का शौक़ है तो बी० ए० पास करने के बाद बजाए खुद पढ़ लेना। यह आम मक़ूलः मशहूरात[५] से है कि अरबी, फ़ारसी, अंग्रेज़ी स्कूल में नहीं आती। क्योंकि मक्तबों और मदरसों में मक़्सूद बिज़्ज़ात[६] अंग्रेज़ी है न कि अरबी। फ़ारसी तो कोई ऐसी चीज़ नहीं। लेकिन अरबी का इल्में अदब और फिर माक़ूलात[७] व मन्क़ूलात[८] वग़ैरः मिला के बहुत ही वसीअ[९] लिटरेचर हो जाता है, जिसके लिए एक उम्र मुतालअः[१०] और ख्वांदगी[११] की ज़रूरत है। मैं हरगिज़ किसी हिन्दू या मुसलमान नौजवान तालिबइल्म को यह राय न दूंगा कि वह मदरसे की तालीम का वक़्त जो निहायत ही महदूद[१२] और बेशक़ीमत है, फ़ारसी या अरबी-संस्कृत के पढ़ने में ज़ाया करे। उसके चन्द वुजूह हैं।

१. इन ज़बानों के पढ़ने या उलूम हासिल करने से क़ौमी हैसियत और मज़हब का हिफ़्ज़[१३] और बक़ा[१४] अगर मंज़ूर है तो वह इस क़िस्म की पढ़ाई से जो मदरसों में होती है हासिल नहीं हो सकता।

२. तक्मील[१५] का दर्जा हासिल नहीं हो सकता। किताबों का इन्तखाब इस क़िस्म का होता है कि उनको अंग्रेज़ी किताबों के साथ ही साथ पढ़ने से एक क़िस्म का तनफ़्फ़ुर[१६] अपने उलूम[१७] से पैदा हो और कोई नफ़ा नहीं हो सकता। मसलन जो तलबः ऐसी उम्दः किताबें जैसे ब्लेकी की किताब सेल्फ कल्चर, हक्सिले की किताब के सरमन्स या हेल्प की किताब एसेज़ वग़ैरः पढ़ता हो उसके सामने वह किताबें जो लग़ो मुबालग़ात[१८] और झूठी खुशामदों से भरी हुई हैं, उनकी क्या वक़्त हो सकती है। मुझे तअज्जुब है कि निसाबें तालीम के इन्तखाब के वक़्त मेम्बरानें कमेटी फ़ारसी और अरबी की उम्दः किताबों के नाम क्यों भूल जाते हैं। क्या फ़ारसी और अरबी में सिर्फ़ इतनी ही किताबें हैं जिनका इन्तखाब अक्सर निसाबहाए तालीम[१९] में देखा गया है।

मेरा इरादः है कि एफ़० ए० के पास करने के बाद तुमसे बजाए बी० ए० के बी० एस० सी० का इम्तहान दिलवाऊँगा और इन्शाअल्लाह उसकी कामयाबी के बाद तुम्हारी तालीम घर पर होगी। कहीं और तालिबइल्मों की देखा-देखी तुम ला-क्लास में नाम न लिखवा लेना। और अगर ऐसा करना भी तो सिर्फ़ इल्म हासिल करने के लिए; न इस ग़रज़ से कि वकालत का इम्तहान देकर उसको एक ज़रीअः

---

१ विद्योपार्जन २ अभीष्ट ३ योग्यता-प्रकाशन ४ रुचि, अभ्यास ५ प्रसिद्ध कहावतों ६ लक्ष्य ७ शास्त्र ८ दर्शन ९ विस्तृत १० अध्ययन ११ पढ़ाई १२ सीमित १३ रक्षा १४ स्थायित्व १५ पूर्णता १६ अरुचि १७ विद्याओं से शास्त्रों से १८ व्यर्थ अत्योक्तियों १९ शिक्षा के कोर्सों में।

अख़ज़ॅ माश[१] का क़रार दो। मेरा यह मक़सद नहीं है कि वकालत का पेशः बुरा है, या इस पेशे के लोग दियानतदार[२] नहीं होते जैसा कि मशहूर है; मगर इसमें भी शक नहीं कि वकालत के पेशे में इफ़ात[३] व तफ़ीत[४] की तरग़ीब[५] वेशुमार हैं और एहतियात[६] दुश्वार। ग़रज़ कि खतरनाक होने में कोई शुबहा नहीं। वहरसूरत अस्लम[७] यही है कि इस अंदेशानाक[८] रास्ते से दरगुज़रो[९]।

अलावा इसके मुल्क को उसकी ज़रूरत बहुत कम है। हज़ारहा वकील और बैरिस्टर ऐट ला ख़ुदा के फ़ज़्ल से मौजूद हैं। इन उलूम का हासिल करना वाजिबॅ कफ़ाई§ बल्कि बाज़ सूरतों में वाजिबॅ ऐनी§ है जिसके जानने वाले क़ौम में कम हैं और जिसकी क़ौम और मुल्क को अज़हद[१०] ज़रूरत है।

मैंने सुना है कि तुम्हारे मदरसे में इल्म हैअत[११] का कोई इम्तहान मुक़र्रर हुआ है। मैं उसको सुनके बहुत ही ख़ुश हुआ। इस इल्म में हमारे बुज़ुर्गों ने बहुत मिहनत की थी जिसका सुबूत इल्मॅ हैअत की मब्सूत तारीखों[१२] से मिल सकता है। इस वक़्त मेरी मेज़ पर एक किताब इल्मॅ हैअत की मय एक मुख़्तसर फ़रहंग अंग्रेज़ी ज़बान में मौजूद है। रदीफ़ॅ अलिफ़ में अलिफ़ लाम (अ़रबी हरफ़ॅ तारीफ़) से जो लफ़्ज़ें शुरू होती हैं, उनका शुमार पचास के क़रीब है और अ़रबीयुल् अस्ल अल्फ़ाज़ का ज़िक्र नहीं। अगर तुम्हारे दर्जे के तालिबइल्म हैअत के क्लास में दाखिल होने के मजाज़ हों तो तुम भी ज़रूर नाम लिखवा लो। और उसके कोर्स की किताबों के नाम मुझको लिख कर भेज दो। जो किताबें मेरे कुतुबखाने में मौजूद हैं मैं भेज दूंगा, बाक़ी कलकत्ते से मंगवा लेना। गर्मियों की तातील में हम तुम्हें वह आलात इल्म हैअत के दिखायेंगे जो हमने अपने हाथ से बनाए हैं और वक़्तन फ़वक़्तन उन मुशाहदात[१३] का भी तज़्किरः करेंगे जो उनसे हो सकते हैं।

रक़ीमए दुआ[१४] आबिद अज़ देहली २१ जून, १८८९ ई०

एक और ख़त

मख़्दूमॅ-बन्दः (आदणीय पूज्य) जनाब मिर्ज़ा साहब तस्लीम। मैंने ख़ारिजन[१५] सुना है कि आपने इस ज़माने में कोई किताब जर्रे सक़ील[१६] में अ़रबी ज़बान से उर्दू में तर्जुमः

१ जीविकार्जन का साधन २ ईमानदार, विश्वसनीय ३ बहुतायत ४ दुरुपयोग ५ प्रलोभन, प्रेरणा ६ सावधानी, संयम ७ भला ८ खतरनाक ९ बचे रहो १० अत्यंत ११ खगोल शास्त्र १२ प्रामाणिक इतिहासों १३ प्रयोगों १४ दुआ लिखने वाला १५ उड़ते-उड़ते १६ भारी बोझ खींचने-उठाने की विद्या।

§ 'वाजिबॅ ऐनी' वह कर्त्तव्य हैं जो किसी भी सूरत में छोड़े नहीं जा सकते, जैसे नमाज़; 'वाजिबॅ क़फाई' वह कर्त्तव्य हैं जो किसी एक व्यक्ति के कर देने पर दूसरों पर वह ज़रूरी नहीं, जैसे आग लगने पर बुझाना सब का फ़र्ज़ है लेकिन किसी के बुझा देने पर दूसरों पर वह फ़र्ज़ नहीं रहता।

की है। अगर वह किताब छप गई हो तो उसका एक नुस्खा मुझको भेज दीजिए और अगर न छपी हो तो किसी औसत दर्जे के कातिब से लिखवाकर रवाना फ़र्माइए। मैं बहुत ही मम्नून[१] हूँगा। इतना अदब के साथ और अर्ज़ करना चाहता हूँ कि फ़ी ज़माना इस इल्म में बहुत तरक़्क़ी हुई है। आपको मालूम है कि आपकी हर तस्नीफ़[२] को निहायत क़द्र की निगाह से देखता हूँ। अगर आप किसी अंग्रेज़ी किताब का तर्जुमः फ़र्माते तो शायद क़ौम और मुल्क के लिए ज़ियादः मुफ़ीद होता।

आपका नियाज़मन्दे क़दीम ज़ुहूरुद्दीन एम. ए.

क़द्रदानँ बन्दः मौलवी ज़ुहूरुद्दीन साहब एम. ए., देहलवी। तस्लीम।

बजवाब आपके इनायतनामः मोअर्रिख़े २१ जून माह व सनॅ हाल आरिज़ॅ-मुद्दआ[३] हूँ। मैंने वाक़ई एक रिसालः जर्रे सक़ीलॅ अमली का जिसके दीबाचे में मुसन्निफ़ ने अपना नाम अबू अली लिखा है, फ़ारसी से उर्दू में तर्ज़ुमा किया है। इस रिसाले की तस्नीफ़ से क़ौम को जर्रे सक़ीलॅ अमली का सिखाना मंज़ूर नहीं है। इस मतलब के लिए बक़ौल आपके कोई किताब अंग्रेज़ी की तर्जुमः करना ज़रूरी है। बल्कि इस तर्जुमे से दो मक़्सद हैं। एक तो यह कि होनहार नौजवान तालिबइल्मों की निगाह में क़ौमी वक़्त का क़ाइम रखना मंज़ूर है जिसकी मेरे नज़दीक इस ज़माने में अशद ज़रूरत है। दूसरे एक अम्र और इस किताब के तर्जुमे का मुक़्तज़ी[४] हुआ; वह यह कि मीकानात बसीतः जिनका ज़िक्र इस मुख़्तसर रिसाले में है बिऐने[५] वही है जो इस ज़माने की किताबों में पाए जाते हैं। मसलन महो, बेरहम, दोलाब, लोलब, अल्फ़ीन वग़ैरः। इस अमली रिसाले से इस बात का पता चलता है कि बुरहानी तौर से[६] यह इल्म उसी ज़माने में एक हद तक तरक़्क़ी कर चुका था। अफ़सोस कोई किताब बुरहानी दस्तयाब नहीं हुई। हस्बुलहुक्म आपके एक नक़्ल रिसालए मतलूबः की रवाना करता हूँ। अगर देहली में कोई कारखाना इस किताब के छापने का ज़िम्मः ले तो बेतकल्लुफ़ बिला तअय्युन हक़्क़े तालीफ़[७] दे दीजिएगा।

एक ख़ुशख़बरी आपको और सुनाता हूँ कि एक नुस्ख़ा मोहक़्क़िक़ॅ तूसी[८] की उक्लैदिस का जिसमें पूरे पन्द्रह मक़ाले[९] मय हवाशी और तालीक़ात[१०] वग़ैरः के हैं, मुझको दस्तयाब हो गया है। मेरा मुसम्मम[११] इरादः है कि उसको बिजिंसही[१२] छपवा दूँ। क्या अच्छा होता अगर यह किताब उर्दू, अंग्रेज़ी दोनों ज़बानों में तर्जुमः होकर शाया की जाती। मगर अफ़सोस कि मुझको ज़माना मुहलत नहीं देता, और कोई

---

१ अनुगृहीत २ रचना ३ निवेदन करने जा रहा हूँ ४ इच्छुक ५ बिलकुल अनुरूप ६ प्रामाणिक रूप में ७ बिला पारिश्रमिक-ठहराव प्रकाशन का स्वत्व ८ तूस देश का दार्शनिक ९ ज्यामिति के साध्य १० टिप्पणी-प्रमाण-संदर्भ सहित ११ दृढ़ १२ जैसे का तैसा।

साहब इस बार को अपने ज़िम्मे नहीं लेते। बाक़र ने बी० एस-सी० का इम्तहान माशाअल्लाह पास कर लिया। मगर वह अभी अ़रबी ज़बान के इस्तलाहातें इल्मी[1] से नाबलद[2] है, वर्ना उसको इस काम में अपना शरीक कर लेता। बाक़र ने मेरे कहने से वकालत के इम्तहान की कोशिश नहीं की और न उसे मिस्ल और हौसलःमन्द नौजवानों के नौकरी की फ़िक्र है। उम्मीद है कि इल्मी मक़ासिद[3] में वह मेरा मुईन[4] होगा। बिलफ़ेल इसी ग़रज़ से मैंने उसको अ़रबी माक़ूलात[5] पढ़ाना शुरू किया है। अस्सऽ.यु मिन्नी वल् इत्मामु मिनल्लाह[6]।

देहली में एक साहब मीर इहसानअली नामे कश्मीरी दरवाज़े के क़रीब तशरीफ़ रखते हैं। उनके आबा व अज्दाद[7] उलूमें रियाज़ियः[8] में अपने अहद के[9] कामिलीन[10] से शुमार किये जाते थे। जब मैं देहली गया तो बित्तख्सीस[11] उनसे मिला था। बेचारे बहुत परेशान-हाल थे। उनके पास एक उस्तुर्लाब[12] जिसका क़ुत्र[13] दस इंच था, लाहौर की बनी हुई निहायत ही उम्दः थी, और वह बेचते थे। पाँच सौ रुपियः क़ीमत कहते थे। अफ़सोस उस वक़्त मेरे पास रुपियः न था। आप बराहे इनायत उनसे दर्याफ़्त कीजिए। अगर वह अब तक न बिकी हो तो मेरे वास्ते ख़रीद लीजिए।

आपके चचा मौलवी रियाज़ुद्दीन साहब उनसे अच्छी तरह वाक़िफ़ हैं। इसलिए आपको उनकी तलाश करने में दिक़्क़त न होगी।

नियाज़केश आबिद

मिर्ज़ा साहब मुअज़्ज़में[14] बन्दः, तस्लीम। रिसालए मुर्सलः[15] पहुँचा। यह भी मालूम हुआ कि यह रिसला आपके हाथ का लिखा हुआ है। मुझे इसका फ़ख़् हासिल हुआ कि एक किताब आपके दस्तख़त खास से मेरे कुतुबख़ाने में शामिल हुई। मगर आपने क्यों तकलीफ़ की। किसी से लिखवा दिया होता। वाक़ई क्या उम्दः रिसाला है। और तर्जुमे का हक़ आपने ख़ूब अदा किया है। और कुछ लिखते हुए डरता हूँ, इसलिए कि आप ज़ियादः तारीफ़ को पसन्द नहीं फ़र्माते, अगर्चे वह अम्रें हक़ ही क्यों न हो।

चचाजान से दर्याफ़्त करके मैं ख़ुद मीर इहसानअली के मकान पर गया था। बिलफ़ेल वह पटियाले में हैं। मगर उनके साहबज़ादे की ज़बानी मालूम हुआ कि वह उस्तुर्लाब, एक साहब जर्मनी से आये थे, वह सात सौ रुपये को ख़रीद ले गये।

इस बात के दर्याफ़्त होने से मुझको कुछ ज़ियादः अफ़सोस नहीं हुआ। इस

---

१ पारिभाषिक और व्यञ्जनात्मक ज्ञान २ अनजान ३ उद्देश्यों ४ सहायक ५ दर्शन विज्ञान ६ मनुष्य यत्न करता है, परमात्मा उसकी पूर्ति करता है ७ पूर्वज ८ गणितशास्त्र ९ समय के १० पूर्ण दक्ष ११ ख़ास तौर पर १२ ग्रहों के नापने का यंत्र १३ व्यास १४ परमश्रेष्ठ १५ भेजा हुआ।

लिए कि मैं खूब जानता हूँ कि आप उसूलॅ-उलूम से बाख़बर हैं और मैं जब लखनऊ गया था तो आपके हाथ का बना हुआ उस्तुर्लाब ख़ुद देखा था। मेरा एतिक़ाद मुझे यक़ीन दिलाता है कि मीर इहसानअली वाला उस्तुर्लाब उससे किसी तरह बेहतर न होगा। बिल्फ़ेल आपके पाँच सौ रुपये की बचत हो गई। वर्ना मुझको तामीलॅ इर्शाद ज़रूर ही करना होती और पाँच सौ रुपए आपके बिला ज़रूरत सर्फ़ हो जाते। मुहक़्क़क़ॅ तूसी की उक़्लैदस महश्शा[1] के देखने का मै भी मुश्ताक़[2] हूँ। मुमकिन हो तो उसे छपवा दीजिए। भाई बाक़रहुसैन सल्लमहू के इम्तहान में पास होने की ख़बर मुझे उनके ख़त से मालूम हो चुकी थी, और उनको मैं मुबारक-बाद[3] भी दे चुका हूँ। आपकी तहरीर से मालूम हुआ कि आप अपने मिस्ल उनको भी तारिकुद्दुन्या[4] बनाना चाहते हैं, मगर यह नहीं मालूम हुआ कि उनका ज़ाती मन्शा क्या है। क्या वह अपनी आइन्दः ज़िन्दगी को मुल्क और क़ौम पर निसार करने के लिए आमादः हो गए! अगर ऐसा किया तो बहुत बुरा किया। चचाजान की तरफ़ से आपको सलामॅ शौक़ लिखकर इस अरीज़े[5] को ख़त्म करता हूँ।

फ़क़त

अक़ीदत आईन

ज़ुहूरुद्दीन

इनायतफ़र्माए-बेकराँ[6] जनाब मिर्ज़ा साहब दामः मज्दुहू,[7] तस्लीम।

यहाँ बहम वुजूह[8] ख़ैरियत है और आपकी ख़ैरोआफ़ियत क़ाज़ियुल्हाजात[9] से शब व रोज़ नेक मुस्तद्आी[10] रहता हूँ। दरीं बिला बाअसॅ तहरीरॅ नियाज़नामए हाज़: यह है कि नूरचश्मी[11]...की तक़रीबॅ कतख़ुदाई[12] होने वाली है। उसके वास्ते कुछ अस्बाब[13] तो पहले से मौजूद है और कुछ अस्बाब ख़रीदना है। हुसैनुद्दीन की वालिदः ने कल शब को यह सलाह दी कि मिर्ज़ा साहब बिल्फ़ेल लखनऊ में तश्रीफ़ रखते हैं। जो कुछ अस्बाब ख़रीदना है उनको लिख भेजो, वह ख़रीद कराके भेज दें। अगर्चे मुझे मालूम था कि आप लखनऊ में हैं मगर यह खयाल कभी नहीं आया था कि आपको इस बारए-ख़ास[14] में तकलीफ़ दूँ। बहरसूरत एक फ़िहरिस्तॅ अस्बाबॅ ख़रीदनी मलफ़ूफ़ॅ ख़तॅ हाज़ा[15] है। इसके मुआफ़िक़ किसी आदमॅ-मोतबर की मार्फ़त ख़रीद करके बज़रिये रेलवे बहुत जल्द रवाना फ़र्माइए कि ऐन इहसान होगा। ख़ुदा करे आप शादी के वक़्त तक यहाँ आजायँ तो इस कारॅ ख़ैर में मुझको आपसे बहुत मदद मिलेगी।

१ ज्यामिति सटिप्पण २ उत्सुक ३ ख़ुदा उसकी सलामत रखे ४ विरक्त ५ निवेदन-पत्र ६ असीम अनुग्रहकर्ता ७ हमेशा आपकी बुज़ुर्गी रहे ८ पूरे तौर पर ९ ख़ुदा से १० प्रार्थी ११ सुपुत्री १२ विवाह १३ जहेज़ १४ कष्ट विशेष १५ इस लिफ़ाफ़े के साथ।

यह भी इत्तलाअन गुजारिश किया जाता है कि नूरचश्मी की शादी का जहाँ से पहले पयाम हुआ था और फिर बादहू कुछ झगड़े निकल आए थे, वहीं तक़र्रुर[1] हो गया। हुसैनुद्दीन की वालिदः कुछ ज़ियादः ख़ुश नहीं हैं मगर क़ौमिय्यत के लिहाज़ से मैं राज़ी हो गया।

हुसैनुद्दीन की वालिदः का यह भी ख़याल था कि अस्बाबॅ जहेज़ वग़ैरः के ख़रीदने की क्या ज़रूरत है, और लड़के के वालिदैन भी इसी बात पर ज़ोर देते हैं कि नक़्द दे दिया जाय। मगर मेरी राय है कि जब देना ही है तो नाम करके क्यों न दिया जाय। चार अपने परायों को भी मालूम हो जाय कि क्या-क्या दिया गया और रुपयों की थैलियाँ या नोट अगर चुपके से दिये गये तो उसे कौन जानेगा।

रजबॅ आइन्दः की अवाएल[2] तारीख़ों में शादी से फ़राग़त हो जायगी। ख़ैर मिर्ज़ा साहब, ख़ुदा ने इस फ़र्ज़ से भी अदा किया। सब छोटे-बड़ों की तरफ़ से दुआ-बन्दगी-सलाम क़ुबूल हो।

मुक़र्रर अर्ज़ यह है कि अगर किसी वजह से आपका आना न हो सके तो अज़ीज़ी बाक़रहुसैन और बशर्तॅ इमकान[3] उनकी वालिदः को ज़रूर रवानः कर दीजिएगा। वर्नः शिकायत होगी; बल्कि मैं तो कहता हूँ कि अगर आप इस मौक़े पर तशरीफ़ रखते होते तो बेहतर था। फ़क़त्।

राक़िम हिदायतहुसैन पेशकार

सैयद साहबॅ मन, तस्लीम, मुबारकबाद। इनायतनामः आपका आया। अगरचॅ शादी ब्याह के मौक़े पर कोई अम्र हौसलामंद माँ-बाप के ख़िलाफ़ॅ तबीयत लिखना अक्सर नागवार होता है, लेकिन मैं ख़याल करता हूँ कि हर शख़्स अपनी आज़ाद राय के ज़ाहिर करने पर किसी तरह मना नहीं किया जा सकता। आपके ख़त से मालूम हुआ कि दो अम्रों[4] में माबैन[5] आपकी राय और हुसैनुद्दीन सल्लमहू की वालिदः यानी आपके अह्लख़ानः[6] की राय के इख़्तलाफ़ है। और दोनों अम्रों में हक़ आपकी बीवी की तरफ़ है। मगर कुछ लिखते नहीं बन पड़ता। अगर शादी का तक़र्रुर हो गया और मुहाइदे तर्फ़ैन से तै पा गए, तो अब यह लिखना फ़ुज़ूल है कि आपने अच्छा न किया। माशाअल्लाह साहबज़ादी आपकी ख्वान्दः[7] और निहायत ही सलीमुत्तब्अ[8] है। और वह नौजवान जो आपका दामाद होने वाला है, मैंने सुना है (ख़ुदा करे झूठ हो) अलिफ़ के नाम बे भी नहीं जानता। क़ौमिय्यत के बाब में 'हर कि शक आरद काफ़िर गर्दद[9]'। मगर जनाब अगर लड़की की आफ़ियत[10] मंज़ूर थी तो इस जाहिलाना क़ौमिय्यत के ख़याल को चूल्हे में डाला होता। अब मजबूरन यह मुझे

---

१ निश्चय २ आरंभिक ३ यथासंभव ४ बातों में ५ बीच में ६ गृहस्वामिनी ७ शिक्षित ८ सौम्य ९ क़ौमिय्यत में शक करना तो मानो कुफ़्र है १० सुख।

और मेरे मिस्ल आपके और दिलसोज़ (दिलजले) दोस्तों को यह कहना ही पड़ेगा कि अल्ख़ैर फ़ी मा वक़ा[१]। यह जो आपने एक मर्तबा फ़र्माया था कि अगर्चे लड़का जाहिल है लेकिन निहायत ही ग़रीब और कमसुख़न है, इसका मैं क़ायल नहीं। इसलिए कि आपको इसका तजुर्बः किस तरह हुआ और अगर हुआ भी तो वह ग़लत उसूल पर मब्नी[२] है। सोना जाने कसे और आदमी जाने बसे। जनाब वह लड़का जब आपके मकान पर बतौर बरदिखौवे के आया होगा तो क्या आपसे उसी वक़्त गाली गलौज करता या हुश्त-मुश्त करता, तो आपको उसकी जाहिलीयत का यक़ीन होता। जाहिल से सिवाए जाहिलीयत के और किस बात की तवक़्क़ो[३] हो सकती है। बहर-सूरत जो कुछ आपने किया मैं तो उसे कभी अच्छा न कहूँगा। मगर हर कसे मसलहतँ ख़ेश निको मीदानद[४]। दूसरा अम्र यह है कि भाभी साहिबा की राय बहुत ठीक है कि नक़्द रुपया दे दिया जाय। अफ़सोस है कि आप ऐसे लायक़ ख्वान्दः शख़्स के ऐसे पस्त खयालात हों। अव्वल तो नाम का खयाल ही लग़ो है और अगर बिलफ़र्ज़ हो भी तो अपने ज़िले के किसी लोकल अख़बार में छपवा दीजिए या मुझको इजाज़त दीजिए मैं छपवा दूंगा कि मीर हिदायतहुसैन साहब पेशकार ने अपनी बेटी के जहेज़ में पाँच हज़ार रुपये दिये। नक़्द रुपया देने में एक कितना बड़ा यह नफ़ा है कि अगर दामाद आपका बख़याल आपके सलीमुत्तब्अ् और नेक-नफ़्स[५] है तो एक सरमायः[६] उसके पास मुहैया हो जायगा, जिससे वह किसी क़िस्म की तिजारत कर लेगा। ज़ेवर वग़ैरः के देने को मैं चन्दाँ बुरा नहीं ख़याल करता, इस लिए कि उसमें नुक़सान कम है। मगर यह लचका फट्टे के कपड़े, ताम्बे के बर्तन, पलँग, पीढ़ी और तमाम अस्बाब जिसकी बिलफ़ेल कोई ज़रूरत नहीं है, सिवाए दामों पर ख़रीद करके लड़की के साथ कर देने में क्या ऐसी रुसूख़ियत[७] है। अगर ख़ुदा न ख्वास्तः लड़के वाले इस क़दर मुहताज हैं कि उनके चूल्हे पर तवा तक नहीं है, उस सूरत में अलबत्ता थोड़ा सा अस्बाब हस्बँ ज़रूरत दे दीजिए ताकि आपकी ख़ुशी हो जाय। वर्ना मैं तो इसकी भी राय न दूंगा। लड़का या उसके वालिदैन हस्ब ज़रूरत ख़रीद कर लेंगे। क़ता नज़र फ़र्ज़ें इन्सानी और उख़ूवतँ-इस्लामी[८] के, मुझको आपसे मुहब्बत है, इसलिए यह चन्द कलमे बतौरँ नसीहत अपना फ़र्ज़ समझ के लिख दिये हैं। अभी रजब के बहुत दिन बाक़ी हैं। उम्मीद कि आप इन उमूर पर कामिल ग़ौर करके जवाब तहरीर फ़र्मायेंगे। अगर मेरी राय मक़बूल न हो तो फ़िहरिस्त आपकी मैंने इह्तियात से संदूक़चे में रख छोड़ी है। उसी फ़िहरिस्त के मुताबिक़ या अगर कुछ तरमीम कीजिए तो फ़िहरिस्त तरमीमशुदः के बमूजिब कुल अस्बाब मैं अपने

---

१ ख़ैर, जो हुआ वह ठीक हुआ २ निर्धारित ३ आशा ४ हर आदमी अपनी मसलहत को अच्छा ही समझता है ५ सौम्य और चरित्रवान ६ पूंजी ७ विशेषता ८ इस्लामी भाईचारा।

हाथों हत्तल-इमकान[१] निहायत किफ़ायत से खरीद करके रवाना कर दूँगा। और हाँ, खूब याद आया। मैं अफ़सोस के साथ लिखता हूँ कि मेरी और वालिदए बाक़र-हुसैन की शिरकत इस तक़रीब में नहीं हो सकती। और न मैं उसकी ज़ियादा ज़रूरत समझता हूँ। अज़ीज़ी बाक़रहुसैन को आपकी खुशी के लिए ज़रूर भेज देता। मगर वह आजकल मेरे साथ इल्मुल् एहजाज़ की एक मोतबर अरबी किताब के तर्जुमः करने में मसरूफ़ है। मीर साहब मेरी साफ़गोई[२] से खफ़ा न हो जाइएगा। मेरे खत के हर फ़िक़्रे को कम अज़् कम दो बार पढ़िए और उसके नताएज[३] पर ग़ौर कीजिए। बावजूद इल्मो फ़ज़्ल के भी इन्सान अगर अपने और अपने मुतअल्लिक़ीन[४] और अपने अहबाब[५] की बुराई-भलाई पर नज़र न रखे तो हैफ़[६] है।

भाभी साहबा को सलाम और बच्चों को दुआ।

रक़ीमः खाकसार-आबिद

जनाब मिर्ज़ा साहब मुअज़्ज़में बन्दः दाम मज्दकुम, तस्लीम। आपके खत का एक-एक फ़िक़्रः मोतियों में तौलने के क़ाबिल है। और जो कुछ आपने लिखा है उसकी हक़ीक़त को मैं खूब समझे हुए हूँ, मगर बाज़ वजूह से मैं मजबूर हूँ। और मैं उसके हर लफ़्ज़ पर अमल करता मगर हमचश्मों[७] खुसूसन अज़ीज़ों की ताना़ज़नी का खयाल मुझे मजबूर किये देता है। बहर-सूरत मैंने फ़िहरिस्ते अस्बाब में बहुत तरमीम कर दी है।

लड़के के माँ-बाप बहुत मुतमव्विल[८] हैं। शायद इसकी नौबत न आये कि किसी दुकान या कारखानः करने की बिलफ़ेल ज़रूरत हो, और उन लोगों की बज़ाहिर यही खुशी मालूम होती है कि हसबे मामूल[९] जहेज़ दिया जाय, क्योंकि उधर बरात वग़ैरः की तैयारियाँ बहुत धूमधाम से होंगी। वह लोग चाहते हैं कि उसी तैयारी की हैसियत के मुआफ़िक़ इधर भी सामान किया जाय।

इस शादी में आपके शरीक न होने का मुझे मलाल हुआ। अस्बाब बहुत जल्द फ़र्माइए।

नियाज़मन्द हिदायतहुसैन

मीर साहबे मन, तस्लीम। आपका खत आया। फ़िहरिस्ते तरमीमशुदः[१०] और पहली फ़िहरिस्त को मैंने मिला कर देखा। सिर्फ़ सौ-सवा सौ रुपये का फ़र्क़ है। आप लिखते हैं कि मेरे खत का हर लफ़्ज़ मोतियों में तौलने के लायक़ है।

---

१ यथाशक्ति २ स्पष्टवादिता ३ परिणामों ४ सम्बन्धियों ५ सगों ६ खेद ७ दोस्तों ८ सम्पन्न ९ चलन के अनुसार १० परिवर्तित।

अगर मैं भी आपकी तरह इबारत-आराई[1] जानता होता तो इस क़द्रदानी की मोतियों से ज़ियादः किसी क़ीमती चीज़ से मिसाल देके शुक्रिया अदा करता। आप कहते हैं कि लफ़्ज़-लफ़्ज़ मोतियों में तौलने के लायक़ है। मगर अफ़सोस कि आपने उसे ठिकरियों में भी न तौला। इस लिए कि इल्म की क़द्र अमल यानी नसीहत की क़द्र उस पर कारबन्द[2] होना है। मीर साहब आख़िर आपने अपनी ज़िद की। कुछ आप पर मौक़ूफ़ नहीं। तमाम क़ौम तक़्लीद के दाम में फँसी हुई है[3]। अम्रे ग़ैरमाक़ूल पर किसी तानाज़नी का खयाल यानी चे: ? इसी मौक़े के लिए किसी उस्तादे कामिल ने यह भद्दी सी मसल कही है, 'जिसने की शरम उसके फूटे करम'। मीर साहब मैं सच कहता हूँ कि इस ग़लती में अगर सिर्फ़ आपकी ज़ात ख़ास का ज़रर[4] होता तो मुझे चन्दाँ अफ़सोस न होता। हैफ़ आप अपनी ज़ोफ़ें तबीअत[5] की वजह से एक नाकर्द:गुनाह[6] मासूम बच्ची को मारिज़े ख़तर[7] में डालते हैं। आपके ख़त की इबारत पढ़के अरब की जाहिलीयत का ज़माना और बॅअय्यि ज़म्बिन् क़ुतिलत[8] वाला मज़मून मेरी आँखों में फिर गया। लड़की को बेसमझे बूझे कहीं झोंक देना ज़िन्द: दफ़्न कर देने से बदतर है। मगर अब यह अफ़सोस बिलकुल बेमौक़: है। अस्बाब इसी हफ़्त: ख़रीद करके रवाना करता हूँ, ख़ातिर जमा रखिए।

नियाज़मन्द आबिद

मख़्दूमी व मुकर्रमी जनाब मिर्ज़ा साहब दाम बरकातकुम, तस्लीम। आपके एक दोस्त की ज़बानी मालूम हुआ कि आपने कोई किताब "रोज़ान: ज़िंदगी" के नाम से तस्नीफ़ फ़र्माई है[9]। अगर वह छप गई हो तो एक जिल्द उसकी मर्हमत फ़र्माइए[10]। मम्नून हूँगा।

ख़ादिम महादेवपरशाद

जनाब मन, अभी उस किताब के छपने की नौबत नहीं आई। और शायद वह किताब कभी न छप सके।

रक़ीमएनियाज़-आबिद

मुअज़्ज़मी जनाब मिर्ज़ा साहब, तस्लीम। मैं एक मुद्दत से आपकी तारीफ़ें सुना करता हूँ और आपके खयालात मालूम करने का मुझे कमाल शौक़ है। आपके मुख़्तसर जवाब ने मुझे बिल्कुल मायूस कर दिया। एक तो इसका सबब-तहरीर फ़र्माइए कि वह किताब क्यों न छपेगी। दूसरे अगर कोई किताब आपकी तस्नीफ़ात[11] से छपकर तैयार हो तो मुझको ज़रूर इनायत कीजिए।

अरीज़: ख़ादिम—महादेव परशाद

---

१ शब्दों का आडम्बर २ अमल करना ३ लकीर की फ़क़ीर बनी है। ४ क्षति ५ मन की दुर्बलता ६ निरपराध ७ ख़तरे में ८ जाहिलीयत के ज़माने में अरब में लड़कियाँ क़त्ल कर दी जाती थीं, उनकी बेकसी की चर्चा है ९ रचना की है १० देने की कृपा कीजिए ११ रचनाओं में से।

जनाव मेरी तस्नीफ़ से जो किताबें छपी हैं वह सब इल्मी हैं। फ़िहरिस्त कुतुबे मतबूअ:[१] की रवाना करता हूँ। जो किताब मतलूव[२] हो पब्लिशर को खत लिखकर मँगवा लीजिए।

"रोज़ानः ज़िंदगी" के न छापने की वजह यह है कि यह मुख्तसर किताब मैंने मिर्ज़ा रुसवा साहव की फ़र्माइश से लिखी थी। वह उनके हवाले कर दी। मिर्ज़ा साहव ने जो मेरी लाइफ़ तहरीर फ़र्माई है, उसमें अक्सर मज़ामीन इस रिसाले के मौजूद हैं। क्योंकि किताव "रोज़ानः ज़िंदगी" का तअल्लुक़ बित्तख्सीस मेरी ज़ातियात से था[३], जिसको मैंने सीधे-सादे लफ़्ज़ों में लिख दिया था। मिर्ज़ा साहव ने उसको शायराना सिताइश[४] और दोस्ताना नवाज़िश[५] के साथ खल्तॆ मवहस करके[६] एक अजीब चीज बना दिया जिसको या वह खुद समझ सकते हैं या ऐसे असहाव जिनको नाविल देखने का शौक़ है। खुलासा यह कि मेरे वाक़िआत को एक दिलचस्प फ़साना वना दिया। मेरी पूरी लाइफ़ का खुलासा यह है कि "मैं एक चलती हुई कल हूँ। जिसकी कमानी ज़रूरत और जिसकी क़ूवत मजवूरी है" मैं ऐसा खयाल करता हूँ कि हर इंसान की लाइफ़ का यही खुलासा है। मेरी लाइफ़ में मेरे वाज़ निज के हालात ऐसे लिख दिये हैं जिनका मुश्तहर कहना शायद और कोई शख्स गवारा न करता। मगर मिर्ज़ा साहव का खयाल है कि इससे खल्क़ुल्लाह[७] को फ़ायदा पहुँचेगा। अगर ऐसा है और मेरी आरज़ू है कि ऐसा हो, तो इससे विहतर क्या बात है। ज़ियाद: नियाज़।

आपका खादिम आबिंद

बी० एस-सी० का इम्तहान वाक़र ने मद्रसतुल्उलूम अलीगढ़ में पास किया था। जब वालिद को अपनी कामयावी का हाल लिखा, उसके जवाब में जो खत मिर्ज़ा साहव ने अपने लायक़ फ़र्ज़न्द[८] को लिखा था उसको बिऐनिही नक़ल किये देते हैं।

अज़ीज़ अज़् जानमन मिर्ज़ा वाक़रहुसैन सल्लमहू। वाद दुआ के मालूम हो कि तुम्हारे बी० एस-सी० डिग्री का इम्तहान पास करने का हाल मालूम हुआ। इस मौक़े पर अगर मैं खुशी न ज़ाहिर करूँ तो तुम नाखुश होगे। इसलिए तुम्हारी खुशी के लिए मैंने तुम्हारे नाम के साथ, क़ब्ल इसके कि यूनीवर्सिटी के हाल से तुम गाउन पहने हुये डिप्लोमा हाथ में ले के निकलो, लफ़्ज़ बी० एस-सी० भी तुम्हारे अल्क़ाब में वढ़ा दिया। और खिलाफ़े मामूल आज तुम्हारे नाम के पहले लफ़्ज़ मिर्ज़ा भी लिखा है। वाक़ई अव तुम इस क़ौमी और खान्दानी खिताब के शायानॆशान[९] हो।

---

१ प्रकाशित पुस्तकों २ अभीष्ट ३ खास करके निजी जीवन से सम्बन्धित था ४ प्रशंसागान ५ मित्र की कृपा ६ कुछ का कुछ करके ७ ईश्वर की सृष्टि (मानव) ८ सुपुत्र ९ उपयुक्त।

मेरे नज़दीक आला दर्जे की तालीम शराफ़त का तमग़ा है, जिससे मैं ज़िन्दगी में नामुसाअदतें ज़माने[१] की वजह से महरूम[२] रहा। मगर यह अच्छी तरह याद रखना कि खाली शराफ़त का तमग़ा भूक-प्यास की तस्कीन के लिए काफ़ी नहीं है। हरएक तब्ई हाजत[३] के लिए तब्ई मशक़्क़त[४] ज़रूरी है। अगर तुम्हारे लिए कोई पानी न भरे तो जब प्यास लगेगी तुम ही को डोल ले के खुद ही कुवें पर जाना पड़ेगा। अगर कोई तुम्हारे लिए रोटी न पकाये तो तुम्हें ख़ुद ही पकाना पड़ेगी। तुम माशा-अल्लाह खुद साहबॅइल्म हो, मुझसे ज़ियादः इस बात को समझ सकते हो कि जो तह्रीक[५] जितनी क़ूवत से एक मर्तबा हुई वैसी ही तह्रीक के लिए उतनी ही क़ूवत हमेशा लाज़िमी है। अगर यह न होता तो फिर इल्म मीकानात[६] में कोई मिक़यास[७] न मुक़र्रर हो सकता। और न इस इल्म का इन्ज़िबात[८] हो सकता। निज़ामॅ शम्सी[९] और सैयारात[१०] से लेकर एक क़तरए आब बल्कि हर ज़र्रह इस मीकानी क़ानून के ताबे है। व ज़ालिक तक़्दीरुल्-अज़ीज़ुल्-हकीमु[११]।

रोटी बग़ैर मेहनत के नहीं मिल सकती। मेरी मुराद जिस्मानी और तब्ई मेहनत से है। वह शुग़ल बेकारी, जिसे लोग दिमाग़ी मेहनत कहते हैं, मेरे नज़दीक इस मक़सद के लिए मुफ़ीद नहीं। हाँ कलों की ईजाद से इंसान को यह फ़ायदा हुआ कि मशक़्क़तॅ बदनी में किफ़ायत और बचत हो गई। मगर तहरीक[१२] और मुहर्रिक[१३] की क़ूवतों में जो मसावात[१४] थी वह बिऐनिही बाक़ी है। जो काम जिस क़ूवत से होता था वह अब भी उतनी ही क़ूवत से होता है। कलों की ईजाद ने काम की मिक़दार को बढ़ा दिया। मगर इस सबब से काम की ज़रूरत दुनियाँ में ज़ियादः हो गई। और यही वजह है कि इन्सान को फिर भी फ़ुरसत न मिली। जितने काम की ज़रूरत बढ़ी कलों ने उतनी ही मेहनत का बचाव कर दिया। अगर मुआदिलत[१५] के दोनों तरफ़ से यह दोनों बराबर चीज़ें निकाल ली जायँ तो फिर भी इन्सान की ज़ाती हाजत एक तरफ़ और उसकी ज़ाती मशक़्क़त दूसरी तरफ़ बाक़ी रह जायगी। यह एक ऐसी ज़रूरी मुआदिलत है जो ता-क़यामॅ-क़ियामत (बल्कि उसके बाद भी) बाक़ी रहेगी। अगर ऐसा न होता तो कलों की ईजाद के बाद कारख़ानों में कारीगर नज़र आते न खेतों में किश्तकार[१६]।

मसलन रोटी की ज़रूरत जो सब ज़रूरतों से ज़ियादः है, उसी का हाल देखो। तमाम आलम की ज़मीनॅ मज़रूअ, एक रक़बए आराज़ीए महदूद है। इंसानों की तादाद बढ़ती जाती है। कलों की ईजाद ने जितना मेहनत का बचाव करके पैदावार को

---

१ समय की प्रतिकूलता　२ वञ्चित　३ स्वाभाविक आवश्यकता　४ स्वाभाविक श्रम　५ गति, हरकत　६ प्रकृति-ज्ञान　७ मापदण्ड, पैमाना　८ नियमित ढाँचा बन सकता　९ सौर (सूर्य से सम्बन्धित)　१० नक्षत्रों　११ यह ख़ुदा की बनाई क़ुदरत है　१२ गति, हरकत　१३ गति देने वाला　१४ संतुलन　१५ तराज़　१६ किसान।

बढ़ाया उतने ही खाने वाले बढ़ गये। खाने वालों के बढ़ने से माँग ज़ियादः हो गई, क़ीमत बढ़ गई। क़ीमत का बढ़ जाना बिऐनिही मेहनत का बढ़ जाना है। यह ज़रूर है कि मांग के बढ़ने से देसावर बढ़ जाता है और उससे क़ीमत घट जाती है। यह निस्बत हमेशा दो खास ज़िदों के माबैन घटती-बढ़ती रहती है।

एक लतीफ़ा तुम्हें सुनाते हैं। हमारे एक दोस्त थे, पादरी साहब ताज़ः विलायत। एक दिन मैं उनकी मुलाक़ात को गया। गर्मियों के दिन थे। खस की टट्टियाँ लगी थीं, पंखा-क़ुली पंखा खींच रहा था। इत्तफ़ाक़न पंखा-क़ुली किसी ज़रूरत से पंखा छोड़ के चला गया। सख्त गर्मी हो गई। उस पर कुछ ज़िक्र चला। पादरी साहब ने फ़र्माया, वाक़ई बड़ा सख्त काम है। दिन भर हाथ नहीं रुकता। अगर अबकी मैं विलायत गया, इस मक़सद के लिए एक कल बनवा लाऊँगा। साहब ने ऐसा ही किया। पंखा खींचने की कल ईजाद की। विलायत से बनवा के लाए मगर उससे क्या हुआ। मेहनत का खर्च तक़रीबन वही रहा। इस लिए कई सौ रुपया सर्फ़ करके कल तैयार हुई। फिर हिन्दोस्तान में आने-जाने का ख़र्चः। इस हिसाब से अगर देखा जाय तो वही माहवारी पड़ जायगा। पंखा-क़ुली भी बेकार न रहा होगा। हाजतों ने उसको और काम में लगा दिया होगा। खुलासए तक़रीर यह है कि कलों के ईजाद होने ने आदमी को बेकार नहीं कर दिया। मेरी राय में बदनी मेहनत करना हर शख्स पर वाजिब है। और वाजिब भी कैसा, ऐनी या किफ़ाई। इसलिए एक मिसाल लिखता हूँ। जिससे मैं खयाल करता हूँ कि मेरा मतलब तुम बखूबी समझ जाओगे। थोड़ी देर के लिए फ़र्ज़ कर लो कि तुम अपने फ़ारम पर हो और बरसात का ज़माना क़रीब है। मक्का चमार ने अपना छप्पर बाँधा है। अब वह उठा के कच्ची दीवारों पर रखना चाहता है। लोग छप्पर उठाने के लिए जमा हुये हैं। सिर्फ़ एक आदमी की कमी है। तुम मौजूद हो। क्या ऐसी हालत में तुम अपनी बी० एस-सी० की डिग्री का तफ़ाखुर[1] अपने दिमाग़ में लिये हुये स्टडी रूम (किताब देखने का कमरा) में बैठे रहोगे। और उस ग़रीब के छप्पर उठाने की तकलीफ़ अपने शान के खिलाफ़ समझो गे ? मुझे तुम्हारे इख्लाक़ से कभी उम्मीद नहीं हो सकती। इसी मिसाल से समझ लो नव्ई[2] ज़रूरतों का बार उठाने के लिए क़ूवतें इज्तमाई[3] की ज़रूरत है और मैं कहता हूँ कि इसके लिए हर शख्स को हिस्सए-रसदी तब्ई मशक़्क़त करना फ़र्ज़ है। हर शख्स को कम अज़ कम इतना ज़रूर करना चाहिए जो उसकी ज़ाती हाजतों के मसावात[4] को पूरा कर दे। और अपनी ज़ाते खास के लिए उसको दूसरों का बार न उठाना पड़े।

हमारे मुल्क के देहात का दस्तूर है कि फ़स्ल की तैयारी के वक़्त लोगों के हुक़ूक़ फ़ी बीघा या फ़ी खेत दिये जाते हैं। उनमें से एक हिस्सा फ़क़ीर का भी होता

---

१ शान, घमण्ड २ इंसानी ३ सामूहिक ४ बदलें में कर्तव्य।

है। जो लोग बिला मेहनत दुनिया की खेती से फ़ायदा उठाते हैं उनका हाल मिस्ल उन देहाती फ़क़ीरों के है।

मैं इस हक़ को कोई हक़ नहीं समझता। बल्कि यह एक क़िस्म का सद्क़ः है जो और लोग अपने पास से बेकारों को दे देते हैं। हमारे गावों के क़रीब किफ़ायत-अली शाह ऐसे ही फ़क़ीरों में से है जिसको हर फ़स्ल पर अनाज दिया जाता है। उसका देना हमेशा खलता है। मगर एक दिन मैं खुद उसके तकियः की तरफ़ निकल गया। उस दिन से मेरा वह खयाल बदल गया। मैंने देखा कि उसकी ज़ात से आइन्दो रवन्द[1] को बड़ा फ़ायदा पहुँचता है, खुसूसन बोझीलों को। गवाँर भारी-भारी बोझ उठाये हुये पसीना टपकते हुये धूप में जलते वहाँ आकर छायादार दरख़्तों के नीचे दम लेकर ठण्डी हवा खाते हैं, उस कुवें से जो उसका ज़ाती बनवाया हुआ है, पानी पीते हैं। मुसलमान उसी के घड़ों से और हिन्दू खुद भर लिया करते हैं। ठीकरे में आग तैयार रहती है। लोग चिलमें भर-भर कर पीते हैं। ग़रज़ कि उसूलॅ किफ़ायतॅ आम्मः[2] ने किफ़ायत अली शाह को भी बेकार नहीं छोड़ा।

शहरों में बहुत से निकम्मे आलिम फ़ाज़िल, मौलवी, पादरी, पण्डित इतना फ़ायदः भी खल्क़ल्लाह को नहीं पहुँचाते, निज़ामॅ मुआशिरत से[3] अगर उनको कुछ वसूल होता है तो वह हरगिज़ उनका हक़ नहीं है। तुम कहोगे कि इख्लाक़ी फ़ायदः उनसे पहुँचता है।

हाँ यह सच है। मगर इतना ही इख्लाक़ी नुक़सान पहुँचता है। इसलिए कि लोग उनकी इज़्ज़त और शान व शौकत देख कर धोका खा जाते हैं और उसी क़िस्म के तरीक़ए ज़िन्दगी को पसन्द करके इसी मक़सद से तहसीलॅ-इल्म करते हैं। और वैसे ही इख्लाक़ अख़्ज़ करके[4] उनके खलीफ़ा और सज्जादःनशीं बन जाते हैं। उनकी औलाद अक्सर हालतों में अपने आबाई इल्म व फ़ज़्ल में जिसकी मिक़दार बहुत ही कम है, हद से ज़ियादः फ़ख़् करते हैं। और लोग इस खयाल से कि उनको तहसीलॅ इल्म व फ़ज़्ल का मौरूसी मलकः[5] हासिल था और उसके इक्तिसाब[6] का ज़रीअः भी उनके पास मौजूद था, ज़रूर है कि यह लोग बनिस्बत और लोगों के ज़ियादःतर आलिम व फ़ाज़िल हों, उनकी क़द्र करते हैं और उनको बिला मेहनत जो यह इज़्ज़त हासिल हो ज़ाती है उसी वज़ा को उनकी औलाद इख्तियार कर लेती है। रफ़्तः रफ़्तः इल्मॉ फ़ज़्ल खान्दान से मफ़्क़ूद[7] हो जाता है और सिर्फ़ तफ़ाखुर[8] बाक़ी रह जाता है।

नई रोशनी वालों में यही हाल उन लोगों का है जो रिफ़ार्मर बन बैठे हैं, खुदरा फ़ज़ीहत व दीगराँ रा नसीहत। और अक्सर हालतों में उसी को ज़रीयःमाश क़रार दे लेते हैं।

---

१ आने जाने वालों को २ सर्वसाधारण की जरूरत की पूर्ति ३ सामाजिक व्यवस्था ४ ग्रहण करके ५ उत्तराधिकार ६ प्राप्ति ७ खत्म ८ शान।

मैंने सुना है कि तुम ला क्लास अटेण्ड करते हो (पढ़ते हो)। मैं किसी क़िस्म के तहसील इल्म को मना नहीं करता। बल्कि इल्में क़ानून का हासिल करना बहुत ज़रूरी है। जिस सल्तनत के हम ताबे हैं उसके क़ानून का जानना हम पर फ़र्ज़ हैं। मगर इतनी नसीहत अगर बूढ़े बाप की मानोगे तो तुम्हारे लिए बहुत मुफ़ीद होगा।

मेरी राय में इन पेश:वरों को रूहानी मसर्रत कभी नहीं हासिल होती। इस लिए दुनिया के झगड़ों से एक दम फ़ुर्सत नही मिलती। अगरचें अस्ल पेशए वकालत बुरा नहीं। मगर बड़ी एहतियात[1] का काम है। हमारे शहर में चन्द वकीलों ने जो एहतियात इस बाब में की है वह उनका हिस्सा हो गया। शायद तुमसे न निभ सकेगी। ग़ासिब[2] व ज़ालिम की हिमायत करना हर मज़हब में ना-जाएज़ है और मुझे खौफ़ है कि इस पेशे में इसका खयाल कमतर रहता है। इंजीनियरी और इससे बेहतर डाक्टरी है। अगर यह तुमसे हो सके तो करो, वर्ना मेरे पास चले आओ और मेरे साथ हल जोतो। यह बहुत ही उम्द: काम है। बड़े लुत्फ़ से ज़िन्दगी कटती है। इत्मीनान, फ़राग़त, सेहत सब कुछ इसी काम में हैं। (कण्ट्री-लाइफ़) देहात की ज़िन्दगी बसर करने का मज़ा अहलॅशहर क्या जानें। मैं खुदा का शुक्र करता हूँ कि मुझे इसी दुनिया में खुदा ने बहिश्त अता फ़र्माई है। अगर तुम्हें खुदा तौफ़ीक़ दे तो तुम भी यही लाइफ़ इख्तियार करो। नौकरी के खयाल में न पड़ो। बडी-बड़ी ज़िम्मेदारियाँ अपने सर पर ले लेना आसान है, मगर उनका निवाह मुश्किल हो जाता है। मेरे जीतेजी तुम इन झगड़ों में न पड़ो, आओ चन्द रोज़ की ज़िन्दगी किसी नेक काम में सर्फ़ करें। याद रखो कि एक न एक दिन ऐसा आने वाला है जब उलूम मुल्की ज़बान में सिखाये जायँगे। अगर फ़ी ज़माना बाज़ उक़ला[3] ने इस अम्र से इख्तिलाफ़ किया था कि हमारी ज़बान यानी उर्दू इल्मी नहीं हो सकती। लिहाज: तालीम उलूम अंग्रेज़ी ज़बान में होना चाहिए। यह इख्तिलाफ़ महज़ मौजूद: ज़रूरतों के एतबार से था या उस मायूसी की वजह से जो उर्दू की कम-मायगी[4] पर नज़र करके पैदा हो सकती है। मेरे ख़याल में यह कोशिश किये बग़ैर मायूस हो जाना ठीक नहीं। "ईं फ़तवए हिम्मत बुवद् अरबाबें हुममरा"[5]।

मैंने तुम्हारी बे-इजाजत तुम्हारी वेब्सटर डिक्शनरी को जिल्द से निकाल कर उसके अज्ज़: अलाहिद: कर दिये और इण्टरलीव करके दो दो सौ सफ़हों का एक जुज़ जुदा कर लिया है। जिस क़दर अल्फ़ाज़ और इस्तिलाहातें इल्मी अल्फ़ाज अंग्रेज़ी के मुक़ाबिले में मुझ को याद हैं, उनको लिखता जाता हूँ।

---

१ सावधानी २ लुटेरा ३ वकीलों ४ कमजोरी ५ यह पैग़ाम दोस्तों के लिए हिम्मत का हौसला बढ़ाता है।

वेब्सटर डिक्शनरी के सफ़हात का शुमार १६८१ है। अगर ब हिसाबॅ औसत एक सफ़ा रोज़ लिखा जाय (जो कम अज़ कम है) और एक घंटा इस काम में सर्फ़ हो (जो ज़ियादः से ज़ियादः है) तो चार बरस सात महीने ग्यारह दिन में कुल डिक्शनरी हँसते-खेलते ख़त्म हो जायगी। एक घंटे रोज़ानः इस कारॅ-अहम के लिए सर्फ़ करना कुछ ऐसा बार नहीं है और अगर इसका शौक़ तुमको भी वैसा ही हो जैसा कि मुझे है और पाँच घंटा रोज़ हम तुम मिलके मेहनत कर सकें तो कुल काम ३३६ रोज़ में यानी ग्यारह महीने में तमाम हो सकता है।

इसमें शक नहीं कि बाज़ अल्फ़ाज़ॅ-अंग्रेज़ी के मुक़ाबिल मुश्किल से लफ़्ज़ मिलेंगे, मगर यह तुम जानते हो कि मुझे लफ़्ज़ों के गढ़ने में एक ख़ास मलकः है। जब तुम मेरे साथ काम करोगे तो अजब नहीं कि चन्द रोज़ में यह सिफ़त तुम में भी पैदा हो जाय। शायद तुम कहो कि यह क्योंकर हो सकता है। उसकी दलील मुझसे सुनो। अगर तुम ग़ौर करोगे तो तुम पर वाज़ेह हो जायगा। दुनिया में जिस तरह हद से ज़ियादः हसीन आदमी कम होते हैं, उसी तरह हद से ज़ियादः बदसूरत भी कम होते हैं। यह जो एक मशहूर मसल औरतों की ज़बान-ज़द है जो वह औरतों के हुस्नॅ ज़ाहिरी की निस्बत कहा करती हैं। "मसलन फ़लाँ लड़की आदमी का बच्चा है।" यानी न ग़ैर मामूली हैसियत से हसीन है न बदसूरत। ज़ेहन और माद्दः की मुआविनत[1] का मसलः बिलकुल मुन्क़ेः हो चुका है। शायद इल्मॅ नफ़्स के पढ़ने के बाद तुमको इस मसलः में कोई शक न रहा होगा। तो इसी कुल्लिए को तुम ज़ेहनियात में भी मुन्तक़िल[2] कर सकते हो। हासिल कलाम का यह है कि जिस तरह वह लोग कमयाब हैं जो हद से ज़ियादः अक़ील हैं उसी तरह वह लोग भी शाज़ो-नादर हैं जो हद से ज़ियादः बेवक़ूफ़ हों। ईडियट के दिमाग़ की बनावट ही से उसका ईडियट होना ज़ाहिर हो जाता है। इससे चन्द और क़ज़ाया को वास्ता[3] गर्दान कर यह अम्र बख़ूबी साबित हो सकता है कि फ़ित्रत ने हर औसत दर्जे के इंसान को औसत दर्जे की क़ाबिलीयतें अता की हैं। मसलन लोग कहते हैं कि मौज़ूँ तबई[4] ख़ुदादाद है। इसमें कोई शक नहीं लेकिन मैं कहता हूँ कि इस ख़ुदादाद क़ाबिलीयत में कुल इंसान शरीक हैं। किसी में कम और किसी में ज़ियादः। इसके इमकान से मुझे इन्कार नहीं कि एक बहुत ही क़लील तादाद अज़रूए खिलक़त ग़ैर-मौज़ूँ-तबा हो। यक़ीन है कि तुम मेरी तक़रीर का मंशा समझ गए होगे। यह मसलः बहुत अहम और क़ाबिलॅ ग़ौर है। इसलिए मैं इस पर ज़ियादः तर तवज्जुः चाहता हूँ और यह भी बताए देता हूँ कि इस मसले को मैं क्यों अहम कहता हूँ।

---

१ परस्पर सहयोग २ धारण (चस्पा) कर सकते हो ३ इनसे व दूसरी बातों से ४ स्वाभाविक रुचि।

इस मसले में बहुत बड़ी ग़लत-फ़हमी वाक़ै हुई है। न सिर्फ़ अवाम बल्कि ख़वास में भी आम ख़याल यह है कि अदमें क़ाबिलीयत की तरफ़ तादाद ज़ियाद: है और वजूदें क़ाबिलीयत की तरफ़ कम। मगर इस्तिदलाल[1] से इसके बर-अक्स[2] साबित होता है। वजूद क़ाबिलीयत की तरफ़ शुमार बहुत ज़ियाद: है बनिस्बत अदमें-क़ाबिलीयत के।

अजबतर यह है कि जुज़ई मिसाल यह है कि मेरे नज़दीक तक़रीबन तमाम इंसान मौज़ूंतबा हैं और बहुत ही कम ग़ैरमौज़ूंतबा। और ख़ल्क़ें-इलाही से यह अम्र मुस्तब्अद[3] मालूम होता है कि उसकी इनायत ख़ास हो, आम न हो।

अजबतर यह है कि न सिर्फ़ अफ़राद इन्सान को बल्कि ख़ास मुक़ामात को भी अक्सर लोग एक ख़ास सिफ़त के साथ मख्सूस कर देते हैं। मसलन इस क़िस्म के जुमले तुमने अक्सर सुने—फ़लाँ मक़ाम के लोग क़ुदरती मौज़ूँ-तबा हैं। फ़लाँ खित्त: मरदुमख़ेज़ है, वग़ैर:, वग़ैर:। इस अम्र के असली सबब पर जब तुम ग़ौर करोगे तो उसको मेरी राय के मुवय्यिद[4] पाओगे।

मसलन कहा जाता है कि लखनऊ के रहने वाले मौज़ूंतबा होते हैं। मैं पूछता हूँ कि सिर्फ़ मुसलमान या हिन्दू-मुसलमानों में से सिर्फ़ आला तब्क़े के लोग या अदना के भी। और फिर यह पूँछना है कि मज़ाफ़ातें लखनऊ में जो देहात हैं वहाँ के लोग भी या सिर्फ़ हद्दूदें म्यूनिसिपल्टी के अन्दर जो लोग रहते हैं। तफ़सीलात मज़कूर: पर नज़र करने से तुम्हें मालूम हो जायगा कि असली सबब सोसाइटी है न तबीअत। लखनऊ की सी सोसाइटी में इस क़ाबिलीयत को ज़ाहिर करने के अस्बाब पैदा हो गए। इसलिए वहाँ हज़ारहा मौज़ूँ-तबा निकल आए। जिस जगह इस क़िस्म के अस्बाब फ़राहम हो जायँगे, वहाँ हज़ारों मौज़ूँ-तबा[5] निकल आयेंगे।

जिन लोगों ने सिर्फ़ मन्तिक़ें क़यासी पढ़ी है, वह इस इस्तिदलाल[6] को शायद इक़्नाई कहें। लेकिन तुम माशा अल्लाह मन्तिक़ें इस्तिक़राई के दर्स में शरीक हो चुके हो और उलूमें तजरबी के पढ़ने से तुमको मवादें इस्तिदलाल के फ़राहम करने और तर्बियत देने का सलीक़ा हासिल हो गया है। लिहाज़ा तुम्हारे लिए यह इस्तिदलाल क़तई है। अब इस मसले की अहम्मीयत का बाएस सुनो। अक्सर होनहार तालिबें इल्म इस ग़लतफ़हमी में पड़कर इक्तिसाब[7] और तक्मील[8] से बाज़ रहते हैं। यह क़ायद: है कि हर इल्म व फ़न की इब्तिदाई तहसील में अक्सर दिक़्क़तें वाक़ै हुआ करती हैं। इसका सबब नुक़्सें तरीक़ए तालीम है। इसलिए अक्सर तालीम बसाएत और मुफ़र्रदात से शुरू होती है और तुमको कैमिस्ट्री के पढ़ने

---

१ तर्क, प्रमाण २ विपरीत ३ दूर ४ अनुसार, पुष्टि में ५ स्वाभाविक अभिरुचि, प्रतिभा। ६ प्रमाण, तर्क ७ (विद्या) प्राप्ति ८ पूर्ति।

से मालूम हो गया होगा कि बसाएत बाद तहरीर और तहलील के हासिल होते हैं। चाहिए था कि तालीम में तहरीर और तहलील के अमल से इब्तिदा करते तो कोई मुश्किल न पड़ती। इब्तिदा की गई है बिसात से और उनसे तरकीब देकर मुरक्कबात पैदा किये जाते हैं। बसाएत की अजनबीयत ऊपर के बयान से वाज़ेः है। इनके अफ़हाम व तफ़हीम में दिक़्क़त का वाक़िआ होना कोई तअज्जुब की बात नहीं है। मुझे यह मुश्किल तुम्हारे छोटे भाई सादिक़ को ज्योमेट्रियः पढ़ाने से मालूम हुई। नुक़्तएखत सतह जिस्म के हुदूद एक हफ़्ते तक समझाया गया। मगर उसकी समझ में न आए। आखिर मैंने तरीक़ए तालीम को बदल कर जिस्में तबुई से इब्तिदा की। फ़ौरन समझ गया और बहुत ही कम मुद्दत में अश्कालें हिन्दसः समझने लगा। इस क़िस्म की दिक़्क़तों के वाक़ै होने से अक्सर तुलबा बेदिल होकर यह समझ लिया करते हैं, और आम खयाल इसी खयाल को पुख्तः कर देता है कि मुझमें इसको समझने की खुदादाद क़ाबिलीयत नहीं। कोशिश बेसूद है। यह मुश्किलें मेरे लिए सेल्फ़ स्टडी की बरकतों ने हल कर दीं। अब मुश्किल से मुश्किल मसाएल को मैं आसान समझने लगा हूँ। यह ख़त बहुत तूलानी हो गया। एक मजे की बात लिखना अभी बाक़ी है। वह यह कि मेरे दोस्त और तुम्हारे बुज़ुर्ग मिर्ज़ा रुसवा साहब ने मेरी सवानेंउम्री लिखकर तमाम कर ली। अब उनका खयाल है कि उसके साथ ही मेरे खुतूत जो तुम्हारे नाम और दोस्तों को वक़्तन फ़वक़्तन लिखे गए हैं जमा किये जायँ। लिहाज़ा बादें मुलाहिज़ः हाज़ा के जिस क़द्र तुम्हारे पास पड़े-पड़ाए हों भेज दो और यह ख़त भी वापस कर देना ताकि सवानें उम्री के साथ शाया कर दिया जाय। मिर्ज़ा रुसवा के तर्ज़े तह्रीर से तुम वाक़िफ़ हो। उन्होंने मेरी ज़िन्दगी के आम वाक़िआत को जो हर शख्स पर हस्बें इक़्तिज़ाएँ[1] वक़्त और ज़ुरूरियात के वाक़ै हुआ करते हैं, एक नावेल बना दिया है। मगर इतनी इनायत की है कि अशआर नहीं ठूँसे जिसका मैं ममनून हूँ। वऽद्दुआ।

राक़िम-आबिद

मिर्ज़ा साहब, अस्सलामु अला मनित्तबअल् हुदा। एक अम्र दीनी ने मुझको इस ख़त के लिखने पर मजबूर किया। वह यह है कि मैंने सुना है कि आप मुफ़लिसी को गुनाह समझते हैं। हैफ़ की बात है कि इंसान तक़दीर से मुफ़लिस हो जाय तो उसमें उसका क्या क़ुसूर है। मगर हाँ सच है आप तक़दीर के क़ायल न होंगे क्योंकि नेचरियों का मस्लक यही है। तक़्सीर माफ़ हो। एक ज़माने में आप खुद नादार थे। बल्देव मिस्तरी के लड़के के पढ़ाने पर नौकरी करने का ज़माना शायद इस जाहों सरवत के अहद में आप भूल गये। जनाब हर हालत में ख़ुदा से डरना बहुत ज़रूरी अम्र है। तअय्युशें[2] चन्द रोज़ः में पड़कर ख़ुदा को भूल जाना कुफ़रानें निअ़मत[3]

१ समयानुसार २ ऐशइशरत ३ ईश्वर की देन से कृतघ्न।

कहलाता है और उस शख्स को जो कुफ़रानॅ निअ्मत करे काफ़िर कहते हैं। आप अंगरेज़ी सरकार से तो तवस्सुल (सम्पर्क) रखते हैं, इसलिए मैं आप से डरता हूँ। फ़लिहाज़ा[1] मैंने अपना नाम खत में नहीं लिखा। इब्तिदाई ज़माने में आपके अक़ाएद बहुत दुरुस्त थे और आप रोज़: व नमाज़ के पाबन्द थे। अब सुना गया है कि आप बिल्कुल नेचरी हो गए और रोज़: व नमाज़ सबको आपने सलाम कहा। एक और अम्र सुनके मुझे सख्त अफ़सोस हुआ। वह यह कि आप फ़ुक़रा[2] व मसाकीन[3] की इआनत[4] को बुरा समझते हैं। यहाँ तक कि फ़ुक़रा को पैसा या चुटकी आटा देना आपके नज़दीक गुनाहॅ अज़ीम है। और जो लोग मस्जिद बनाने या हज्जॅ बैतुल्लाह या ज़ियारत के नाम से कुछ माँगने आते हैं, उन पर आप दरवाज़ा सखावत का बन्द कर देते हैं और कुफ़ और बे-दीनी के कामों में आपने हज़ारहा रुपया बतौर चन्दे के दिया। चुनांचे एक नेचरी को आपने विलायत के सफ़र के लिए पाँच सौ रुपिया बतौर तोशे के दिये। जो किताबें कुफ़्रॉ-जलालत की आप लिख रहे हैं उनकें छापने और शायः करने में हज़ारों रुपये के सर्फ़ का बार अपने ज़िम्मे ले लिया। आपको मालूम है कि क़ारून पर एक ज़कात के न देने से क्या अज़ाब नाज़िल हुआ कि वह ज़मीन में धँस गया और ता क़यामॅ क़ियामत धँसता चला जायगा और यह खज़ानः उसके सर पर बार है।

जुज़ी नेस्त कि दौलत की ज़ियादती से आप में गुरूर समा गया। गुरूर की बुराइयाँ मिन जमीअुल वजूह[5] साबित हैं। क्या आपको शैख अलैर्रह्मः का यह शेर याद नहीं रहा—

तकब्बुर अज़ाज़ील रा ख्वार कर्द,
बज़िन्दानॅ लानत गिरफ़्तार कर्द[6]

अर्राक़िम अब्दुल्लाह

मिर्ज़ा आबिदहुसैन के, इस गुमनाम खत का जवाब जो मय उस खत के अख्बार में छपवा दिया था, जवाब की नक़ल यह हैः—

जनाब अब्दुल्लाह साहब का खत मैंने पढ़ा। उनकी हमीयतॅ दीनी[7] से मेरा दिल बहुत खुश होता अगर वह खुलूस[8] के साथ होती और जो कलिमात ग़ैज़ॉ ग़ज़ब[9] उनके क़लम से मेरी शान में निकले उसको मैं मुक्तज़ाए जोशॅ दीनी समझता, मगर ऐसा नहीं है। क़ब्ल इसके कि उन इल्ज़ामात का जवाब दूँ जो कातिब ने मेरी निस्बत आइद किये हैं, मैं उसे नेक नसीहत करता हूँ, जिस पर मुझे उम्मीद है कि वह आइन्दः ज़रूर अमल करेगा। बन्दए खुदा के नाम से खुतूत लिखना खुसूसन उस हालत में जब कि इबारत खत की मुतज़म्मिन हो[10] किसी जुर्म क़ानूनी पर, एक अम्र

---

१ बस इस कारण २ फ़क़ीरों ३ गरीबों ४ मदद ५ इन सब कारणों से ६ शैतान के घमण्ड करने पर उसको हमेशा के लिए ज़लील कर दिया। ७ धर्म पर स्वाभिमान ८ सच्चाई ९ कोप-प्रकोप १० संबन्धित हो।

खतरनाक है। क्योंकि खुफ़िय: पुलिस को जो तनख्वाह सरकार से मिलती है वह फ़ुज़ूल नहीं होती। अगर्चे मैंने खुफ़िय: पुलीस से इआनत[१] नहीं ली, लेकिन कातिब को माख़ूज़ करके[२] सज़ा दिला सकता हूँ। कातिब को इस अम्र के यक़ीन दिलाने के लिए कि मैं अपने इस दावे में सादिक़ हूँ उसको ऐसा पता बता देता हूँ जिससे वह समझ जायगा कि मैं उसको ख़ूब जानता हूँ। हुसैन आबाद, मशकगंज फ़ैज़ आबाद। मैं उसको जानता हूँ या नहीं? अब रहा यह अम्र कि वह मुजरिम है या नहीं। इस पर उसका गुनहगार दिल खुद शहादत देगा। लेकिन बफ़:वाएँ अिन्नमा यन्तक़मुज्-ज़अीफ़ (कमज़ोर से बदला लेना शहज़ोर के खिलाफ़ॅ शान है) उससे इन्तक़ाम[३] लेना कसरॅ शान समझता हूँ।

उसकी बे-तहज़ीबी पर मुझे अफ़सोस हुआ और इसकी वजह वही मुफ़लिसी है जिसे मैं गुनाह समझता हूँ। अब इल्ज़ामात का जवाब देता हूँ। मैं मुफ़लिसी को गुनाह नहीं कहता। मगर खुद इख़्तियारी मुफ़लिसी[४] को गुनाह समझता हूँ। खुद इख़्तियारी मुफ़लिसी का सबब अस्राफ़[५] है और इसी लफ़्ज़ के मफ़्हूम[६] को वुस्अत[७] देने से और अस्बाब[८] मिल जाते हैं, जिनके जुदा-जुदा नाम हैं; मसलन दूसरे लफ़्ज़ों में इस अस्राफ़ को हम ख़र्च की ज़ियादती और बुख्ल[९] की कमी भी कह सकते हैं। और उसके अस्बाब काहिली और तनआसानी[१०] हैं। अल् आक़िलॉ तक्फ़ीहुल् इशार:[११]।

अक़ाएद के बाब में उसको कुछ लिखना मैं फ़र्ज़ नहीं समझता। इक़रारॅ शहादतैन के बाद किसी को यह हक़ नहीं हासिल हो सकता कि शख्स मुक़िर[१२] के इस्लाम से इन्कार करे और जो इस पर भी मुन्किर हो तो उस मुन्किर पर किसी अम्र के सुबूत के लिए मोजिज़:[१३] भी काफ़ी नहीं है। बिहम्दिल्लाह कि मेरे औज़ाअ् व इख्लाक़ ने मुझ को सिक़ात की[१४] नज़रों में वह इज़्ज़त दे रखी है जिसे किसी शख्स मुन्किर का झूठी क़सम खाना भी मश्कूक नहीं कर सकता।

बेशक मैंने एक मुतकल्लिम, फ़क़ीर, सक़्क़:, नौजवान फाज़िल को, जिसने अंगरेज़ी और फ्रेंच इस ग़रज़ से हासिल की थी कि मग़रबी मुल्कों में जाकर इस्लामी और ईमानी वाज़ कहे और वहाँ के लोगों को दावतें इस्लाम दे या कम अज़् कम उन लोगों के दिलों में इस्लाम और अह्ले इस्लाम की मुहब्बत पैदा करने की कोशिश करे, बतौर हदिया मुतहक्क़िर पाँच सौ रुपिया अपना मज़हबी फ़र्ज़ समझकर नज़र किये थे। ऐसे शख्स को जिसने अपनी तमाम उम्मीदों को खाक में मिलाकर तमाम ज़िन्दगी कारॅख़ैर के लिए वक़्फ़ कर दी, कातिब नेचरी और बदमज़हब कहता है। और जो किताबें मैं लिखकर शाया करता हूँ, हाशा[१५] कि उनमें कुफ़्रो-ज़िलालत हो, बल्कि वह मग़रबी उलूम की

---

१ मदद २ पकड़वाकर ३ बदला ४ अपने कर्मों कंगाली ५ ज़रूरत से ज़ियादः ख़र्च ६ आशय ७ विस्तार ८ कारण ९ कंजूसी १० आरामतलबी का निकम्मापन ११ बुद्धिमान के लिए इशारा काफ़ी है १२ इक़रार करने वाले १३ चमत्कार १४ ज़िम्मेदार लोगों की १५ शायद ही।

किताबें जिनकी इस वक़्त निहायत ज़रूरत है और हज़ारों बल्कि लाखों बन्दगानॅ खुदा की भलाई उसमें मुतसव्वुर है, क़ौम और मुल्क की मुफ़्लिसी उसके अदमॅ इल्म पर मुनहसिर है, मैं ख़ुदा का शुक्र करता हूँ कि मुझे ख़ुदा ने उसके तर्जुमः करने और शाया करने की तौफ़ीक़ मरहमत की। मस्जिद बनवाने या हज्जो-ज़ियारत के नाम से भीक माँगने वालों को मैं अच्छी तरह पहचान लेता हूँ और अला हाज़ल्क़यास उन लोगों को भी जो मुल्क में तअस्सुब फैलाने या सिर्फ़ अपना शिकमपुर करने[1] के लिए लोगों को फ़रेब देकर चन्दे जमा किया करते हैं।

बल्देव के लड़के को पढ़ाने का तान[2] कातिब की सखाफ़तॅ अक़्ल[3] पर दलील है। किसी क़िस्म की नौकरी और मज़दूरी ऐब नहीं। बाज़ उलमाए मिल्लत ने जंगलों से लकड़ियाँ काटकर बाज़ार में फ़रोख्त करने को हक़ीर न समझा। खुद बाबॅ मदीनतुल्इल्म[4] हज़रत अली मुर्तज़ा यहूदियों के खेतों में पानी देने को ज़लील न तसव्वुर फ़र्माते थे। अफ़सोस कातिब पेशवायानॅ दीन के इख्लाक़ और अक़्वाल[5] से बिल्कुल चश्मपोशी करता है।

मैं फ़ख्र के साथ कहता हूँ कि माधो (पिसर बल्देव) के पढ़ाने पर पाँच रुपये का नौकर था और मैंने हुलास लोहार से लोहारी का काम सीखा और उन कामों से बरसों अपने और अपने अहलो अयाल के लिए मायः ताज[6] मोहय्या किया। मगर कभी मैंने अपने कारॅ मन्सबी के करने में सुस्ती और काहिली नहीं की। माधो ने मेरी तालीम से बहुत फ़ायदा उठाया। वह इस वक़्त आला दर्जे का मेकानिक है और उसको रेलवे में पाँच सौ रुपया माहवार की नौकरी मिलती थी मगर उसने न की। मेरे कारखाने हद्दादी में, जिसको मैंने सिर्फ़ कलों के नमूने बनाकर मुल्क में शाया करने के लिए क़ायम किया है, खुशी से मुहतमिम[7] है और इस कारॅ खैर में मेरा शरीक है। मैं उसे मिस्ल अपने फ़रज़न्द के समझता हूँ और वह मुझको उसी तरह अपना बुज़ुर्ग और मुरब्बी ख़याल करता है। मुझे फ़ख्र है कि खुदा के फ़ज़्ल से मेरी तालीम बेकार नहीं हुई।

अर्राक़िम—आबिद लोहार

ग़रीबपरवर सलामत

हक़ीर अर्ज़

फ़िदवी क़ौमॅ शरीफ़ से है। फ़िदवी के वालिद सरकार अंगरेज़ी में डिप्टी कलेक्टर थे और फ़िदवी के नाना अहदॅ शाही में रिसालेदार थे और फ़िदवी की नानी नवाब सरवतमहल की मुँहबोली बहन थीं। मगर बिल्फ़ेल ब सबब गर्दिश फ़लकॅ कज रफ़्तार के नानॅशबीनः को मुहताज[8] है। आपकी दरियादिली और सखावत का

---

१ पेट भरने २ कटाक्ष ३ ओछी बुद्धि ४ विद्या के नगर के प्रमुख द्वार ५ शिष्टाचार और कथनों ६ ज़रूरतों ७ मैनेजर ८ सुबह शाम रोटी को मुहताज है।

शुहरा दूर से सुन के आया है। उम्मीद है कि एक लुक़्मः नान को पहुँचकर ता उम्र दुआएँ दौलत में मसरूफ़ रहे। 'शाहाँ चॅ अजबगर बॅ नवाज़न्द गदारा।'

इलाही आफ़ताबॅ दौलतॅ इक़बाल ता अबदुल् आबाद ताबाँ व दुरख़शाँ बाद।

अर्ज़ी
फ़िदवी सर्फ़राज़हुसैन
बक़लम ख़ुद

इबारत ज़हरी अर्ज़ी हाज़ा

जलीलुशान रफ़ीउलमकान मिर्ज़ा आबिदहुसैन साहब दाम इक़्बालकुम्। बाद एहदाए हदियए सलाम कि बेहतरीन तोहफ़ए इस्लाम अस्त व इस्तिख़्यारॅ मिज़ाजॅ व हाज रियासतॅ इस्राज बाएसॅ तहरीरॅ हाज़ा यह है कि जनाब मीर सर्फ़राज़हुसैन साहब की शराफ़तॅ ख़ान्दानी व नीज़ लियाक़तॅ ज़ाती से कमा हक़्क़हू वाक़िफ़ हूँ। अगर आँ जनाब की मसाइए जमीलः से कोई ओहदाए माक़ूल उनको सरकारॅ अंगरेज़ी में मिल जायगा तो यह मुख़लिसॅ क़दीम निहायत ही ममनून होगा। अद्दाइए इलल् ख़ैर अबुल् ख़ैर, अबुल् ख़ैरात।

सैयद मुकम्मिलुद्दीनु अल्मुलक़ब
व तकमीलतुल् उलमा

जनाब मौलाना साहब, तस्लीम। अफ़सोस है कि सरकार अंगरेज़ी से कोई मद्दॅ ख़ैरात मेरे हवाले नहीं है, अगर होती भी तो उसमें से मैं साएल को एक हब्बा न देता। इसलिए कि ऐसा शख़्स जो मेहनत करने की क़ूवत रखता हो और शराफ़तॅ ख़ान्दानी जताकर भीक माँगे उसकी इआनत करना क़ौम को भिखमंगा बनाना है। साएल शायद कुछ ख्वान्दः है, अगर वह मेहनत करने पर आमादः हो जाए तो मैं उसको दस मज़दूरों की जमाअतदारी पाँच आना रोज़ानः दे सकता हूँ। इससे ज़ियादः मैं और कुछ नहीं कर सकता। मुआफ़ फ़रमाइए। साएल ने अपनी अर्ज़ में कलिमात गुस्ताख़ी मेरी निस्बत में लिखे हैं। मसलन शाहाँ चॅ अजब गर...अलख़ इसको मैं उसकी कम इल्मी पर महमूल करता हूँ मगर हैरान हूँ कि जनाब के मुबालिग़ातॅ सरीह और मकाबिरातॅ बय्यन को किस हद तक मैं शुमार करूँ। ख़ादिमुल् उलमा—आबिद

आली जनाब मुअल्लल् अल्क़ाब क़द्रदान हर इल्मो-हुनर फ़ैज़ गुस्तर मिर्ज़ा आबिदहुसैन साहब दामल्ताफ़हू, बाद तस्लीम बसद तक्रीम मारूज़ आँ कि मुद्दतॅ मदीद व अर्सए बईद मुन्क़ज़ी हुआ कि आपकी ख़ैरोआफ़ियत से इस मुख़्लिस क़दीम को इत्तला नहीं हुई। वाक़ई आप अपने दोस्तानॅ क़दीम को बिलकुल ही भूल गए।

'तुम हमें भूल गए हो साहब, हम तुम्हें याद किया करते हैं।'

मुद्दत हुई कि एक पर्चए क़िर्तास से याद शाद न फ़र्माया। दरीं दिला बुलबुलॅ बोस्तानॅ फ़साहत व क़ुमरिए सरोसितानॅ बलाग़त सादी दौरान व ख़ाक़ानी आवान नवाब अहमदहुसैन ख़ाँ सल्लमहू अल्-मुतख़ल्लिस ब साहिर ने एक क़सीदए बहारियः ज़ू मतलअईन आपकी मद्ह् में तहरीर किया है। अगर्चे आपके फ़ज़ाएलॉं मनाक़िब और मनासिबो-मरातिब बेरून अज़दायरए नज़्मो-बयाँ हैं मगर जो उमूर अयाँ हैं, उनमें से बाज़ के ज़िक्र

पर बमिस्दाक़ॅ ला यद्‌रिकाॅ कुल्लहू ला यतरिक्कुल्लहू जो कुछ कहा है, ख़ूब कहा है। उम्मीद क़वी है कि आप इस शायर नौख़ेज़ नाज़ुक ख़याल (जो कि अभी से जौदत और ज़कावत उसकी शुहरए शुअराए माज़ी को शरमा देती है) की मेहनत की दाद और लियाक़त का सिला देंगे। अगरचे इब्तिदाएँ उम्र में आप को इस फ़नॅ शरीफ़ यानी शायरी की तरफ़ चन्दाँ तवज्जुः न थी मगर अब मैंने सुना है कि आपने हर इल्म व फ़न में महारतॅ ताम और इस्तॅदादॅ माला कलाम हासिल की है। पस इल्मॅ शेर में भी अलाहाज़ा। लिहाज़ा आप इस क़सीदः से बहुत ख़ुश होंगे। यह वाज़ह राए आली हो कि तश्बीब इस क़सीदः की बिलकुल हस्बॅ मुहावरः हाल नेचुरल मज़ाक़ की है और मज़ाक़ॅ नेचरी आपको बित्तबा बल्कि बिल्‌फ़ितरन पसन्द है। यूँ तो क़सीदः अज़ सरतापा मुरस्सः है, ख़ुसूसन बाग़ का सीन बहुत ही उम्दः खिंच गया है, गोया पूरा फ़ोटो है। घोड़े की तारीफ़ में भी एक शेर क़ियामत का कहा है। अफ़सोस है कि इस क़सीदः ग़रा की पूरी नक़ल हमको दस्तयाब न हुई वर्ना ज़रूर ही शाया करते।

जवाब

मीर साहब ! दोस्तों को भूल जाना एक ख़ुल्क़ॅ मज़मूम है। मैं अपने दोस्तों को, अगर वह फ़िलवाक़ै मेरे दोस्त हों, बिहम्दिल्लाह कभी नहीं भूलता। अपने शागिर्द की मद्‌ह्‌-सराई में जिस क़द्र शेरी मुबालग़ों को आपने दख़ल दिया है उसकी दाद मैं उस हालत में दे सकता था कि मैं भी मिस्ल आपके शायर होता। और उससे ज़ियादः आपके शागिर्दॅ रशीद के क़सीदः की क़द्रशिनासी से महरूम हूँ। 'वल् हम्दु-लिल्लाह अला ज़ालिक।' आपको ख़ुद याद होगा कि अवाएलॅ उम्र में आपको शेरगोई पर मलामत किया करता था। मेरा ख़याल अब तक वही है। मुझको हर ऐसे काम से जिसमें कोई दीनी व दुनयवी मुन्‌फ़अत न हो, नफ़रतॅ कुल्ली है और ऐसे फ़नॅ रज़ील से जिसमें कोई मज़र्रत हो, ख़ुसूसन ख़ुल्क़ी मज़र्रत, बदर्‌जए औला नफ़रत होना चाहिए। अगर आपको कुछ भी अगले दोस्तों का ख़याल है तो सिर्फ़ उतनी फ़िक्र इस मुक़द्दमे के समझने के लिए काफ़ी है जितनी एक मिसरा लगाने के लिए करना पड़ती है, या उससे भी कम कि मेरी मद्‌ह् में क़सीदः कहने से ज़ियादः कोई अम्र लग़ो व फ़िज़ूल दुनिया में हो सकता है।

मेरे आपके बीच मिज़ाह न बचपन में होती थी और न अब। मैं उसको जाएज़ रखता हूँ। आपने अपने रुक़ः में मुझको खुल्लम खुल्ला नेचरी बताया है और नेचरी भी मुनासिब तबा और फ़ितरत के साथ। ऐ सुब्‌हान अल्लाह और क्या कहूँ। मैंने आपकी ख़ातिर से क़सीदः की तशबीब इस नज़र से देखी कि वह बाग़ का फ़ोटू है। मगर आप यक़ीन ही कीजिए कि इसमें एक बरगॅ ख़िज़ानी का भी फ़ोटू नहीं है। घोड़े की तारीफ़ में जिस शेर की आपने बहुत तारीफ़ की है वह सुरअतॅ रफ़्तार के बाब में उससे ज़ियादः मुबालिग़ः मैं (कि शायर नहीं हूँ) कर सकता हूँ। मर्दॅ ख़ुदा इस झूठ के तूमार से क्या हासिल। सुरअतॅ ख़याल कहाँ घोड़े की चाल की यह भी कोई

बात है। अगर मेरा घोड़ा पाँच मील बाइसिकिल के साथ दौड़ सके और मैं दौड़ा सकूँ तो विलायत की किसी नुमायश से अव्वल दर्जे का इनाम और तमग़ा हासिल करने के लायक़ हो जाऊँ। आपने तमाम उम्र शायरी की है और मैंने बिल्क़स्द एक मिसरा कभी मौज़ूँ नहीं किया। लेकिन बुरा न मानिएगा। हक़ीक़त यह है कि अभी तक आप शायरी के मफ़्हूम से भी वाक़िफ़ नहीं। इल्मॅ जमाल जो फ़नॅ शेर का माखज और अस्ल उसूल है उसका नाम भी आपने न सुना होगा। खैर आपकी उम्र का बहुत बड़ा और क़ीमती हिस्सा तो इस लग़वियात में सर्फ़ हो चुका। अब भी तौबः कीजिए और चन्दरोज़: हयात को किसी ऐसे काम में सर्फ़ कीजिए जिससे ख़ुदा की ख़ुदाई का या कुछ आपही का भला हो। और अगर 'बफ़हवाए ख़ोए बद दर तबीअ़ते कि नशस्त', आप इससे बाज़ नहीं रह सकते तो अपने साथ होनहार ना-तजर्बेकार लड़कों को तो न तबाह कीजिए। हज़रत आपका पन्द्रह रुपया वसीक़: था इससे निभ गई। यह बेचारे अगर इस शग़लॅ बेकारी में पड़े तो मारे फ़ाक़ों के मर जायँगे।

और हाँ खूब याद आया। तुम हमें भूल गए...अलख। यह शेर आप ऐसे सिनरसीद: की तरफ़ से मुझ बुड्ढे की शान में किस क़द्र मौज़ूँ है। मुआफ़ फ़रमाइए और आइन्द: ऐसे ख़ुतूत से कभी मुझको याद शाद न फ़र्माया कीजिए।

आपका क़दीम मलामतगर—आबिद

विलायत से एक दोस्त का खत

जनाब मिर्ज़ा साहब, तस्लीम। मैं हस्बुल इर्शाद आपके पैरिस के उस कुतुब-खाने में जिसका पता आपने तहरीर किया है खुद गया और हकीम उमर खैयाम का अलजबरा देखा। वाक़ई जिस मसले के बाब में गुफ़्तगू थी, वह क़दीम मुसलमानों को मालूम था। आपका खयाल बिलकुल दुरुस्त है। मुझे पेरिस में बहुत ही कम ठहरना था। इसलिए उस किताब की नक़ल हासिल करने की कोशिश न कर सका। और मेरे खयाल में शायद मुमकिन भी न हो। ब्रिटिश म्यूज़ियम से शायद हर किताब की नक़्ल मिल सकती है मगर ब सर्फ़ॅ कसीर। आजकल मेरे ज़िम्मे बहुत काम है। इसलिए तफ़्सीली खत न लिख सका। मुआफ़ फ़र्माइए। आइन्द: तातील में आपकी फ़र्माइशात की तामील करने की कोशिश करूँगा।

आपका ख़ादिम-अब्दुलहसनैन

जनाब मन, आप बैरिस्टरी की धुन में हैं। मालूम हो गया कि आपसे मेरा काम न होगा। आपकी "शायद" और "कोशिश" ने मुझे बिलकुल मायूस कर दिया। वह अल्फ़ाज़ जो अफ़ादह मानिएँ शक और शर्त का करते हैं, उनसे मेरी तसल्ली हरगिज़ न होगी। पेरिस आप गए और लाइब्रेरी में भी पहुँचे, इसके लिए आपको वक़्त मिल गया, जिसका मैं मम्नून हुआ। लेकिन अगर क्यूरेटर से इतना और पूछ लेते कि नक़्ल मिल सकती है तो किस तरह, तो कुछ बहुत ज़ियादा वक़्त सर्फ़ न हो जाता। फ्रेंच भी आप काफ़ी तौर से जानते हैं, लिहाज़ा अजनबीयतॅ ज़बान का भी उज़्र

नहीं चल सकता। यह कहिए कि याद नहीं रहा और याद क्यों न रहा। इसका सबब मुझसे पूछिए। आपको तहक़ीक़ॅ उलूम का ज़ाती शौक़ नहीं है। मुआफ़ कीजिए मैं क़ुदरती साफ़-गो हूँ। लिहाज़ा बेतमीज़ वाक़ै हूँ।

ब्रिटिश म्यूज़ियम आप एक न एक दिन जा सकते हैं। बशर्ते कि उस दिन पार्क जाना मुल्तवी कीजिए। मैं यक़ीनन अर्ज़ करता हूँ कि आपकी सेहत को एक दिन पार्क न जाने से कोई ज़रर नहीं पहुँच सकता। तफ़सीली खत लिखिए, दो जुमले लिखिए, मगर मतलब के। ज़ियादः शौक़। आपका दोस्त-आबिद

शेख साहब, तस्लीम। आप मुझको बर सबीलॅ शिकायत लिखते हैं कि मेरे ज़िले में जो मज़हबी मुनाज़िरह हुआ तो उसमें मैं क्यों न गया। क्या ज़रूर है कि जिस क़िस्म की तबीअ़त आपकी हो वैसी बेऐनिः मेरी भी तबीअ़त हो। मैंने किसी मुनाज़िरह का यह नतीजा नहीं सुना कि किसी ने ऐसी महफ़िलों के ज़रीये से कोई फ़ैज़ हासिल किया हो। न कोई सुन्नी शिया हुआ, न कोई शिया सुन्नी। न कोई ईसाई मुसलमान हुआ न बिलअक्स। हाँ ज़िद और तअस्सुब किसी क़द्र ज़रूर बढ़ जाता है। और इन क़ूवतों के बढ़ाने की मुझको ज़रूरत नहीं मालूम होती; बल्कि हत्तलइमकान मैं इसके खिलाफ़ कोशिश करता हूँ और खुदा से दुआ है कि मुसलमानों की ज़िद और तअ़स्सुब के माद्दे में कमी वाक़ै हो। उलमाए मिल्लत ने काफ़ी सरमाएँ तहक़ीक़ का मोहय्या कर दिया है। खुसूसन अहलॅ इस्लाम ने तो इस बाब में बहुत कुछ सअ़ी[1] की है। यह सरमायः तहक़ीक़ एक अम्र के मुतालआ करने के लिए काफ़ी है। तू-तू, मैं-मैं से क्या फ़ायदा। पहले कुछ फ़िक्रॅ मआश कीजिए और जब यह हासिल हो जाये तो खल्क़ुल्लाह की भलाई की कुछ कोशिश या कम अज़ कम अपनी भलाई की सई फ़रमाइए। वस्सलाम

आपका नियाज़मन्द—आबिद

जनाब आप मुझसे परदए निस्वाँ के बाब में राए तलब फ़र्माते हैं। हज़्रत इस बहसॅ वसीअ़ की अमूमी हैसियत से क़ता नज़र करके मैं एक बात इस मुल्क के बाब में अर्ज़ किये देता हूँ, जहाँ का मैं भी रहने वाला हूँ और आप भी। यानी यह कि हिन्दुस्तान जन्नत निशान। औरतों का परदः तो एक तरफ़, मेरी राए तो यह है कि अगर इख्लाक़ की दुरुस्ती मंज़ूर है तो मर्द भी पर्दे में बैठें। शहरों की गलियों में जो फ़ॉहश गालियों की बौछार हर चहार तरफ़ से रहती है, खुदा न सुनवाए। आज़ादीए खयाल के साथ बेग़ैरती मशरूत नहीं है। पहले अपने मुल्क के इख्लाक़ को इस दर्जः पर लाइए कि लोग इफ़्फ़त[2] के मफ़्हूम की क़द्र करें और सेल्फ़रिस्पेक्ट का खयाल पैदा हो। फिर औरतों के पर्दे के बाब में कलाम कीजिएगा। अंगरेज़ों की मिसाल न लाइए। वह साहबॅ हुकूमत हैं। सब उनका रोब मानते हैं। उनकी निस्वाँ जब बाज़ार में बग़ैर नक़ाब के निकलती हैं तो कोई मज़ाहम नहीं होता। हमारी

१ कोशिश २ सतीत्व।

औरतें अगर बतरीक़ऍ अरब और फ़ारस नक़ाबपोश भी निकलें तो क़ियामत हो जाय। मुझे शहर के गली कूचों में ख़ुदा से डरने वाले कहीं नज़र नहीं आते। मिर्ज़ा रुस्वा साहब की राय इस बारे में निहायत ही लतीफ़ और माक़ूल है। वह परदए निस्वाँ के मुख़ालिफ़ हैं। मगर उनका खयाल है कि इस बाब में कोई अम्र इससे ज़ियादः मुअस्सिर नहीं है। बल्कि जो साहब परदे के मुख़ालिफ़ हैं उनको लाज़िम है कि वह औरत को बेपर्दगी की इजाज़त दें ताकि और लोगों के लिए एक मिसाल हो जाय। रफ़्तः रफ़्तः यही तरीक़ः लोग इख़्तियार करें और जब तक कोई साहब ख़ुद लीडर न बनेंगे यह रस्म क़बीह[1] दूर न होगी।

वस्सलाम

ख़ादिमुल्-अह्‌बाब—आबिद

अब्बा जान, बाद आदाब व तस्‌लीमात के अर्ज़ परदाज़ हूँ। मेरे साथ के पढ़ने वाले तालिबें इल्म अक्सर आपके इफ़ादात से मुस्तफ़ीद होने का शौक़ रखते हैं। इन मुरासिलात में अक्सर कोई अम्र प्राइवेट नहीं होता। इसलिए मुझे इसमें कोई बाक नहीं होता कि और लोग उसे सुनें या पढ़ें। यह मुरासिलः जिसका जवाब मैं लिख रहा हूँ मेरे एक दोस्त मौलवी सलाहुद्दीन बी० ए० ने मुझसे लेके पढ़ा। उनका खयाल है कि शायद आप जीनियस के क़ाएल नहीं। अगरचॅः मैंने उनको यक़ीन दिलाया कि नहीं, ऐसा नहीं है। लेकिन उनको तशफ़्फ़ी नहीं होती। लिहाज़ा आप अपने ख़यालात से इस बाबॅ ख़ास में ज़ियादःतर तौजीह के साथ[2] मुस्तफ़ीद फ़र्माइए।

ख़ादिम बाक़र

अज़ीज़ी बाक़रहुसैन सल्लमहू। मेरी तरफ़ से मौलवी सलाहुद्दीन साहब को सलाम कहना। नहीं यह बात नहीं है कि मैं जीनियस का क़ायल नहीं हूँ। मैंने अपने पहले ख़त में साफ़ लिख दिया है कि किसी क़ाबिलीयत का हद से ज़ियादः या कम होना अमूमन नहीं पाया जाता। औसत दर्जे की सूरत, दिमाग़, ज़ेहन, फ़ितरत की तरफ़ से हर शख़्स को इनायत हुआ है। इस इबारत से जीनियस का इन्कार कहीं नहीं निकलता। मौलवी सलाहुद्दीन साहब का ख़ौफ़ इस बाबॅ ख़ास में क़ाबिलॅ क़द्र है। जज़ाहुल्लाह ख़ैरन्‌जज़ा। मगर यह भी याद रहे कि लाज़ आफ़ नेचर को उसके लग़वी माने में मैं हरगिज़ नहीं लेता, और न कोई आक़िल दीनदार इसका क़ायल हो सकता है। यह एक आमियानः मुहाविरः है। मैं हर मौजूदः हादिस को एक फ़ाएल क़ादिरोमुख़्तार का फ़ेल समझता हूँ। मेरा यह एतक़ाद है कि बस ऐसा ही होना चाहिए था जैसा कि हुआ।

रक़ीमः दुआ—आबिद

इन ख़ुतूत के अलावा और बहुत से ख़ुतूत मिर्ज़ा साहब के नाम आए और उनके जवाब लिखे गये और हर एक ख़त उनमें किसी न किसी मसलॅ इल्मी की बहस पर है। मगर अभी दस्तयाब नहीं हुए और इसी तरह वह मज़ामीन जो वक़्तन् फ़वक़्तन्

---

[1] बुरी रूढ़ि (कुरीति) [2] स्पष्ट।

उन्होंने लिखे हैं आइन्दः जब दस्तयाब हो जायँगे तो हम उनको बतौर मकातॅबात मिर्ज़ा आबिदहुसैन साहब अलाहिदः छापकर शाया करेंगे।

मुहसिने क़ौम मिर्ज़ा आबिदहुसैन साहब दामबरकातहू तस्लीम। ख़ुदा आपकी हिम्मतों में बरकत दे। मैंने सुना है कि आप अक्सर बकारआमद इल्मों का तर्जुमा फ़र्मा रहे हैं। वाक़ई इससे क़ौम और मुल्क को बड़ा फ़ायदा पहुँचेगा। और जैसा कि आपका ख़याल है उर्दू ज़बान की तरक़्क़ी भी उसी में मुतसव्वुर है। ख़ुदा आपको जज़ाए ख़ैर दे।

जिस क़द्र किताबें तबा होती जायँ, उसकी एक-एक जिल्द बज़रियॅ वैल्यू पे-बिल पार्सल मुझको रवाना फ़र्माते रहिए। बल्कि मेरा शौक़ तो यह चाहता है कि जिस क़द्र अजज़ाए जिस किताब के छपते जायँ वह मुझको पहुंचते जायँ।

इस मुआमिले में आपके साथ मुत्तफ़िक़ हूँ। जब तक उलूम हमारी ज़बान में न आएँगे, मुल्क और क़ौम की तरक़्क़ी नहीं हो सकती। मगर एक अम्र क़ाबिलॅ गुज़ारिश है। उसे निहायत अदब के साथ अर्ज़ करता हूँ। वह यह है कि मुझे ख़ौफ़ है कि यह तर्जुमे जो आप फ़र्मा रहे हैं–और ज़रूर है सर्फ़ॅ-कसीर से छापे जायँ–इसके ख़रीदार मुल्क में बहुत कम लोग होंगे; क्योंकि मुल्क में दो क़िस्म की दर्सगाहें हैं। एक अंगरेजी। उनमें उलूम अंगरेज़ी ज़बान में पढ़ाये जाते हैं। दूसरे मुसलमानों की प्रायवेट दर्सगाहें। अव्वल तो उनकी तादाद बहुत कम है, सिर्फ़ देहली या लखनऊ में दो चार अहलॅ इल्म अपने घरों या मसजिदों में दर्स[1] देते हैं। उनमें वही क़दीम अरबी किताबें पढ़ाई जाती हैं। सालहा साल से जो कोर्स मुक़र्रर हो गया है उसमें किसी क़िस्म का तग़ैयुर[2] नहीं होता। और न मौजूदः हालत को देख के कोई कह सकता है कि उनमें कोई तग़ैयुर वाक़ै होगा। मैंने भी कुछ दिनों लखनऊ में तालिबइल्मी की है। वहाँ के खयालात से मैं बख़ूबी वाक़िफ़ हूँ। फिर इन तर्जुमों के ख़रीदार कौन लोग समझे जायँ। पंजाब यूनीवर्सिटी जब नई-नई क़ाइम हुई थी तो वहाँ यह ख़याल पैदा हुआ था कि मग़रबी उलूम बज़रिये देसी ज़बानों के तालीम दिये जायँ। मगर बाज़ अक़लाएँ क़दीम ने बड़े ज़ोर से मुख़ालिफ़त की और वह मुख़ालिफ़त ज़माने को देखते हुए बहुत बे-मौक़े न थी। इसीलिए पंजाब यूनीवर्सिटी में और ओरियेण्टल डिगरियों के उम्मीदवारों की फ़िहरिस्त रोज़ बरोज़ कम होती जा रही है। फिर आप के तर्जुमों की खपत कहाँ होगी। आख़िर मेरा ज़ाती शौक़ यही चाहता है कि जुमलः उलूम अंगरेज़ी बल्कि तमाम मग़रबी ज़बानों से तर्जुमा होके उर्दू ज़बान में आ जायँ; मगर यह एक क़िस्म की आरज़ू है और ज़रूर नहीं कि हर आरज़ू पूरी हो। अए बसा आरज़ू कि ख़ाक शुदः।

---

१ सबक़ २ परिवर्तन।

मैंने आपका बहुत सा क़ीमती वक़्त ज़ाया किया। मुआफ़ कीजिएगा। बन्दः को एक मुखलिस अपना तसव्वुर फ़र्मा के कारोबारॅ लायक़ः से याद फ़र्माया कीजिए। ज़ियादः नियाज़—

राक़िम
बशीरुद्दीन अहमद एम० ए०
अज़ बरेली

जनाब बशीरुद्दीन साहब एम० ए० दाम अल्ताफ़हू तस्लीम। आपका ख़त मुर्सिला आया। वाक़ई आपकी राए बहुत सही है। और यह उमूर मैं पहले ही समझे हुए हूँ। मगर जब किसी अम्र की ख़ूबी मुतहक़्क़िक हो जाय उसको सिर्फ़ इस खयाल से कि लोग क़द्र न करेंगे, तर्क कर देना हिम्मत से बईद है। अब तो यह काम मैंने शुरू किया है और ख़ुदा चाहे तो पूरा भी हो जायगा। और रफ़्तः रफ़्तः क़द्रदान भी निकल आयँगे। मैंने अपने सरमाए का एक जुज़ इस मतलब के लिए अलाहिदः कर दिया है। उससे यह किताबें छापकर रख ली जायँगी और वक़्तन फ़वक़्तन बिकती रहेंगी। बफ़र्ज़ मोहाल जो कुछ आमदनी इस काम से होगी उसमें मैंने अपना कोई हिस्सा नहीं रखा, बल्कि वह उसी मक़्सद के लिए सर्फ़ किया जायगा। अफ़सोस यह है कि मैं एक क़लीलुल्विज़ाअ़त शख्स हूँ। सिर्फ़ पाँच हज़ार रुपया इस कारॅ ख़ैर के लिए मैं सर्फ़ कर सका। चन्दः माँगना मेरी चिढ़ है। मैं उसे बुरा नहीं समझता। मगर यह काम मुझसे नहीं हो सकता। जो अपने से हो सका वह मैंने कर दिया। शायद आपने सुना होगा कि मैंने वेब्सटर डिक्शनरी को भी उर्दू में तर्जुमा करना शुरू किया है। अगर यह काम बख़ैरॉ-आफ़ियत ख़तम हो गया तो गोया कुल उलूम का तर्जुमा उर्दू में हो गया। इसलिए कि शायद आपको इससे इन्कार न होगा कि न सिर्फ़ मुझको बल्कि मुल्क में अक्सर साहबों को मिस्ल मेरे तर्जुमा उलूम का शौक़ है। लेकिन अक्सर तर्जुमें बेतुके होते हैं या यों कहिए कि हर तर्जुमे का एक जुदागानः तुक होता है। इस सही डिक्शनरी का तर्जुमा हो जाने से एक ज़ख़ीरः मायनों का (जिनमें से अक्सर मेरी गढ़ी हुई होंगी) ज़बानॅ उर्दू में मोहय्या हो जायगा। जब तक कोई काम अंजाम को नहीं पहुँचता उसको मन्सूबः समझना चाहिए। ख़ुलासा यह कि अभी तो यह सब मन्सूबे हैं। जब कोई काम अंजाम को पहुँचे तो तबीअ़त को तशफ़्फ़ी हो। ज़ियादः नियाज़।

ख़ादिम
आबिद—लखनऊ

मिर्ज़ा रुस्वा का ख़त आबिदहुसैन के नाम

मख्दूमी व मुकर्रमी मिर्ज़ा आबिदहुसैन साहब दाम फैज़हू तस्लीम। अल्हम्दु लिल्लाह आपकी सवानहउमरी तमाम हुई और हस्बुलहुक्म आपके मैंने इसमें से अशआर को बिलकुल महज़ूफ़ कर दिया। ख़ुतूत की नक़लें भी हो गईं। सिर्फ़ एक बात बाक़ी है और वह यह है कि इस सवानःउमरी का इख़्तिताम[1] आपही के कलाम

१ समाप्ति।

पर हो। लिहाज़ा मुतरस्सद हूँ कि बजवाब रक़ीमए हाज़ा इस अम्र अहम से मुत्तला फ़र्माइए कि शेरो-शायरी से आपको इस क़द्र तनफ़्फ़ुर क्यों है। आप यह समझ सकते हैं कि मेरा यह सवाल आपसे कुछ ऐसा बेजा नहीं है। इसलिए कि मेरी उम्र का एक बहुत बड़ा हिस्सा इस ख़ब्त में बसर हुआ है। इस अम्र के लिखने की मुझे कोई जरूरत नहीं है कि आप अपनी राय निहायत बेतक़ल्लुफ़ी से ज़ाहिर फ़र्माएँगे। इस अम्र की न किसी को आपसे तवक़्क़ुः है और न होना चाहिए कि आप किसी अम्र में किसी की मुरव्वत करेंगे। इसलिए कि आप मुझसे बारहा फ़र्मा चुके हैं कि मुरव्वत का मफ़्हूमॅ-आम एक ख़ुल्क़ी ज़ोफ़ है और यह ज़ोफ़ तरह-तरह की इख्लाक़ी बुराइयों का मूजिब होता है। नियाज़मन्द-रुस्वा

जनाब मिर्ज़ा साहब तस्लीम। आपको मेरे बाज़ ख़ुतूत से, जो इस सवानॅः उमरी के साथ आपने शाया किये हैं, मालूम होगा कि मैं तसावी इस्तॅदाद का क़ाएल हूँ। जो ख़ूबियाँ एक फ़र्देबशर में पाई जाती हैं मै बाज़ क़ुयूद के, जिनका ज़िक्र उन ख़ुतूत में हो चुका है, उनको हर इंसान के लिए आम समझता हूँ। अगर मेरा ख़याल सही है तो मैं कुछ कह सकता हूँ कि मैं भी मौज़ूँ-तबा और बिल्क़ूह शायर हूँ और इसी तरह आप बिल्क़ूह मेकैनिक हैं। लेकिन मुझको बित्तबअ़ उन कामों से तनफ़्फ़ुर है जो बहुत से लोगों का शेआर हो जाता है। चुनाँचॅः आप ख़ूब जानते हैं कि मैंने अपने बड़े लड़के बाक़र सल्लमहू की तमाम उम्मीदें और उमंगों को (जो उसके हम-उम्र नौजवानों को बाद दर्जऍ फ़ज़ीलत पर फ़ाएज़ होने के अमूमन हुआ करती हैं) ख़ाक में मिलाकर न उसे नौकरी करने दी, न वकालत का इम्तहान पास करने दिया। बल्कि अच्छा ख़ासा हरवाहा बना लिया। अब वह माशा अल्लाह ज़राअ़त के कारोबार में मुझसे बेहतर हो गया। दिमाग़ी वरज़िश का सरमाया भी मैंने उसके लिए काफ़ी तौर से फ़राहम कर लिया था। अब उसके बाज़ तर्जुमे अरबी किताबों के अंगरेज़ी ज़बान में विलायत पहुँचे। यक़ीन है कि अन्क़रीब शाया होकर आप तक पहुँचें। अंगरेज़ी किताबों का तर्जुमा मुवाफ़िक़ उस मंसूबे के, जिसको बाज़ उक़ला नामुमकिन समझ रहे हैं, बराबर हो रहा है। वेब्सटर डिक्शनरी का तर्जुमा होता जाता है। आप देखिएगा कि उस निअ़मत से उर्दू ज़बान दफ़तन किस मरतबः पर पहुँच जायगी। और उलूम के तर्जुमः करने वालों को कैसी सुहूलत होगी और इंशा अल्लाह बहुत ही जल्द उसका समरः ज़ाहिर होगा। अक्सर कलों के नमूने जिनकी मुल्क व क़ौम को ज़रूरत है, हम बाप-बेटों ने मिलकर तैयार कर लिये। ख़ुदा ने चाहा तो अन्क़रीब वह दिन आयगा जब मैं अपने फ़ारम पर एक प्राइवेट नुमायश करके दुनिया को दिखादूंगा कि क़ौम के एक या दो मुतनफ़्फ़िस भी आम ख़यालात और आमियानः अशग़ाल से बाज़ रह करके क्या कुछ कर सकते हैं।

फिर इस बात को एक मर्तबा दुहराने दीजिए। यह सब औसाफ़ मेरे ही लिए

मख़्सूस नहीं हैं, और लोग मुझसे बेहतर इन कामों को अंजाम देंगे। अब आप ही इंसाफ़ कीजिए कि अगर हम बाप बेटे शायरी की तरफ़ झुक जाते तो वह ग़ज़ल कहता और मैं इसलाह देता। मुशायरों में ग़ज़लें पढ़ी जातीं। कुछ लोग ख़ातिर से वाह-वाह कर देते तो उससे मुल्क और क़ौम को कौन सा फ़ाएदा पहुँचता। शायरी का शौक़ मुसलमानों में एक अरसए दराज़ से नस्लन बाद नस्लन चला आता है और उसमें जिस क़द्र एशियाई मफ़्हूम शेर से हो चुकी है वह ज़रूरत से ज़ियादः है।

मगर असली शायरी जो अह्लें यूनान का मफ़्हूम था या उमूमन अह्लें योरप का है उस रास्ते में अभी हमारे शोअरा एक दो क़दम भी नहीं चले हैं। हमारे लिए वह तरीक़ा बिलकुल नया है। आपकी उम्र का एक बहुत बड़ा हिस्सा इस फ़न में सर्फ़ हुआ है। अगर आप उसकी तरफ़ तवज्जुः फ़र्माएँ तो ज़ेबा है। अगर्चे मैं उसे भी तर्कऔला कहूँगा। इसलिए कि आप खूब जानते हैं कि मैं भूक से सदमे उठाए हुए हूँ। इसलिए मैं सबसे ज़ियादः ज़रूरी उन मशग़लों को समझता हूँ जिससे उस दर्द का इलाज हो।

एक और बात भी मेरे ज़ेहन में समा गई है कि इन कमेटियों और सोसाइटियों से कुछ होता नहीं है। बहुत बड़े-बड़े काम शख़्सी मेहनतों से हो सकते हैं। कमेटियों में इख़्तलाफ़ॅ राय और चुना व चुनी में बहुत सा वक़्त ज़ाया हो जाता है। मैं एक जंगजू जाहिल क़ौम से हूँ। अगर-मगर से मुझे चिढ़ है। जो काम करना है उसको शुरू करके तमाम करना चाहिए। पराये भरोसे से दुनिया का काम नहीं चलता। क़ौम में जो लोग ज़ी-इल्म और ज़ी-शऊर हैं वह ख़ुद इस बात को समझ सकते हैं कि हमें किन-किन बातों की ज़रूरत है। उनमें से किसी एक ज़रूरत के पूरा करने के लिए अगर एक ही शख़्स कमर चुस्त बाँध ले और कुछ कर चले तो बहुत कुछ हो जायगा। मैंने ख़ुद एक ग़लती की कि बहुत से काम अपने ज़िम्मे ले लिये। अगर मैं ख़ुद सिर्फ़ एक ही काम बल्कि एक काम के कोई जुज़ की तकमील अपने ऊपर लाज़िम कर लेता तो शायद ज़ियादः फ़ायदा पहुँचा सकता। मगर ख़ैर जिन चीज़ों को मैंने इख़्तियार कर लिया है, मैं उम्मीद करता हूँ कि उस काम को अंजाम दे दूँगा।

अब मैं इस मुबारक फ़िक्रे पर अपने ख़त को, जो आपकी किताब का अंजाम है, ख़त्म करता हूँ।

अस्सैयु मिन्नी वल् अित्मामु मिनल्लाहि।

नियाज़केश
आबिद

भुवन वाणी ट्रस्ट,

'प्रभाकर निलयम्', ४०५/१२८ चौपटियाँ रोड, लखनऊ-३

जो कार्य किये जा रहे हैं (सानुवाद देवनागरी-लिप्यन्तरण):—

१—(तमिळ) तिरुक्कुरळ् २—(तमिळ) कम्ब रामायण
३—(तॅलुगु) रंगनाथ रामायण ४—(कन्नड़) पम्प रामायण—जैनसाहित्य
५—(असमिया) माधवकंदली रामायण ६—(कश्मीरी) रामावतार चरित
७—(नेपाली) रामायण भानुभक्त कृत ८—(गुजराती) गिरधर रामायण
९—(बंगला) कृत्तिवास रामायण लं०कां० १०—(सिंधी) स्वामी के सलोक
११—(मलयाळम) तुञ्चत्त् एळुत्तच्छन् कृत महाभारत
१२—(ओड़िआ) वैदेहीश-विळास—उपेन्द्र भञ्ज कृत
१३—(मराठी) श्रीराम-विजय—श्रीधर स्वामी कृत मूल एवं अनुवाद
१४—(उर्दू) श्री 'रुसवा' का (नैतिक) उपन्यास "शरीफ़ज़ाद:"
१५—(उर्दू) गुज़श्त: लखनऊ—डॉ० शरर
१६—(फ़ारसी) दाराशिकोह कृत ५१ उपनिषदों के फ़ारसी-भाष्य (डॉ० ताराचंद द्वारा सम्पादित तथा ईरान में प्रकाशित 'सिर्रे अक्बर') का धारावाहिक हिन्दी अनुवाद
१७—(अ़रबी) रियाज़ुस्सालिहीन (हदीस)—(ज़ादें सफ़र)
१८—(वाणी सरोवर)—विविध भाषाओं के उपर्युक्त अनुपम ग्रंथों का सानुवाद धारावाहिक देवनागरी लिप्यन्तरण का त्रैमासिक पत्र—वार्षिक मूल्य १०·००
१९—रामचरितमानस (तुलसी)—संस्कृत पद्यानुवाद, तथा ओड़िया लिपि में लिप्यन्तरण ओड़िया गद्य-पद्यानुवाद
२०—इनके अतिरिक्त संस्कृत, पाली-प्राकृत, पारसी (ज़रथूस्त्र-गाथा) बाइबिल आदि के अनेक उद्धरण।

ट्रस्ट के अतिरिक्त, सानुवाद देवनागरी-लिप्यन्तरण के अन्य कार्य जो अन्यत्र हो चुके हैं:—

१—(अ़रबी) क़ुर्आन (मूल आयतें अरबी व देवनागरी लिपि में, अनुवाद, टिप्पणी सहित)—इस्लामी धर्माचार्यों द्वारा प्रतिपादित—
२—(बंगला) कृत्तिवास रामायण—(पाँच काण्ड) बंगला मूल देवनागरी में लिप्यन्तरित, अवधी पद्यानुवाद—
३—(गुरमुखी) जपुजी तथा सुखमनी साहब—गुरमुखी मूल पाठ तथा गीता के यशस्वी अनुवादक ख़ा०ब० ख़्वाज: दिलमुहम्मद कृत उर्दू पद्यानुवाद—दोनो देवनागरी लिपि में—

वाणी प्रेस, लखनऊ-३ में मुद्रित एवं भुवन वाणी ट्रस्ट, रानीकटरा, लखनऊ द्वारा प्रकाशित।
—द्वारा नन्दकुमार अवस्थी, सम्पादक